भरद्वाज ऋषिका वर्णन

अथर्ववेदमें दो मंत्र हैं जिनमें अनेक ऋषियोंके जैसे नाम आये हैं। वे मंत्र ये हैं—

यौ भरद्वाजमवथो, यौ गविष्ठिरं विश्वामित्रं वरुण मित्र कुत्सम्। यौ कक्षीवन्तमवथः प्रोत कण्वं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥
अथर्व ४।२९।५

मित्र और वरुण ये दोनों देव भरद्वाजकी सुरक्षा करते हैं तथा गविष्ठिर विश्वामित्र कुत्स कक्षीवान् और कण्वकी रक्षा करते हैं वे दोनों हमें पापसे बचावें। तथा और देखिये—

विश्वामित्र जमदग्ने वसिष्ठ भरद्वाज गोतम वामदेव। शर्दिर्नो अत्रिरग्रभीन्नमोभिः सुसंशासः पितरो मृडता नः ॥ अथर्व १८।३।१६

हे विश्वामित्र जमदग्ने वसिष्ठ भरद्वाज गोतम वामदेव ! अत्रिने (नमोभिः) नमस्कारोंसे (नः शर्दिः) हमारे घरको (अग्रभीत्) ग्रहण किया है (हे सुसंशासः पितरः) प्रशंसा योग्य पितरों। (नः मृडत) हमें सुखी करो।

इस मंत्रमें भी सात ऋषियोंके नाम आये हैं। पूर्व मंत्रमें पांच ऋषियोंके आये हैं। दोनों मंत्रोंमें भरद्वाज और विश्वामित्र ये दो नाम पुनरुक्त हैं और गविष्ठिर कुत्स कक्षीवान् कण्व जमदग्नि वसिष्ठ गोतम वामदेव और अत्रि ये नाम आये हैं। कुल ग्यारह ऋषियोंके नाम यहां आये हैं।

अग्निः अत्रिं भरद्वाजं गविष्ठिरं प्रावन्नः कण्वं त्रसदस्युं आहवे। अग्निं वसिष्ठो हवते पुरोहितो मृळीकाय पुरोहितः ॥ ऋ. १ ।१५ ।५

अग्निने अत्रि भरद्वाज गविष्ठिर कण्व त्रसदस्युकी (आहवे प्रावत्) युद्धमें रक्षा की। पुरोहित वसिष्ठ अग्निकी स्तुति करता है। सुखप्राप्तिके लिये पुरोहित अग्निकी प्रशंसा गाता है। इस मंत्रमें भी भरद्वाजके साथ पांच ऋषियोंके नाम आये हैं।

भरद्वाज ऋषिः (वा. यजु. १३।५५) यहां भरद्वाजको ऋषि कहा है। भरद्वाज दर्शनमें भी भरद्वाज नाम आये हैं वे यहां देखने और विचार करने योग्य हैं उन मन्त्रोंको यहां क्रमसे देते हैं—

ऋषिः- भरद्वाज । देवता—अग्निः।

इमं यज्ञं चनो धा अग्न उशन्यं त आसानो जुहुते हविष्मान्। भरद्वाजेषु दधिषे सुवृक्तिमवीर्वाजस्य गध्यस्य सातौ ॥ ऋ. ६।१ ।६

हे अग्ने ! (उशन् इमं यज्ञं) हविष्यान्नकी इच्छा करता हुआ तू इस यज्ञसाधनभूत (चनः धाः) हविष्य अन्नको स्वीकार कर। (यं आसानः हविष्मान्) जो यहां बैठा हुआ हविष्यान्नवाला यजमान (ते जुहुते) तेरे लिये हवन करता है। (भरद्वाजेषु सुवृक्तिं दधिषे) भरद्वाज गोत्रसे ऋषियोंके विषयमें उत्तम भाव धारण कर। और (गध्यस्य वाजस्य सातौ अवीः) अन्नधनादिकी प्राप्तिके कर्ममें उनकी रक्षा कर। तथा—

एवेदिन्द्रः सुते अस्तावि सोमे भरद्वाजेषु क्षयदिन्मघोनः। असद् यथा जरित्र उत सूरिः इन्द्रो रायो विश्ववारस्य दाता ॥ ऋ. ६।२३।१

(मघोनः क्षयत् इन्द्रः) धनवाले यजमानका प्रभु इन्द्र है। वह (सोमे सुते) सोमरस निचोडनेपर (जरित्रे सूरिः यथा असत्) स्तोताको ज्ञानी जैसा बनाता है (उत विश्ववारस्य रायः दाता) और सबसे अधिक प्रशंसनीय धन देता है इस इन्द्रकी (भरद्वाजेषु एव अस्तावि) भरद्वाज गोत्रियोंमें स्तुति होती है। यहां भी अनेक भरद्वाजियोंका उल्लेख है। तथा और देखिये—

स गोमघा जरित्रे अश्वश्चन्द्रा वाजश्रवसो अधि धेहि पृक्षः। पीपिहीषः सुदुघामिन्द्र धेनुं भरद्वाजेषु सुरुचो रुरुच्याः ॥ ऋ. ६।३५।४

हे इन्द्र ! (यः जरित्रे) वह तू स्तोताके लिये (गोमघा अश्वश्चन्द्राः) गोधन अश्वोंसे आनन्ददायक (वाजश्रवसः

दुघः) सबके लिये प्रसिद्ध अन्न (भरद्वाजेषु अधि धेहि) भरद्वाज गोत्रियोंको दे दो। (इषः सुदुघां धेनुं) वे अन्न सुन्दर दूध देनेवाली गौ दे (इन्द्र) इन्द्र ! (धीमहि) धारण करके दे दो। वे अन्न (पुरुक्षः सहस्राः) उत्तम अधिकर अन्न हों।

इसमें भी अनेक भरद्वाजोंका उल्लेख है।

एवा नः स्पृधः समजा समत्सु इन्द्र रारन्धि मिथतीरदेवीः। विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो भरद्वाजा उत त इन्द्र नूनम्॥ ऋ. ६।२५।९

हे इन्द्र ! (एव नः स्पृधः) इस तरह हमारे साथ स्पर्धा करनेवालोंके साथ लडनेवाले (समत्सु समज) संग्रामोंमें हमें प्रेरित कर। (मिथतीः अदेवीः रारन्धि) युद्ध करनेवाली आसुरी सेनाको विनष्ट कर। और हे इन्द्र ! (ते गृणन्तः भरद्वाजाः) तेरी स्तुति करनेवाले हम भरद्वाज गोत्री (अवसा वस्तोः नूनं विद्याम) रक्षणशक्तियुक्त घर अवश्य प्राप्त करें ऐसा कर।

इस मंत्रमें ' गृणन्तो भरद्वाजाः ' पद है। भक्ति करने वाले भरद्वाज गोत्री हम हैं। ऐसा यहां कहा है। तथा और देखिये—

एवा नपातो मम तस्य धीभिः भरद्वाजा अभ्यर्चन्त्यर्कैः। ऋ. ६।५०।१५

(एव तस्य मम नपातः भरद्वाजाः) इस तरह वह मेरे पुत्रके पुत्र भरद्वाज (धीभिः अर्कैः अभि अर्चन्ति) बुद्धि पूर्वक गाये स्तोत्रोंसे उपासना करते हैं।

इस मंत्रमें तो ' मम नपातः भरद्वाजाः धीभिः अर्कैः अभ्यर्चन्ति ' मेरे पुत्रके पुत्र भरद्वाज गोत्री बुद्धि पूर्वक गाये स्तोत्रोंसे उपासना कर रहे हैं। ऐसा कहा है। ' नपातः भरद्वाजाः ' ये शब्द यहां महत्त्वके हैं। मेरे पुत्रके पुत्र भरद्वाज ऐसा अपना नाता बताया है। तथा—

यदि दाधा विश्वशर्म्यं दधानान् भरद्वाजान् त्सार्ञ्जयो अभ्ययष्ट। ऋ. ६।४७।२५

(विश्वशर्म्यं महि दाधा) सब मनुष्योंके लिये हितकारक महान् धनको (दधानान् भरद्वाजान्) धारण करनेवाले भरद्वाज गोत्रियोंका (सार्ञ्जयः) सत्कारसे (अभ्ययष्ट) सत्कार किया।

यहां भी अनेक भरद्वाजोंका निर्देश है। तथा और देखिये—

वैश्वानरो महिम्ना विश्वकृष्टिः भरद्वाजेषु यजतो विभावा। शातवनेये शतिनीभिरग्निः पुरुणीथे जरते सूनृतावान्॥ ऋ. १।५९।७

' (वैश्वानरः महिमा विश्वकृष्टिः) वैश्वानर अग्नि ही अपनी महिमासे (विश्वकृष्टिः) सार्वजनिक [देव] है। वह (भरद्वाजेषु यजतः विभावा) भरद्वाज गोत्रियोंमें पूजनीय और वैभव संपन्न है। वह (अग्निः सूनृतावान्) अग्निके समान तेजस्वी सत्य मार्गपर चलनेवाला (पुरुणीथे शातवनेये) बहुतोंसे चलने योग्य शैकडों धनोंसेयुक्त संघमें (जरते) प्रशंसित होता है।

यहां ' भरद्वाजेषु यजतः अग्निः वैश्वानरः ' भरद्वाज गोत्रियोंमें सार्वजनिक अग्नि ही पूजा जाता है। ऐसा कहा है। भरद्वाज गोत्रियोंकी यह विशेषता है कि वे सार्वजनिक अग्निका आदरसत्कार करते हैं। सार्वजनिक हित करना यह भरद्वाज गोत्रियोंका विशेष कार्य होता है। यहांतक उन मंत्रोंका विचार हुआ कि जिनमें बहुत भरद्वाजों का उल्लेख है। वे भरद्वाजके गोत्री हों भरद्वाजवंशज हों या (भरत्-वाजः) अन्नका दान करनेवाले हों। अब भरद्वाजका एकवचनी शब्द प्रयोग जिन मंत्रोंमें है उनका विचार करते हैं—

भरद्वाजका रक्षण

अश्विनौ देव भरद्वाजका रक्षण कर रहे थे यह वर्णन नीचे दिये मंत्रमें है—

याभिः विप्रं प्र भरद्वाजं आवतं ताभिः ऊ षु ऊतिभिः अश्विना गतम्। ऋ. १।११२।१३

हे (अश्विना) अश्विदेवों ! (याभिः) जिन संरक्षणके साधनोंसे भरद्वाज ब्राह्मणका (प्र आवतं) तुमने संरक्षण किया (ताभिः ऊतिभिः सु आगतं) उन संरक्षणके साधनोंसे तुम हमारे पास आओ। इस मंत्रमें विप्र भरद्वाज का संरक्षण अश्विनीने किया था ऐसा है। तथा—

यदयातं दिवोदासाय वर्तिः भरद्वाजाय अश्विना हयन्ता। ऋ. १।११६।१८

हे (अश्विना) अश्विदेवों ! (भरद्वाजाय दिवोदासाय) अन्नदान करनेवाले दिवोदासके (वर्तिः) घर (हयन्ता अयातं) वेगसे आ गये थे। ' इस मंत्रमें भरद्-वाज पद ' अन्नका दान करनेवाला इस अर्थमें है और यह दिवोदास का विशेषण

हे (नासत्या) अश्विदेवों । (वां गिरे) आपकी स्तुति करनेपर (अस्मान् वर्ता सद्मा) ठेकदों और हमारी गवें (पुरुपन्था भरद्वाजाय दात्) पुरुपन्थाने भरद्वाजके लिये दिये। तथा हे (पुरु-दंससा) अद्भुत कर्म करनेवाले अश्वि देवो ! (वीर तु गिरे दात्) स्तोत्रको यह दान दिया । अब (रक्षांसि हत्य स्तु) सब राक्षस मर जांय ।

इसमें पुरुपन्था राजाने भरद्वाज ऋषिको यह गोधोंका दान दिया ऐसा कहा है । तथा—

> उच्छा दिवो दुहितः प्रत्नवन्नो भरद्वाजवद्
> विधते मघोनि । सुवीरं रयिं गृणते रिरीहि
> उरुगायं अधि धेहि श्रवो नः ॥ ऋ. ६।६५।६

(प्रत्नवत्) पूर्वके समान हे (दिवः दुहितः) उषे प्रकाशित हो । (नः उच्छ) हमारे लिये प्रकाशित हो । हे (मघोनि) वैभव युक्त उषा । (भरद्वाजवत् विधते) भरद्वाजके समान स्तुति करनेवालोंके लिये तू प्रकाशित हो । (गृणते सुवीरं रयिं रिरीहि) स्तुति करनेवालोंके लिये उत्तम वीर पुत्रोंके साथ धन दो और (नः उरुगायं श्रवः अधि धेहि) हमारे लिये बहुत प्रशंसनीय कीर्ति मिले ऐसा कर । यहां भरद्वाज जैसी भक्ति करता है वैसी भक्ति जो करेगा उसको पुत्र, धन और यश मिले ऐसी इच्छा प्रकट की है ।

ऋषिः ऋजिश्वा भारद्वाजः । देवता विश्वेदेवाः ।

> अविन्दन्ते अतिहितं यदासीत् यज्ञस्य धाम
> परमं गुहा यत् । धातुर्द्युतानात् सवितुश्च
> विष्णोः भरद्वाजो बृहदा चक्रे अग्नेः ॥
> ऋ. १०।१८१।२

(यत् परमं यज्ञस्य धाम) जो यज्ञका परम गुप्त ज्ञान (गुहा अतिहितं) बुद्धिके अन्दर गुप्त था (तत् ते अविन्दन्) वह उन ऋषियोंने प्राप्त किया । परन्तु (भरद्वाजः) भरद्वाज ऋषिने (द्युतानात् धातुः) द्युतानके धाता सविता विष्णु और अग्निसे (बृहत् आ चक्रे) बृहत् सामका ज्ञान आत्मसात् किया । यहां भरद्वाजने बृहत्सामका ज्ञान प्राप्त किया ऐसा कहा है ।

अब अथर्ववेदमें भरद्वाजके विषयमें जो वचन है वह देखिये

> इन्द्र देवाः शृणुत ये यज्ञियाः स्थ भरद्वाजो मह्य
> मुक्थानि शंसति । पाशे स बद्धो दुरिते नि
> युज्यतां यो अस्माकं मन इदं हिनस्ति ॥
> अथर्व. २।१२।२

(ये यज्ञियाः स्थ) जो पूजनीय देव हैं वे (देवाः इदं शृणुत) देव यह घोषणा सुनें कि (भरद्वाजः मह्यं) भरद्वाज ऋषि मेरे लिये (उक्थानि शंसति) सामगान करता है कि (यः) जो (अस्माकं इदं मनः हिनस्ति) हमारे इस मनको मारता है (सः पाशे बद्धः) वह पाशमें बंधा जाकर (दुरिते नियुज्यतां) पापमें पड़ा रहे ।

यहां भरद्वाज ऋषि इस अर्थके साथ गाता है ऐसा कहा है । तथा—

> वेद वै रात्रि ते नाम घृताची नाम वा असि ।
> तां त्वा भरद्वाजो वेद सा नो वित्तेऽधि जागृहि ॥
> अथर्व १९।४८।६

हे रात्रि । (ते नाम) तेरा नाम मैं जानता हूं (घृताची ये नाम असि) तेरा नाम घृताची है । (तां त्वा भरद्वाजो वेद) उस तुमको भरद्वाज ऋषि जानता है । (सा नः वित्ते) वह हमारे धनमें (अधि जागृहि) जागती रहे ।

भरद्वाज रात्रिको ठीक तरह जानता है कि इस रात्रिमें किस तरह सुरक्षा करनी चाहिये । यह भरद्वाज ऋषिका महत्त्व है । भरद्वाज दुष्टोंके साथ युद्ध भी करता है । इस युद्धके समय अश्विनौ आदि देवता उसका रक्षण करते हैं । इस योग्यताका यह ऋषि है ।

यहांतक अनेक मंत्र दिये हैं जिनमें भरद्वाज पद आया है । अनेक भरद्वाज भी हैं और एक भरद्वाज भी है । अनेक भरद्वाज व भरद्वाज गोत्रमें उत्पन्न हुए हैं और एक ऋषि यह मुख्य भरद्वाज ऋषि है ।

यह इतिहास दृष्टिसे विचार हुआ । निरुक्तोंकी दृष्टि इससे भिन्न है । वे भरद्वाज पदका मूल अर्थ करते हैं और यह भरद्वाज नाम गुणबोधक है ऐसा मानते हैं । इनके मतसे भरद्वाज पद भरत्+वाज है । जो अन्नका दान देता है । दूसरोंको अन्न भर देता है । अन्नका यज्ञ करता है । हविष्य अन्नका आहुतियों द्वारा हवन करता है । जो इस तरह अन्नका दान करता है वह भरत्+वाज है इस अर्थमें भरद्वाज पद अन्नदानकर्ता का वाचक है । यह सर्वसामान्य अर्थ हुआ । यह अर्थ लिया जाय तो व्यक्तिवाचक अर्थ भरद्वाज पदसे दूर होता है और गुणवाचक अर्थ ही अवशिष्ट रहता है ।

पाठक पूर्वोक्त मंत्रोंमें ये अर्थ लगाकर देखें और पूर्वापर संबंधसे किस अर्थसे किससे कौनसा भाव निकल आता है इसका विचार करें और योग्य बोध प्राप्त करें ।

ततस्तु वैतहव्यानां वधाय स महामतिः ।
पुत्रं प्रस्थापयामास प्रतर्दनमरिंदमम् ॥ ३७ ॥
जघान तान् महातेजा यज्ञामनसमीः शरैः ॥ ४१ ॥
हतेषु तेषु सर्वेषु वीतहव्यः सुतेष्वथ ।
प्राद्रवन्नगरं हित्वा भृगोराश्रममप्युत ॥ ४४ ॥
अभयं च ददौ तस्मै राज्ञे राजन् भृगुस्तदा ।
उवाच—
अयं ब्रह्मविदो राजा वीतहव्यो विसर्ज्यताम् ॥ ५० ॥
तमुवाच कृपाविष्टो भृगुर्धर्मभृतां वरः ।
नेहास्ति क्षत्रियः कश्चित् सर्वे चाम द्विजातयः ॥

महाभारत अनु. ३

हे राजन्! यशस्वी वीतहव्य राजाने ब्राह्मणत्व जिस रीतिसे प्राप्त किया वह कथा श्रवण कर। दिवोदासका पितामह काशीका राजा था। उसका नाम हर्यश्व था। गंगा-यमुनाके संगमके पास युद्धमें वीतहव्यके वंशजोंने उसका नाश किया। काशीके राज्यपर सुदेवके पुत्र दिवोदासको बिठलाया। हैहय राजाओंने काशी राज्यपर हमला किया। तेजस्वी दिवोदास राजाने सौ दिनतक घनघोर युद्ध किया। अन्तमें दिवोदासका पूर्ण पराभव हुआ। तब वह दिवोदास बुद्धिमान् भरद्वाज ऋषिके आश्रममें चला गया और भरद्वाजको वह शरण गया। उसको बृहस्पतिके ज्येष्ठ पुत्र भरद्वाज ऋषिने आश्वासन देकर आगमनका कारण पूछा। उत्तरमें दिवोदास राजाने कहा कि भगवन्! वीतहव्यके पुत्रोंने मेरा सर्वस्व नष्ट किया है। इसलिये मैं आपकी शरण आया हूं। यह सुनकर भरद्वाज ऋषिने उससे कहा मत डर मत डर। मैं पुत्रकाम इष्टि करूंगा जिससे तुम्हें उत्तम वीर पुत्र होगा जो वीतहव्योंका वध करेगा। पश्चात् भरद्वाज ऋषिने पुत्रकामेष्टि की। इससे दिवोदासको प्रतर्दन नामक पुत्र हुआ। उस पुत्रने भरद्वाजके आश्रममें सब वेद और धनुर्वेदका अध्ययन किया। तब उस प्रतर्दनको राज्यपर बिठलाकर हैहयोंके वधके लिये भेजा। उसने उन सबका तीक्ष्ण बाणोंसे वध किया। पश्चात् वीतहव्य राजा भृगुके आश्रममें गया और भृगुके आश्रयसे रहा। भृगु ऋषिने उसको अभय दिया। तब प्रतर्दन भी भृगुके आश्रममें पहुंचा और उन्होंने भृगु ऋषिसे कहा आपके पास राजा वीतहव्य है उसको मेरे स्वाधीन करो। भृगु ऋषिने उस प्रतर्दनसे कहा कि यहां मेरे आश्रममें सब ब्राह्मण हैं यहां क्षत्रिय कोई नहीं है।

इस तरह वीतहव्य भृगुके आश्रममें ब्राह्मण बनाया गया। तथा और देखिये—

भृगवः तालजंघांश्च नीपांश्चाङ्गिरसोऽजयन् ।
भरद्वाजो वैतहव्यानैलांश्च भरतर्षभ ॥

महाभारत अनु. १४

भृगुओंने तालजंघोंका आंगिरसोंने नीपोंका और भरद्वाजने वीतहव्यके पुत्रोंका पराभव किया था। इस तरह भरद्वाजका कर्तव्य महाभारतमें वर्णन किया है। भरद्वाजने प्रतर्दनको राज्य प्राप्त हो ऐसी व्यवस्था की थी। देखिये—

एतेन ह वा वै भरद्वाजः प्रतर्दनं समनह्यदिति
ततो वै राष्ट्रमभवत् यं कामयेत राष्ट्रं स्यादिति
स एतेन सन्नह्यभिषायात् राष्ट्रं एव भवति ॥

काठक संहिता २१।१

इस यज्ञसे भरद्वाज ऋषिने प्रतर्दन राजाको राज्य प्राप्त करा दिया था। जिसको राज्य प्राप्त हो ऐसी इच्छा होती है वह इस यज्ञको करे निःसन्देह उसे राज्य मिलता है। यह काठक संहिता यजुर्वेदका वचन है।

राज्यव्यवहारमें ऋषियोंका हाथ होता था। राज्यपर किसी राजाको बिठलाना, किसीसे युद्ध करना आदि बातोंमें वे ऋषि महत्वपूर्ण कार्य करते थे।

बृहस्पतिकी ममतासे भरद्वाज पुत्र हुआ। इसलिये भरद्वाजको बार्हस्पत्य भरद्वाज कहते हैं। सर्वानुक्रमणीकार कात्यायनने अपनी सर्वानुक्रमणीमें ऐसा लिखा है। बार्हस्पत्यो भरद्वाजः षष्ठं मण्डलं अपश्यत्। बृहस्पतिपुत्र भरद्वाज ऋषिने ऋग्वेदका षष्ठ मंडल देखा है।

भरद्वाज ऋषि शरीरसे लंबा कृश और धीरे रंगका था। (ऐ. ब्रा ३।४९) यह अति दीर्घायुषी तपस्वी और विद्वान् था। (ऐ. ब्रा १।२।६)

ब्रह्मदेवने पुष्कर क्षेत्रमें यज्ञ किया उसमें यह उपस्थित था। (पद्म सृ. ३४)

भरद्वाजः क्षुधार्तस्तु सपुत्रो विजने वने ।
बह्वीर्गाः प्रतिजग्राह वृधोस्तक्ष्णो महातपाः ॥

मनुस्मृति १०।१०७

अपने पुत्रोंके साथ निर्जन वनमें क्षुधासे पीडित होकर भरद्वाज ऋषिने वृधु नामके सुतारसे बहुतसी गौवें प्राप्त की। मत्स्यपुराणमें भरद्वाजके विषयमें ऐसा लिखा है—

सद्यो जातं कुमारं तु दृष्ट्वा तं ममताऽब्रवीत् ॥ १४ ॥
गमिष्यामि गृहं स्वं वै भरस्वेनं बृहस्पते ॥
एवमुक्त्वा गता सा तु गतायां सोऽपि तं त्यजत् ॥ १५ ॥
माता पितृभ्यां त्यक्तं तु दृष्ट्वा तं मरुतः शिशुम् ।
अगृह्णंस्तं भरद्वाजं मरुतः कृपया स्थिताः ॥ १६ ॥
तस्मिन् काले तु भरतो बहुभिः क्रतुभिः विभुः ।
उपभिन्युभरद्वाजं पुत्रार्थे भरताय वै ॥
दायादोऽङ्गिरसः सूनोः औरसस्तु बृहस्पतेः ।
संक्रामितो भरद्वाजो मरुद्भिः भरतं प्रति ॥ १७ ॥
भरतस्तु भरद्वाजं पुत्रं प्राप्य विभुर्भवत् । मत्स्य ४९

भरद्वाज उत्पन्न होते ही उसकी माता ममता बोली कि हे बृहस्पते ! मैं घर जाऊंगी तू इसका भरण पोषण कर। ऐसा कहकर वह अपने घर गयी। पिता बृहस्पतिने भी उसको वहीं छोड दिया। माता-पिताओंसे त्यागे उस पुत्रको मरुतोंने देखा और उठाया उसी समय भरत राजा पुत्रप्राप्तिके लिये यज्ञ कर रहा था। मरुतोंने इस पुत्रको भरतके पास ले जाकर रखा। यह अंगिरसोंका गोत्रज प्रसाद बृहस्पतिका औरस पुत्र परन्तु इस रीतिसे मरुतोंने भरतके पास दिया। भरत ऐसे उत्तम पुत्रको प्राप्त करके बडा आनंदित हुआ। यह भरद्वाज भरतके पश्चात् राजगद्दीपर बैठ गया और उन्होंने अच्छा राज्य किया था। इस भरद्वाजका दूसरा नाम वितथ यह भी था। वितथ का अर्थ व्यर्थ ऐसा है। मातापिताने इसे छोड दिया था इस कारण यह व्यर्थ ही जन्मा। ऐसा लोग बोलने लगे थे। इस कारण भरद्वाजको वितथ कहने लगे थे। दूसरोंने भरणपोषण किया इसलिये इसको (भरत्+द्वाज) भरद्वाज कहते हैं।

रामचन्द्रके समय भरद्वाज ऋषि प्रयागमें रहता था। राम जिस समय दंडकारण्यमें जाने लगा था। उस समय वह भरद्वाज ऋषिके आश्रममें गया था तब भरद्वाजने श्रीरामका बडा सत्कार किया था। इसी ऋषिने श्रीरामको चित्रकूटका मार्ग बताया था।

गत्वा मुहूर्तमध्वानं भरद्वाजमुपागमत् ।
ततस्त्वाश्रममासाद्य मुनेर्दर्शनकांक्षिणौ ॥
शीलितव्रतमेकाग्रं तपसा लब्धचक्षुषम् ।
रामः सौमित्रिणा सार्धं सीतया चाभ्यवादयत् ॥
भरद्वाजोऽब्रवीद्वाक्यं धर्मयुक्तमिदं तदा ॥ १० ॥
दशक्रोश इतस्तात गिरिर्यस्मिन्निवत्स्यसि ।
चित्रकूट इति ख्यातो गन्धमादनसन्निभः ॥ २१ ॥
महर्षिसेवितः पुण्यः पर्वतः शुभदर्शनः ॥

रामायण अयोध्या स ५४

थोडी देर चलकर राम सीता और लक्ष्मण तपस्वी भरद्वाज मुनिके आश्रममें पहुंचे। वहां उन्होंने भरद्वाज ऋषिको प्रणाम किया तब बातचीत होनेपर भरद्वाजने रामसे कहा कि यहांसे दस कोस दूरीपर चित्रकूट पर्वत है। वहां तुम जाकर रहो। वहां ऋषि-मुनि बहुत रहते हैं और वह बडा रमणीय पर्वत है।

फ्रेडरिक-वाकरनागेलने अपने ग्रंथमें भरद्वाजका अर्थशास्त्रकार करके सात बार उल्लेख किया है। अर्थात् अर्थशास्त्रपर ग्रंथ इसने लिखा ही होगा। पर वह ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं है।

पराशर माधवीयमें सरस्वती विलासके अन्दर भरद्वाजका उल्लेख है। पंचरात्र संप्रदायमें भरद्वाज संहिता नामक एक चार अध्यायोंका ग्रन्थ है। भरद्वाजस्मृति नामक एक स्मृति ग्रन्थ है। इस ग्रंथमेंसे हेमाद्रि, विज्ञानेश्वर आदिने वचन उद्धृत किये हैं। इस भरद्वाजके वास्तुतत्त्व तथा वेदपादस्तोत्र ये ग्रन्थ हैं।

इस तरह भरद्वाजके विषयमें वृत्तांत आते हैं। ये सब भरद्वाज एक ही हैं ऐसा कहना कठिन है। पृथक् पृथक् भी होंगे। एक ही समझते हैं ऐसा भी हम नहीं कह सकते। यहां सब भरद्वाजोंका वृत्त एक स्थानपर दिया है। पाठक अधिक संशोधन करें और इसका निर्णय करें।

भरद्वाजका वृत्त अनेक पुराणोंमें महाभारतमें मनुस्मृतिमें ऐतरेय ब्राह्मणमें तथा अन्यान्य ग्रंथोंमें है। परन्तु ये सब एक ही ऋषिके वृत्त हैं और सब विश्वासपात्र हैं ऐसा भी दीखता नहीं। परन्तु इसका विचार होनेके लिये यहां एक स्थानपर दिये हैं। इसका पाठक अच्छी तरह विचार करें।

*

* *

श्रेष्ठ बननेके साधन

स मज्मना जनिम मानुषाणाम्
अमर्त्येन नाम्नाऽति प्र सर्स्रे ।
स द्युम्नेन स शवसोत राया
स वीर्येण नृतमः समोकाः ॥

(ऋ. १।१००।७)

(सः) वह जो (अमर्त्येन नाम्ना मज्मना) अविनाशी शत्रुको नम्र करनेवाले बलसे (मानुषाणां जनिम) मानवोंके समूहको (अति प्र सर्स्रे) लांघ जाता है, सबमें अतिश्रेष्ठ बनता है। (स द्युम्नेन) वह तेजसे, (स शवसा) वह बलसे (स राया) वह धनसे (स वीर्येण) वह पराक्रमसे (नृ तम) सब मानवोंमें श्रेष्ठ होता है और वह (समोकाः) उत्तम घरवाला होता है।

वह उपासक शत्रुको विनम्र करनेवाले सामर्थ्यसे यशसे, प्रतापसे ऐश्वर्यसे वीर्यसे सब मानवोंमें श्रेष्ठ होता है और वह बड़े राजमहलमें रहने योग्य श्रेष्ठ होता है। श्रेष्ठ होनेके साधन यश, सामर्थ्य, ऐश्वर्य वीर्य शौर्य ये हैं। इनमें जो विशेष है वह श्रेष्ठ होता है।

* *

*

भरद्वाज ऋषिका दर्शन

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

षष्ठं मण्डलम्

(ऋग्वेदके ४५–५० अनुवाक)

अनुवाक ४५ वाँ

अग्नि प्रकरण

---

(१) ११ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

१ त्वं ह्यग्ने प्रथमो मनोतास्या धियो अभवो दस्म होता ।
त्वं सीं वृषन्नकृणोर्दुष्टरीतु सहो विश्वस्मै सहसे सहध्यै ॥ १ ॥

---

[१] (१) हे (अग्ने !) हे तेजस्वी देव ! (त्वं प्रथमः मनोता) तू विबुधोंके मनोंका सबसे प्रथम आकर्षण करनेवाला है। (दस्म) हे दर्शनीय देव ! (अस्याः धियः होता अभवः) इस बुद्धिपूर्वक किये कर्मोंका तू सम्पन्न करनेवाला है, (विश्वस्मै सहसे सहध्यै) सब बलवान् शत्रुओंका पराभव करनेके लिये (वृषन् !) हे बलवान् देव ! (त्वं सीं दुष्टरीतु सहः अकृणोः) तू सब प्रकारसे अजिंक्य बल प्रकट करता है।

१ मानव धर्म— हे तेजस्वी पुरुष ! तू सबसे प्रथम विबुधोंका मन अपनी ओर आकर्षित कर। दर्शनीय बन। बुद्धिपूर्वक कर्मोंको अच्छी तरह सम्पन्न कर और शत्रुओंका पराभव करनेके लिये अजिंक्य बल प्रकट कर ॥

भरद्वाज ऋषि अग्निमें आदर्श पुरुषका दर्शन करते हैं। अग्नि अपना प्रकाश पहुंचाता है इसलिये अग्रणी है। समर्थ वह (अग्र-नयनी) है, प्रकाश और उष्णता अग्नि पर बना है। अग्निमें आदर्श पुरुषका वर्णन यहां करता है।

पहला मनुर्हितस्मरणानि अर्थ पर करते हैं जैसा आचरण मनुष्योंको करना चाहिये।

अग्निका पहिला गुण प्रकाश देना और अन्धकारका नाश करना है। जो अपने अनुयायियोंको प्रकाश दर्शाकर मार्ग दर्शन करता है और अज्ञानान्धकारको ज्ञानदान द्वारा दूर करता है वह इस समय इस स्थानपर वर्णित हो रहा है। ऐसाही मनुष्योंको करना चाहिये। मनुष्य स्वयं ज्ञानी बनें और दूसरोंके अज्ञानको दूर करें, सबको ज्ञानवान् बनावें।

१ प्रथमः मनोता— यह पहिला मनोता हो। मनोता वह है कि जो ज्ञानियोंके मनोंको अपनी ओर आकर्षित करसकता है अग्रणीका यह पहला गुण है। वह सज्जनोंके मनोंको प्रथम अपनी ओर आकर्षित करे। दुष्टों दुष्टों पर दुष्टोंके मन धर्षण न हो। सबसे प्रथम करनेका यह काम है।

२ दस्म— दर्शनीय बन। अनेक पुरुष किसी स्थानपर बैठे हों तो उनमें सबसे अधिक दर्शनीय, सुन्दर अपनी सामर्थ्यवान जो होगा उसीपर सबका मन आकर्षित होता है। वह (दस्म) दर्शनीय है अतएव वह (मनोता) सबके मनोंका आकर्षण करनेवाला है। (मनः उतं अस्मिन् वा अनेन) जिसमें मन लगता है ऐसा बनना चाहिये अर्थात् सुन्दर बनना चाहिये और अपनी और ज्ञानियोंके मनोंको आकर्षित करना चाहिये।

२ अधा होता न्यसीदो यजीयानिळस्पद इषयन्नीड्य: सन् ।
तं त्वा नर: प्रथमं देवयन्तो महो राये चितयन्तो अनुग्मन् ॥ २ ॥
१ वृतेव यन्तं बहुभिर्वसव्यै २ स्त्वे रयिं जागृवांसो अनुग्मन् ।
रुशन्तमग्निं दर्शतं बृहन्तं वपावन्तं विश्वहा दीदिवांसम् ॥ ३ ॥

३ धिया होता अभवः— बुद्धिपूर्वक किये श्रेष्ठ कर्मोंके उत्तम रीतिसे सफल करनेवाला बन । तू श्रेष्ठ कर्मोंको बुद्धि बना कर कर। धी का अर्थ बुद्धि और कर्म है। बुद्धियोग पूर्वक किये कर्म। ऐसे श्रेष्ठ कर्मोंमें (होता) विद्वानोंको बुलाकर लानेवाला बन । श्रेष्ठ कर्म कर और उन कर्मोंमें श्रेष्ठ पुरुषोंको बुलाकर ला ।

४ विश्वासो सहस्वे सहध्यै—सब शत्रुओंका पराभव कर सकी तैयारी कर । सब शत्रुओंका पराभव करना तुम्हारा कर्तव्य है । अग्रणीको सब शत्रुओंका पराभव करना चाहिये । (सहः) सामर्थ्य सामर्थ्यवान शत्रु बलिष्ठ शत्रु । ऐसे शत्रुका (सहध्यै) पराभव करनेके लिये समर्थ बनना चाहिये ।

५ त्वं स्त्रीं दुष्टरीतु सहः अकृण्वाः— तू सब प्रकारसे विजयी बल अपने अन्दर धारण कर तथा शत्रुका पराभव करनेके कार्यमें उस बलको प्रकट कर । (दुष्टरीतु=दुः+तरीतु) शत्रुके लिये तुम्हारे बलको पार करना अशक्य हो ऐसा शत्रु तुम्हारा कभी पराभव न कर सके, ऐसा प्रभावी सामर्थ्य तू अपने अन्दर धारण कर ।

६ वृषन्- (वृषा)— बलवान बन अपनी नेताको बलवान बनना चाहिये अप्रतिम विजय और प्रभावी सामर्थ्य प्राप्त करना चाहिये सुन्दर दर्शनीय बनना चाहिये अनुयायियोंके मनोंको आकर्षित करना चाहिये सब कर्तव्योंको मन पूर्वक दीक्षासे करना चाहिये शत्रुका ऐसा पराभव करना चाहिये कि वह शत्रु पुनः कभी कष्ट देनेके लिये उठ न सके । ऐसे अग्रणीकी प्रशंसा होती है ।

[२] (१) (अध) इस समय तू (यजीयान् होता) अतिशय पूजनीय और विद्वानोंको बुलानेवाला और (इषयन् ईड्य: सन्) अन्न बढानेकी इच्छा करनेके कारण प्रशंसनीय होकर (इळः पदे न्यसीदः) अन्नकी भूमिपर बैठा है (प्रथमं देवयन्त नरः) सबसे प्रथम देव बननेकी इच्छा करनेवाले नेता लोग (महः राये चितयन्त) तुझको महान धन देनेवाला करके जानते हैं और (तं त्वा अनुग्मन्) तुझे ही अनुसरते हैं । तेरा ही अनुसरण करते हैं ।

मानव धर्म— पवित्र बन ज्ञानियोंको बुलाकर अन्न बढानेकी इच्छा कर, जहाँ प्रशंसित कर्म होता है वहाँ उपस्थित रह । दैवी भाव प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले लोग धनका योग्य रीतिसे दान करनेवाले नेताका अनुसरण करें ।

१ यजीयान् होता इषयन् ईड्य:— यज्ञ करनेवाला पवित्र दाता बन और विपुल अन्न प्राप्त करके उसमें अन्नका दान करनेसे तू प्रशंसाके योग्य बन ।

२ इळः पदे न्यसीद— अपनी भूमिपर स्थिर रह । अपनी मातृभूमिपर रहकर उसको प्रकाशित कर ।

३ प्रथम देवयन्तः नरः— सबसे प्रथम नेता लोग अपने अन्दर दैवीभाव प्राप्त करनेका यत्न करें ।

४ महः राये चितयन्तः अनुग्मन्— विशेष वैभव प्राप्त करनेके लिये आवश्यक ज्ञान प्राप्त करके (मनुष्य अपने अग्रणी नेता बनके) अनुयायी बनें ।

महेराये चितयन्तः —बडा वैभव प्राप्त करनेके लिये बहुत ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है । बिना ज्ञान प्राप्त किये उत्तम वैभव प्राप्त नहीं हो सकता ।

(३) (त्वे रयिं जागृवांसः) तेरे आश्रयसे रहनेवाले धनको प्राप्त करनेके लिये जाग्रत रहनेवाले लोग (बहुभिः) अनेक प्रकारके (वसव्यैः) धन प्राप्त करनेके व्यवहार करने वालोंके साथ रहकर (वृता इव यन्तं) ठीक मार्गसे जानेवाले (रुशन्तं दर्शतं) तेजस्वी सुन्दर (वपावन्तं विश्वहा दीदिवांसं) हवनसामग्रीसे सदा देदीप्यमान ऐसे (बृहन्तं अग्निं) महान अग्निरूप तेजस्वी अग्रणीका (अनुग्मन्) अनुसरण करते रहे हैं ।

मानव धर्म— साधक जाग्रत रहे धन प्राप्त करनेका यत्न करे, योग्य मार्गसे धन प्राप्त करनेवालोंके साथ मिलकर यत्न करे । तेजस्वी सुंदर हवनसामग्रीसे ऐसे अपने महान अग्रणी नेताका अनुसरण करें ।

१ जागृवांसः रुशन्तं अग्निं अनुग्मन्— जाग्रत रहनेवाले साधक तेजस्वी अग्रणीका अनुसरण करें । अन्य विभागसे किसी अग्रणीके पीछे न चलें ।

४ पदं देवस्य नमसा व्यन्तः श्रवस्यवः श्रव आपन्नमृक्तम् ।
नामानि चिद्दधिरे यज्ञियानि भद्रायां ते रणयन्त संदृष्टौ ॥ ३ ॥
५ त्वां वर्धन्ति क्षितयः पृथिव्यां त्वां राय उभयासो जनानाम् ।
त्वं त्राता तरणे चेत्यो भूः पिता माता सदमिन्मानुषाणाम् ॥ ५ ॥

जागृवांसः रयिं अनुग्मन्— जाग्रत रहकर प्रकाश करनेवाले ऐश्वर्यको प्राप्त करते हैं।

२ जागृवांसः रयिं कृत्वा अनुग्मन्—जाग्रत रहकर धन प्राप्तिके लिये उत्तम श्रेष्ठ मार्गसे जाय । कभी हीन मार्गसे धन प्राप्त न करें।

३ जागृवांसः ऋतुभिः ऋतस्यैः कृत्वा पन्थां अनुग्मन् जाग्रत रहनेवाले साधक अनेक उत्तम व्यवसाय करनेवालोंके साथ रहकर योग्य मार्गसे चलनेवालेका अनुसरण करें ।

४ जागृवांसः रुशन्तं दीदिवांसं दर्शतं विश्वहा वपावन्तं बृहन्तं अग्निं अनुग्मन्— जागनेवाले साधक तेजस्वी सुन्दर सदा देदीप्यमान बुराइयोंको महान् अग्निका अनुसरण करें । किसी दुष्टका कभी अनुकरण न करें ।

यहां अग्निको (वपावान्) बुराइयोंको और (दर्शत) सुन्दर दर्शनीय कहा है । मनुष्योंको उचित है कि वे दर्शनीय बनकर रहें । निस्तेजकी अमंगल अवस्थामें कभी न रहें । जहां तक हो सके अच्छे वस्त्र धारण करके दर्शनीय बनें अग्निके समान दर्शनीय और तेजस्वी बनकर रहें ।

(४) (देवस्य पदं नमसा व्यन्तः) प्रभुके पवित्र पदको नमस्कार द्वारा प्राप्त करनेवाले साधक तथा (श्रवस्यवः अमृक्तं श्रवः आपन्) यश-प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले उपासक अपराजित यशको प्राप्त करते हैं । तथा (ते भद्रायां संदृष्टौ रणयन्त) तेरे कल्याणमय सौंदर्यमें आनंदित होते हैं और प्रभुके (यज्ञियानि नामानि दधिरे) अनेक पवित्र नामोंका ध्यान करते हैं।

मानव धर्म— ईश्वरके पवित्र पदको नमस्कार पूर्वक उपासना करो। तथा उसकी उपासना से विजयी यशको प्राप्त करो। ईश्वरके कल्याणमय विश्वरूप सौंदर्यमें आनन्दका अनुभव करो और उस प्रभुके अनेक पवित्र नामोंका ध्यान करो।

१ देवस्य पदं नमसा व्यन्त — प्रभुके पवित्र पदको नमस्कार आदि उपासनासे प्राप्त होओ । शाश्वत पदको प्राप्त करो ।

२ श्रवस्यवः अमृक्तं श्रवः आपन्— यशको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले अहिंसित यशको (प्रभुकी उपासनासे) प्राप्त करते हैं । विजयी यश प्राप्त करो ।

*

३ ते भद्रायां संदृष्टौ रणयन्त— प्रभुके कल्याण करनेवाले (विश्वके) सौंदर्यमें आनन्द प्राप्त करते रहें । विश्वमें सुन्दरता है उसको देखकर आनन्द प्राप्त करो ।

४ यज्ञियानि नामानि दधिरे— प्रभुके पवित्र नामोंका ध्यान करते रहें । प्रभुके पवित्र नामोंका भजन करो।

प्रभुके अमरपदको प्राप्त करना चाहिये और उससे विजयी यश भी प्राप्त करना चाहिये । इसके लिये प्रभुके पवित्र नामोंका ध्यान करना चाहिये और उसके सुन्दर विश्वरूपमें आनन्दका अनुभव करना चाहिये ।

प्रभुके नाम उपासकको मार्ग दर्शन करते हैं । इसलिये उनके नामोंके भजनसे मनुष्यको सच्चा मार्ग दीखता है। जैसा अग्निकी अनुयायियोंको अमरत्व पहुंचाना । दर्शत दर्शनीय बनना दीदिवांसम् तेजस्वी बनना । इस तरह प्रभुके नाम साधकको मार्ग दर्शाते हैं ।

(५) हे अग्ने ! तेजस्वी प्रभो (त्वां क्षितयः पृथिव्यां वर्धन्ति) तुझको प्रजाजन पृथिवी पर बढाते हैं । (जनानां उभयासः रायः त्वां) लोगोंके दोनों प्रकारके धन तुझे बढाते हैं। हे (तरणे !) दुःखसे तारनेवाले ! (त्वं चेत्यः त्राता भूः) तू सबको ज्ञान देनेवाला और सबका रक्षण करनेवाला है । और तू (मनुष्याणां सदम् इत् पिता माता) मनुष्योंका सच्चा पिता और माता है ।

मानव धर्म— पृथ्वी पर आनंदसे निवास करनेकी इच्छा करनेवाले और ऐहिक और पारमार्थिक धन प्राप्त करनेवाले साधक ईश्वरका गुणगान करें । वही सबको ज्ञान देनेवाला और सबका संरक्षण करनेवाला है और सबका सच्चा माता पिता भी वही है । साधक प्रभुको ऐसा मानें ।

१ जनानां उभयासः रायः— लोगोंको दोनों प्रकारके धन प्राप्त करने चाहिये। लोगोंके पास दोनों प्रकारके धन हों। एक ऐहिक धन और दूसरा पारमार्थिक ज्ञानरूप धन । ये दोनों मनुष्योंको प्राप्त करने चाहिये ।

२ तरणे ! त्वं चेत्यः त्राता भूः— हे तारक प्रभो ! तू ज्ञान देता है और रक्षण करता है । वैसा ही मनुष्य स्वयं ज्ञान प्राप्त करे दूसरोंको ज्ञान देवे और उनका त्राण भी करे।

६ सपर्येण्यः स प्रियो विक्ष्व १ ग्निर्होता मन्द्रो निषसादा यजीयान् ।
तं त्वा वयं दम आ दीदिवांसमुप ज्ञुबाधो नमसा सदेम ॥ ६ ॥
७ तं त्वा वयं सुध्यो ३ नव्यमग्ने सुम्नायव ईमहे देवयन्तः ।
त्वं विशो अनयो दीद्यानो दिवो अग्ने बृहता रोचनेन ॥ ७ ॥
८ विशां कविं विश्पतिं शश्वतीनां नितोशनं वृषभं चर्षणीनाम् ।
प्रेतीषणिमिषयन्तं पावकं राजन्तमग्निं यजतं रयीणाम् ॥ ८ ॥

---

१ मनुष्याणां सदं इत् माता पिता— ईश्वर मनुष्योंका सच्चा माता पिता है । सच्चा पालक है और सच्चा प्रेम करनेवाला है ।

मनुष्योंको ज्ञान और विज्ञान प्राप्त करना चाहिये । जनताको ज्ञानविज्ञानसंपन्न करना चाहिये जनताका तारण करना चाहिये । जैसे माता पिता अपने संतानोंका पालन पोषण करते हैं वैसा पालन पोषण करना नेताओंका कर्तव्य है ।

(६) (यः अग्निः सपर्येण्यः) यह अग्नि पूज्य (विक्षु प्रियः होता) प्रजाओंमें प्रिय और दाता (मन्द्रः यजीयान्) आनन्द देनेवाला और यजन करनेवाला वेदीमें (निषसाद) बैठा है । (वयं) हम (दमे दीद्यमानं तं त्वा) घरमें देदीप्यमान होनेवाले उस तुझको (ज्ञुबाधः नमसा उप आ सदेम) घुटने टेककर प्रणाम करते हुए तेरे समीप प्राप्त होते हैं ।

मानव धर्म— अग्नी पूजनीय और प्रजाजनोंको प्रिय होकर अपने आसनपर बैठे । सब ऐसे तेजस्वी अग्नीको घुटने टेककर प्रणाम करें और उसके समीप बैठें ।

१ विक्षु प्रियः सपर्येण्यः— जो प्रजाजनोंमें प्रिय होता है उसकी पूजा होती है । पूजनीय नेतापर सब प्रेम करते हैं ।

२ दमे दीद्यमानं ज्ञुबाधः नमसा उप आ सदेम अपने स्थानपर तेजसे चमकनेवाले नेताको हम घुटने टेककर प्रणाम करते हैं और उसके समीप बैठते हैं ।

३ ज्ञुबाधः नमसा उपासदेम— घुटने टेककर प्रणाम करके पास बैठते हैं । यहां घुटने मोडकर, टेककर प्रार्थना करनेका भाव स्पष्ट है । वसिष्ठके मंत्रोंमें भी घुटने टेककर प्रार्थना करनेके वचन हैं ।

मितज्ञवः सेमस्यप्रमय इत्यस्त । ऋ ७° ९।४

मितज्ञुभि नमस्यैः सुभगा सरस्वती । ऋ ७।९ ।४

इस वसिष्ठ मंत्रोंमें भी (मित ज्ञु) घुटने मोडकर टेककर प्रार्थना करनेका वर्णन है ।

(७) हे (अग्ने !) तेजस्वी प्रभो ! (सुध्यः सुम्नायवः देवयन्तः) शोभन बुद्धिवाले सुखकी इच्छा करनेवाले तथा देवत्व प्राप्त करनेवाले (वयं) हम (नव्यं तं त्वा) प्रशंसा करने योग्य ऐसे तेरी (ईमहे) स्तुति करते हैं । हे (अग्ने !) तेजस्वी देव ! (त्वं बृहता रोचनेन दीद्यानः) तू अत्यन्त तेजसे प्रकाशित होकर (दिवः विशः अनयः) प्रजाओंको स्वर्गको पहुंचाता है । सुखदायक स्थानमें रखता है ।

मानव धर्म— उत्तम बुद्धिको धारण करना देवत्वको प्राप्त करना अर्थात् देवोंके गुण अपने अन्दर धारण करना और सुख प्राप्त करनेका यत्न करना मनुष्यको योग्य है । स्वयं तेजस्वी बनना और प्रजाजनोंकी सुखकी वृद्धि करना योग्य है ।

१ सुध्य — उत्तम बुद्धिको धारण करो ।

२ देवयन्त — देवत्व दिव्य गुण प्राप्त करो । अपने अन्दर देवोंके गुणोंका धारण करो ।

३ सुम्नायवः— सुख प्राप्त करनेका यत्न करो ।

४ बृहता रोचनेन दीद्यानः— बडे तेजसे प्रकाशित हो ।

५ दिवः विशः अनयः— प्रजाजनोंको सुखपूर्ण स्थितिको पहुंचाओ । जनताका सुख बढाओ ।

जिनमें अज्ञान नहीं जहां सब विद्वान रहते हैं । जहां रोग तथा अपमृत्यु नहीं है जहां खानपानकी न्यूनता नहीं है जहां शोक और क्षोभ अर्थात् दुःख कोई नहीं होता सब पूर्णायु बलवान प्रभावान् होते हैं वह स्वर्ग लोक है । स्वर्ग लोक यह है कि जहां उत्तम धर्मके लोग रहते हैं । उत्तम गुणसंपन्न लोग एक स्थानमें रहें । अपने देशको वैसा बनानेका प्रयत्न जनताके द्वारा होना चाहिये ।

(८) (शश्वतीनां विशां विश्पतिं) शाश्वत प्रजाओंके पालक (कविं नितोशनं वृषभं) ज्ञानी शत्रुओंका नाश करनेवाले बलवान (चर्षणीनां प्रेतीषणिं) प्रजाजनोंके पास जानेवाले (इषयन्तं पावकं राजन्तं) अन्न देनेवाले पवित्रता करनेवाले

११ आ यस्ततन्थ रोदसी वि भासा श्रवोभिश्च श्रवस्य१ स्तरुत्रः ।
बृहद्भिर्वाजैः स्थविरेभिरस्मे रेवद्भिरग्ने वितरं वि भाहि ॥ ११ ॥
१२ नृवद्वसो सदमिद्धेह्यस्मे भूरि तोकाय तनयाय पश्वः ।
पूर्वीरिषो बृहतीरारेअघा अस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु ॥ १२ ॥
१३ पुरूण्यग्ने पुरुधा त्वाया वसूनि राजन्वसुता ते अश्याम् ।
पुरूणि हि त्वे पुरुवार सन्त्यग्ने वसु विधते राजनि त्वे ॥ १३ ॥

(११) हे अग्नि! तेजस्वी प्रभो (यः रोदसी) जो तू द्यावापृथिवीमें (भासा वि आ ततन्थ) अपनी कान्तिको विशेष रीतिसे फैलाता है। तथा सबका (तरुत्रः) तारक होकर तू (श्रवोभिः श्रवस्य च) यशोंसे यशस्वी होता है। हे (अग्ने) अग्नि! (बृहद्भिः वाजैः स्थविरेभिः रेवद्भिः) बडे बलोंके साथ विशेष धनवालोंसे घिरा रहकर (अस्मे वितरं वि भाहि) हमारे लिये विशेष तारक होकर प्रकाशित हो जाओ।

मानव धर्म— विश्वमें अपना तेज फैलाओ सबका संरक्षण करो। अनेक यशोंको प्राप्त करके यशस्वी बनो। अनेक बडे सामर्थ्योंसे युक्त हो जाओ और बडे धनवालोंके साथ रहकर भयका निवारण अपने अनुयायियोंमें करो।

१ भासा रोदसी वि आततन्थ— अपने तेजको विश्व भरमें फैलाओ। अपने ज्ञानसे सबको ज्ञानी करो।

२ तरुत्रः— तैरानेवाला बन। अनुयायियोंका तारण कर।

३ श्रवोभिः श्रवस्य— अनेक यशोंको प्राप्त करके यशस्वी तथा कीर्तिमान बन।

४ बृहद्भिः वाजैः— अनेक बलोंसे युक्त हो जाओ।

५ स्थविरेभिः रेवद्भिः— अतिवृद्ध धनवानोंके साथ रहो। तुम्हारे साथ बडे धनी रहें।

६ वितरं वि भाहि— विशेष रीतिसे प्रकाशित हो।

(१२) हे (वसो) भगवान् अथवा बसानेवाले प्रभो! (नृवत् सदं इत् अस्मे धेहि) बहुत पुत्र पौत्रों और अन्नोंसे युक्त घर सदाके लिये हमें देवो। (भूरि पश्वः) बहुत पशु आदि भी हमें दे दो। यह सब ऐश्वर्य (तोकाय तनयाय) हमारे बाल-बच्चोंके लिये भी दे दो। (पूर्वीः बृहतीः आरे अघाः इषः) पर्याप्त बडे पापरहित पूर्ण अन्न तथा (भद्रा सौश्रवसानि अस्मे सन्तु) कल्याण करनेवाले यश हमें प्राप्त हों।

मानव धर्म— पर्याप्त सेवकोंसे तथा पशुओंसे युक्त धन मनुष्योंको और उनके पुत्रपौत्रोंको प्राप्त हो। विपुल निष्पाप अन्न मिले और कल्याण करनेवाला यश भी प्राप्त हो।

१ नृवत् सदं अस्मे धेहि— पर्याप्त पुत्रपौत्रादिसे भरा घर हमें मिले। नौकर चाकर घरमें पर्याप्त रहें। हमें धन अथवा घर ऐसा मिले कि जो पर्याप्त इष्ट मित्रोंसे भरपूर भरा रहे।

२ भूरि पश्वः अस्मे धेहि— गायें घोडे आदि पशु हमें मिलें।

३ तोकाय तनयाय इषः धेहि— बालबच्चोंके लिये पर्याप्त धन मिले।

४ पूर्वीः बृहतीः आरे अघा इषः— पर्याप्त और विपुल तथा निष्पाप अन्न हमें प्राप्त हो। पापसे कमाया धन न हो।

५ भद्रा सौश्रवसानि अस्मे सन्तु— कल्याण करने वाले यश हमें मिलें। यश कल्याण करनेवाला हो।

(१३) हे (राजन् अग्ने) प्रकाशमान अग्नि देव! (ते पुरूणि पुरुधा वसूनि) तेरे पासके अनेक प्रकारके धन हमें मिलें और (वसुता अश्याम) तथा धनपना हमें उपभोगके लिये मिले। हे (पुरुवार अग्ने) बहुतोंसे वर्णन करने योग्य अग्नि देव! (राजनि त्वे पुरूणि वसु त्वे विधते सन्ति) तुझ तेजस्वी देवके पास बहुत धन तेरी सेवा करनेवालोंको देनेके लिये सदा रहते हैं।

मानव धर्म— हमें बहुत धन उपभोगके लिये प्राप्त हो हे प्रशंसनीय वीर! तू प्रकाशमान बन। अनुयायियोंको देनेके लिये बहुत धन तुम्हारे पास रख।

१ ते पुरूणि पुरुधा वसूनि— तेरे पास अनेक प्रकारके धन रहें।

२ वसुता अश्याम— धनपना हमें प्राप्त हो। हम धनवान् बनें। हम धनका उपभोग लेनेके योग्य हों।

३ त्वे विधते पुरूणि वसु त्वे सन्ति— तेरे उपासकको देनेके लिये तेरे पास बहुत धन सदा तैयार रहता है।

(मं० १ सू० १)

१ त्वं हि क्षैतवद्यशोऽग्ने मित्रो न पत्यसे ।
त्वं विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टिं न पुष्यसि ॥ १४ ॥
२ त्वां हि ष्मा चर्षणयो यज्ञेभिर्गीर्भिरीळते ।
त्वां वाजी यात्यवृको रजस्तूर्विश्वचर्षणिः ॥ १५ ॥
३ सजोषस्त्वा दिवो नरो यज्ञस्य केतुमिन्धते ।
यद्ध स्य मानुषो जनः सुम्नायुर्जुह्वे अध्वरे ॥ १६ ॥

---

[१] (१४) हे (अग्ने) अग्नि देव ! (त्वं हि क्षैतवत् यशः) तू निश्चयसे वीरोंके साथ रहनेसे मिलनेवाला यश (मित्रो न पत्यसे) मित्रके समान प्राप्त करता है। इस कारणसे हे (विचर्षणे) विशेष रूपसे सबको देखनेवाले (वसो) धनवान् तेजस्वी देव ! (त्वं श्रवः न पुष्टिं पुष्यसि) तू अन्नसे होने वाली पुष्टिके समान सबका पोषण करता है।

मानव धर्म— हे अग्रणी ! तू ऐसा यश प्राप्त कर कि जिसके साथ अनेक मानव वीर रहते हैं। जैसे मित्रके साथ लोग रहते हैं वैसे तुम्हारे साथ वीर रहें। तू उन सबका निरीक्षण कर। उन सब लोगोंका निवास करनेवाला धन और अन्न तथा अन्नसे उन सबका पोषण कर।

१ मित्रः न क्षैतवत् यशः पत्यसे- मित्रके समान तू अनेक मनुष्योंके साथ अनेक वीरोंके साथ पराक्रम करनेसे मिलनेवाला यश प्राप्त करता है। ऐसा यश प्राप्त कर कि जो अनेक मनुष्योंकी संघटना करनेवाला हो। (क्षैत+वत् = मनुष्योंसे युक्त वीरोंसे युक्त) क्षैत = मानव समुदाय क्षिति मनुष्य।

२ विचर्षणे वसो अग्ने— विशेष रीतिसे निरीक्षण करनेवाला निवासक धनवान् तेजस्वी अग्रणी ऐसा तू बन। लोगोंका निरीक्षण कर, उनका निवास होने योग्य स्थान उनको दो। उनको धन दो और तेजस्वी बनो।

३ श्रवः न पुष्टिं पुष्यसि— अन्न जैसे पुष्टि करता है वैसा तू अपने अनुयायियोंका पोषण कर।

[२] (१५) हे अग्नि ! तेजस्वी अग्रणी (त्वां हि स्म चर्षणयः) तेरी ही वास्तवमें मनुष्य (यज्ञेभिः गीर्भिः ईळते) यज्ञोंसे और वाणियोंसे स्तुति करते हैं। और (अवृकः रजस्तूः विश्वचर्षणिः) हिंसा रहित लोकोंको तारनेवाला और सबको देखनेवाला (वाजी त्वां याति) बलवान वीर तुझे प्राप्त होता है।

मानव धर्म— सब लोग तेरे पास आवें और शुभ कर्मों और भाषणोंसे तेरी प्रशंसा करें ऐसा हो। हिंसा न करने वाला लोगोंका संरक्षण करनेवाला तथा सबका निरीक्षण करने वाला बलवान् वीर तेरे पास आकर्षित हो। ऐसा तू बन कि तुम्हारे पास अहिंसक निरीक्षण करनेवाला संरक्षक वीर आकर रहे।

१ चर्षणयः त्वां यज्ञेभिः गीर्भिः ईळते— लोग तेरी शुभ कर्मों और वाणियोंसे स्तुति गावें ऐसा तू श्रेष्ठ बन। चर्षणयः— कृषि कर्म करनेवाले किसान।

२ अ-वृकः रजस्तूः विश्वचर्षणिः वाजी त्वां याति— हिंसा न करनेवाला लोक संरक्षक सबका निरीक्षक बलवान् वीर तुम्हारे पास आकर्षित हो ऐसा तू बन। (रजस् = लोक पृथिवी आदि लोक। वाजी = बलवान्, अन्नवान्। रजस्-तूः = लोकोंका तारक। वृक-भेडिया हिंसक प्राणी। अवृकः जो भेडिये समान हिंसक नहीं है।

[३] (१६) हे अग्नि ! (सजोषः दिवः नरः) उत्साह युक्त मन वाले दिव्य नेता लोग (यज्ञस्य केतुं त्वा इन्धते) यज्ञके ध्वजारूप तुझे प्रदीप्त करते हैं। (यद् ह स्यः मानुषः जनः) जब यह मानवी जनसमुदाय (सुम्नायुः अध्वरे जुह्वे) सुखकी इच्छा करता हुआ हिंसारहित कर्ममें तुम्हारी प्रार्थना करता है।

मानव धर्म— उत्साही मनवाले दिव्य नेता लोग यज्ञके ध्वजरूप अग्निको प्रदीप्त करें और सुख बढानेकी इच्छा करने वाले सब मनुष्य एकत्रित होकर, हिंसा रहित कर्म करते हुए, ईश्वरकी प्रार्थना करें।

१ सजोषः दिवः नरः यज्ञस्य केतुं इन्धते- उत्साही दिव्य नेता मिलें और यज्ञध्वजरूप अग्निको प्रदीप्त करें। (दिवः नरः दिव्य नेता गण। दिव्यही तेजस्वी नेता। उत्तम व्यवहार करनेवाले विजिगीषु नेता)

४ ऋधद्यस्ते सुदानवे धिया मर्त' शशमते ।
ऊती ष बृहतो दिवो द्विषो अंहो न तरति ॥ १७ ॥

५ समिधा यस्त आहुतिं निशितिं मर्त्यो नशत् ।
वयावन्तं स पुष्यति क्षयमग्ने शतायुषम् ॥ १८ ॥

६ त्वेषस्ते धूम ऋण्वति दिवि षञ्छुक्र आतत' ।
सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥ १९ ॥

---

१ मानुषः जनः सुम्नायुः अध्वरे जुह्वे- मानवी जीव सुख प्राप्त करनेकी इच्छासे हिंसारहित कर्ममें मिलें और ईश्वरकी प्रार्थना करें ।

१ मानुषः जनः सुम्नायुः— मानवी प्रजा सुख प्राप्त करनेकी इच्छा करे ।

[४] (१७) हे अग्ने ! (सुदानवे धिया मर्तः) उत्तम दान देनेवाले ऐसे तेरे लिये बुद्धिपूर्वक जो मनुष्य (शशमते) स्तुति करता है । (सः बृहतः दिवः ऊती) वह महान् कान्तिवाले तेरी रक्षासे सुरक्षित होकर (अंहः न द्विषः तरति) पापके शत्रुओंसे पार हो जानेके समान उसे पार हो जाता है । और वह (ऋधत्) बढता भी जाता है ।

मानव धर्म— उत्तम दान देनेवालेकी ही प्रशंसा सब मनुष्य करें । मनुष्य उत्तम संरक्षणसे सुरक्षित होकर शत्रुसे अपनी सुरक्षा करे और पापसे भी बचे और बढता जाय ।

१ ऋधत्- मनुष्य बढता जाय उन्नत होता रहे । अभ्युदयको प्राप्त करे । (ऋधु-वृद्धौ)

१ मर्तः सुदानवे धिया शशमते- मनुष्य उत्तम दाताकी ही बुद्धिपूर्वक स्तुति करे । दान न देनेवालेकी कभी कोई प्रशंसा न करे ।

१ बृहतः दिवः ऊती द्विषः तरति— बडे दिव्य संरक्षणको प्राप्त होनेवाला शत्रुओंके पार करता है । विजयी होता है । मनुष्य उत्तम संरक्षक साधन प्राप्त करे और विजयी बने ।

४ अंहः न तरति— पापसे बचनेके समान मनुष्य अपना बचाव करे । पापसे अपने आपको बचावे ।

[५] (१८) हे (अग्ने) अग्नि ! (समिधा) समिधाके साथ (निशितिं आहुतिं) पवित्र आहुति (यः मर्त्यः ते नशत्) जो मनुष्य तुझे देता है । (सः) वह (वयावन्तं क्षयं पुष्यति) पुत्रपौत्रादिसे युक्त अपने घरको बढाता है और (शतायुषं) सौ वर्षकी पूर्ण आयु प्राप्त करता है ।

मानव धर्म— जो मनुष्य यज्ञमें समिधाएं और पवित्र आहुतियां अग्निको अर्पण करेगा वह सौ वर्षकी पूर्ण आयु प्राप्त करेगा और बालबच्चोंसे बढनेवाला घर और भी बढावेगा ।

१ समिधा निशितिं आहुतिं मर्त्यः नशत्— समिधाएं और पवित्र आहुतियां मनुष्य अग्निको समर्पण करे । मनुष्य यज्ञ करे ।

१ स मर्त्यः वयावन्तं क्षयं पुष्यति— वह मनुष्य बालबच्चोंसे और धनधान्यसे भरा हुआ घर और भी परिपुष्ट करता है । और भी उत्तम घर बाल बच्चोंसे और ऐश्वर्यसे अभिवर्धित करता रहता है । बढता रहता है ।

१ स मर्त्यः शतायुषं पुष्यति वह मनुष्य सौ वर्षतक पुष्ट होता रहता है । सौ वर्षकी पूर्ण आयुतक हृष्टपुष्ट होता रहता है ।

[६] (१९) हे अग्नि ! (ते त्वेषः शुक्रः धूमः) तेरा तेजस्वी निर्मल धुआं (दिवि आततः सन्) अन्तरिक्षमें फैलता हुआ (ऋण्वति) सर्वत्र जा रहा है । हे (पावक) पवित्र करनेवाले अग्नि ! (सूरः न) सूर्यके समान (कृपा त्वं द्युता रोचसेहि) स्तुतिसे स्तूयमान होकर तू कान्तिसे दीप्तिमान होता है ।

मानव धर्म— मनुष्यका तेज अग्निके समान चारों ओर फैल जाय और मनुष्य सूर्यके समान अपने तेजसे प्रकाशित होता रहे ।

१ ते शुक्रः दिवि आततः— तेरा शुद्ध प्रकाश आकाशमें फैला है ।

२ त्वं द्युता रोचसे- तू अपने तेजसे प्रकाशित होता है ।

१ पावक— पवित्रता करनेवाला, शुद्धता करनेवाला । स्वयं पवित्र बनना और साथियोंको पवित्र बनाना ।

७ अधा हि विक्ष्वीड्योऽसि प्रियो नो अतिथिः ।
रण्वः पुरीव जूर्यः सूनुर्न त्रययाय्यः ॥ २० ॥
८ क्रत्वा हि द्रोणे अज्यसेऽग्ने वाजी न कृत्व्यः ।
परिज्मेव स्वधा गयोऽत्यो न ह्वार्यः शिशुः ॥ २१ ॥
९ त्वं त्या चिदच्युताऽग्ने पशुर्न यवसे ।
धामा ह यत् ते अजर वना वृश्चन्ति शिक्वसः ॥ २२ ॥

[७] (२०) हे अग्नि ! तू (विक्षु ईड्यः असि) प्रजाओंमें प्रशंसनीय है, (अध) और (हि नः अतिथिः) हमें अपने घर आये अतिथिकी तरह (प्रियः) प्रिय है। तथा (पुरि इव जूर्यः रण्वः) नगरीमें रहनेवाले हितोपदेशक वृद्ध पुरुषके समान रमणीय है। और (सूनुः न त्रययाय्यः) तू पुत्रकी तरह पालनीय है।

मानव धर्म– प्रजाजनोंमें प्रशंसनीय अतिथिके समान पूज्य वृद्ध उपदेश करनेवाले नागरिकके समान सबको प्रिय और पुत्रके समान संरक्षणके योग्य बन।

१ विक्षु ईड्यः असि– प्रजाजनोंमें प्रशंसनीय बन।

२ प्रियः अतिथिः– अतिथिके समान प्रिय हो।

३ पुरि जूर्यः रण्वः इव– नगरमें वृद्ध मनुष्य जैसा उपदेश देनेके कारण सबको प्रिय होता है वैसा तू बन। नगरमें वृद्धोंका उपदेश अन्य लोग सुनें।

४ सूनुः न त्रययाय्यः पुत्रके समान पालनीय हो। (त्रययाय्यः— परित्राण करने योग्य अथवा त्रय याय्यः तीनों शुभ अवस्थाओंको प्राप्त होनेवाला। विद्या तप और कर्मकी उत्तमरीतिसे प्राप्त कर।

मनुष्य (ईड्यः) प्रशंसनीय (प्रियः) सबको प्रिय और (रण्वः) रमणीय हो। यह आचार व्यवहारकी उत्तमतासे हो सकता है। तथा राष्ट्रमें बालकोंका उत्तम पालन पोषण और संरक्षण होता रहे।

[८] (२१) हे (अग्ने) अग्नि! (क्रत्वा द्रोणे अज्यसे हि) मन्थन रूप कर्मसे उत्पन्न होकर काष्ठमें तू गति करता है। तथा (वाजी न कृत्व्यः) वेगवान् घोडेके समान तू बडा उपयोगी कर्म करनेवाला है। और (परिज्मा इव) तू वायुकी तरह सर्वगामी है। तथा (स्वधा गयः) अन्न और गृह देनेवाला है। (शिशुः अत्यः न ह्वार्यः) बालक होनेपर भी घुड दौडके घोडेके समान उत्तम गतिशील है।

मानव धर्म— मनुष्य घोडेके समान बडके कर्म करता रहे। वायुकी तरह सर्वत्र गमन करके सबकी स्थिति देखे। अपने घरमें रहे। और पर्याप्त अन्न प्राप्त करे। बालक होनेपर भी घुडदौडके घोडेके समान गति करता रहे।

१ क्रत्वा द्रोणे अज्यसे— पुरुषार्थसे अपने मर्यादित स्थानमें भी प्रगति करता रहे। द्रोण— पात्र अथवा काष्ठ।

२ वाजी न कृत्व्यः— घोडेके समान उपयोगी कर्म करता रहे।

३ परिज्मा इव— वायुके समान सर्वत्र संचार करे।

४ स्वधा गयः– (स्व) अपने अन्दर (धा) धारण शक्ति योग्य अन्नसे बढावे और अपने (गयः) घरमें रहे। अन्न और घर प्राप्त करे। स्वधा-अन्न अपनी निज धारणा शक्ति। गय– घर।

५ शिशुः अत्यः न ह्वार्यः— घुड दौडके घोडेके समान कुटिल गतिसे गमन करे। बालक होनेपर भी घुडदौडके घोडेके समान गति करता रहे घूमता रहे। सतत कर्तव्य कर्म कर।

इस मन्त्रमें कहा है कि मनुष्य (वाजी) बलवान बने (क्रत्वा) कर्म करे (परि-ज्मा) चारों ओर भ्रमण करे (स्व-धा) अपनी धारणा शक्ति बढाने उत्तम अन्न प्राप्त करे, (गय) अपने लिये घर करे (अत्यः) घुडदौडके घोडेके समान फूर्ति धारण करे। मानव धर्मकी दृष्टिसे ये सब पद मननीय हैं।

[९] (२२) हे (अग्ने) अग्नि! (यवसे पशुः न) घासको पशु जैसा भक्षण करता है उस प्रकार (त्वं त्या अच्युता) तू कठिन काष्ठोंको भी खा जाता है। हे (अजर) जरारहित! (यत् ते शिक्वसः धाम) तेरी तेजस्वी ज्वाला (वना वृश्चन्ति ह) अरण्योंको भस्म कर देती है।

मानव धर्म— जिस तरह पशु घास खाता है वैसा अग्नि काष्ठोंको खाजाता है वैसा मनुष्य वा राष्ट्र अपने शत्रुका नाश करे। शत्रुको निर्बल करे, उसे समुता करते हुए रहने न दें।

१० वेषि ह्यध्वरीयतामग्ने होता दमे विशाम् ।
समृधो विश्पते कृणु जुषस्व हव्यमङ्गिरः ॥ २३ ॥
११ अच्छा नो मित्रमहो देव देवानग्ने वोचः सुमतिं रोदस्योः ।
वीहि स्वस्तिं सुक्षितिं दिवो नॄन्द्विषो अंहांसि दुरिता तरेम ता तरेम तवावसा तरेम ॥२४

---

१ त्वं स्या अच्युता— तू कम न गिरनेवाले शत्रुओंको गिराता है वैसा राजा नम्र न होनेवाले शत्रुको विनम्र बनावे।

२ शिक्वसः ते धाम वसा वृश्चन्ति— प्रकाशित हुई तेरी दिव्य ज्वाला वनोंको जलाती है, उस तरह अपने शत्रुको प्रकाशित शक्ति शत्रुका पूर्ण नाश करे।

[१०] (२३) हे (अग्ने) अग्नि! (अध्वरीयतां विशां दमे) यज्ञ करनेवाली प्रजाओंके घरमें तू (होता वेषि हि) होता रूपसे प्रवेश करता है अतः (विश्पते) हे प्रजाओंके पालक! हमको (समृधः कृणु) समृद्धशाली बनाओ। हे (अंगिरः) अंगोंमें व्यापक! (हव्यं जुषस्व) हमारे हविष्यान्नको ग्रहण कर।

मानव धर्म- यज्ञ करनेवाली प्रजाओंके घरोंमें हवन करने के लिये जा और वहां यज्ञ कर्म कर। प्रजाओंका पालन कर प्रजाओंको समृद्धि युक्त बना दे। हविष्यान्नका सेवन कर।

१ अध्वरीयतां विशां दमे होता वेषि—यज्ञ करनेवाले लोगोंके घरोंमें हवन कर्म करनेके लिये जाओ और वहांका यजन करो।

२ विश्पतिः– प्रजाजनोंका पालन कर।

३ समृधः कृणु हम सबको समृद्धिसे युक्त कर।

यज्ञ स्वयं करना और दूसरोंसे कराना। प्रजाजनोंका पालन उत्तम रीतिसे करना और उनको वैभवशाली बनाना। हवि-ष्यान्नका ग्रहण करके उससे यज्ञ करना चाहिए।

[११] (२४) हे (मित्रमहः) जिसकी मित्रता महत्त्व युक्त सहायक होती है ऐसे (देव अग्ने) दिव्य गुणयुक्त अग्नि! (रोदस्योः देवान् अच्छ) द्यावापृथिवीमें रहनेवाले देवोंके पास (नः सुमतिं वोचः) हमारी की हुई स्तुतिका कथन कर। (दिवः नॄन् सुक्षितिं) दिव्य नेताओंको सुन्दर निवास स्थान दो तथा (स्वस्ति वीहि) कल्याणकारक अवस्थाको प्राप्त कराओ। (द्विषः अंहांसि दुरिता तरेम) हम शत्रुओंसे पापोंसे और कष्टोंसे मुक्त हो जांय। तथा (ता तरेम) उन कष्टोंको हम पूर्ण रीतिसे पार कर जांय। हे (अग्ने) अग्नि! (तव अवसा तरेम) तेरे रक्षणसे हम सब कष्टोंसे पार जांय।

मानव धर्म- मित्रका महत्त्व बढाना योग्य है। नेता अपने मित्रोंका महत्त्व बढावें। सब विबुधोंके पास हमारी उत्तम बुद्धिसे प्रकट किया हुआ शुभसंदेश पहुंचा दो। दिव्य नेताओंको उत्तम रहनेका स्थान दो और उनका कल्याण करो। शत्रुओंसे पापोंसे और कष्टोंसे सब प्रजाका बचाव करो। ऐसा करो कि निःसंदेह हम सुरक्षित रहें। तेरे संरक्षणसे हम सुरक्षित हों।

१ मित्रमहः– मित्रकी महत्ता प्रकट करो। मित्रके गुण प्रकट करो। मित्रका महत्त्व बढाओ।

२ देवान् नः सुमतिं वोचः— विबुधोंके पास हमारी उत्तम संदेशकी वाणी पहुंचा दो। हमारी उत्तम बुद्धि विबुधोंको विदित हो जाय ऐसा कर। हमारा शुभसंकल्प ज्ञानी लोग जानें।

३ नॄन् सुक्षितिं स्वस्तिं वीहि— मनुष्योंको उत्तम घर दो और उनका कल्याण करो।

सुक्षिति— उत्तम घर, उत्तम मनुष्य। स्वस्ति (सु अस्ति)— उत्तम रहना सहना कल्याण।

४ द्विषः अंहांसि दुरिता तरेम— शत्रुओं पापों और कष्टोंसे हमारा बचाव हो।

५ तव अवसा तरेम ता तरेम— तेरे संरक्षणसे हम कष्टोंसे पार हों और सब कष्टोंसे हम सब पार हो जांय। राजाके संरक्षणसे सब प्रजा सुरक्षित हो जाय।

मित्रमहः मित्रका महत्त्व बढानेवाले। मित्रका परस्पर महत्त्व प्रकट करो। यह पद मानवोंको विशेष आदेश दे रहा है। मित्रका महत्त्व बढानेसे वह मित्र अपना महत्त्व बढाता है और इस तरह परस्परका महत्त्व बढानेसे दोनोंका महत्त्व बढ जाता है और दोनोंका कल्याण होता है।

सुमतिं वोचः उत्तम बुद्धिसे युक्त भाषण कर। भाषण करना ही है तो उत्तम बुद्धि युक्त ही भाषण करना उचित है।

(मं० ९ सू० १)

१ अग्ने स क्षेषदृतपा ऋतेजा उरु ज्योतिर्नशते देवयुष्टे ।
यं त्वं मित्रेण वरुणः सजोषा देव पासि त्यजसा मर्तमंहः ॥ २५ ॥

२ ईजे यज्ञेभिः शशमे शमीभिर्ऋधद्वारायाग्नये ददाश ।
एवा चन तं यशसामजुष्टिर्नांहो मर्तं नशते न प्रदृप्तिः ॥ २६ ॥

भूम सुक्षितिं स्वस्ति वीहि मनुष्योंको उत्तम निवास स्थान दो और उनका उत्तम कल्याण कर। मनुष्योंको ये ही दो बातें प्राप्त होनी चाहिए।

[१](२५) हे (देव) अग्नि देव! (मित्रेण वरुणः) मित्र और वरुणके साथ (सजोषाः त्वं) समान विचार रखनेवाला तू (त्यजसा) बलसे (यं मर्तं) जिस मनुष्यको (अंहः पासि) पापसे रक्षा करता है। हे (अग्ने) अग्नि! (सः) वह मनुष्य (ऋतपा ऋतेजाः) सत्यका पालक सत्यके पालनके लिये उत्पन्न हुआ (क्षेषत्) दीर्घायु प्राप्त करता है। तथा (देवयुः ते उरु ज्योतिः नशते) वह देवत्व प्राप्त करनेका इच्छुक तुम्हारा विस्तीर्ण तेज भी प्राप्त करता है।

मानव धर्म— मनुष्य सत्यका पालन करे, सत्य पालनके लिये ही कटिबद्ध रहे। सत्यका पालन करनेके लिये ही मैं जन्मा हूं ऐसा वह मनमें समझे। जो ऐसा करता है वह देव-भक्त प्रभुका तेज प्राप्त करके तेजस्वी होता है। और मित्र वरुणके साथ अग्नि एक मतसे अपने बलसे इस मनुष्यकी सुरक्षा करते हैं। इससे वह निर्भय होता है।

१ ऋतपा ऋतेजाः क्षेषत्— सत्यका पालक और सत्य पालनके लिये ही अपना जीवन देनेवाला दीर्घजीवी होता है। (क्षि—क्षय वह करना चाहिएगा)

२ सः देवयुः उरु ज्योतिः नशते— वह देवभक्त विस्तृत तेज प्राप्त करता है। तेजस्वी बनता है। देवयुः— देवत्व दैवी शुभ गुण अपने अन्दर धारण करनेकी इच्छा करनेवाला।

३ त्यजसा तं मर्तं अंहः पासि बलसे उस मनुष्यका संरक्षण तू करता है। त्यजस् शत्रु पर फेंककर मारनेका शस्त्र, शत्रुको दूर करनेका साधन।

मित्र-वरुण-अग्नि यह त्रिक है। 'मित्र वरिष्ठ-अर्यमा' 'सूर्य-चन्द्र-अग्नि' ऐसे अनेक त्रिक हैं। साथी श्रेष्ठ और नेता यह व्यवहारमें त्रिक है। इस त्रिककी सहायता होनेसे लाभ होता है।

[२](२६) जो मनुष्य (ऋधद्वाराय अग्नये ददाश) प्रशंसनीय श्रेष्ठ धन वाले अग्निको हवि अर्पण करता है वह मनुष्य (यज्ञेभिः ईजे) अनेक यज्ञ करता है। और (शमीभिः शशमे) शान्ति देनेवाले कर्मोंसे शान्ति प्राप्त करता है। (तं यशसां अजुष्टिः) उस मनुष्यको यशस्वी पुत्रोंकी अप्राप्ति (न एव नशते) कभी नहीं होती। तथा उस (मर्तं अंहः न) मनुष्यको पाप भी नहीं लगता और (प्रदृप्तिः न) गर्व भी उसको नहीं होता।

मानव धर्म— जो मनुष्य अग्निमें हवन करता है और अनेक यज्ञ कर्मोंको करके शान्ति लाभ करता है उसको पुत्र पौत्रोंकी प्राप्ति होती है तथा उसको पाप और घमण्ड कभी नहीं होता।

१ ऋधद्वाराय अग्नये ददाश यज्ञेभिः ईजे— प्रदीप्त अग्निमें हवि अर्पण करके मनुष्य अनेक यज्ञ करे। 'ऋधद्-वारः' — भरपूर धन जिसके पास है। मनुष्यको ऐसा होना चाहिये और उसने इस धनसे जनताका हित यज्ञ करके करना चाहिये।

२ शमीभिः शशमे— शान्ति स्थापनाके विविध कर्म करके वह शान्ति प्राप्त करे। शमी — शान्ति स्थापनके कर्म।

३ तं यशसां अजुष्टिः न नशते— उसको यशस्वी पुत्र पौत्रोंकी न्यूनता नहीं रहती। उसको यश प्राप्त करनेवाले अनेक पुत्रपौत्र होते हैं। (यशस्—यशस्वी पुत्र यशस्वी मित्र जिनकी सहायक)

४ तं मर्तं अंहः न प्रदृप्तिः न— उस मनुष्यको पाप तथा गर्व नहीं होते। वह निष्पाप तथा निगर्व होकर आनन्दसे दीर्घ जीवन प्राप्त करता है। दृप्तिः—गर्व, घमंड प्र-दृप्तिः- घमंड न होना गर्वरहित होकर उत्तम व्यवहार करना।

(म० ६ सू० ३)

१ अग्ने स क्षेषदृतपा ऋतेजा उरु ज्योतिर्नशते देवयुष्टे ।
य त्वं मित्रेण वरुणः सजोषा देव पासि त्यजसा मर्तमंहः ॥ २५ ॥

२ ईजे यज्ञेभिः शशमे शमीभिर्ऋधद्वारायाग्नये ददाश ।
एवा चन तं यशसामजुष्टिर्नांहो मर्तं नशते न प्रदृप्तिः ॥ २६ ॥

नून् सुक्षितिं स्वस्ति वीहि — मनुष्योंको उत्तम निवास स्थान दो और उनका उत्तम कल्याण कर। मनुष्योंको ये ही दो बातें प्राप्त होनी चाहिए।

[१] (२५) हे (देव) अग्नि देव! (मित्रेण वरुणः) मित्र और वरुणके साथ (सजोषाः त्वं) समान विचार रखनेवाला तू (त्यजसा) बलसे (यं मर्तं) जिस मनुष्यकी (अंहः पासि) पापसे रक्षा करता है। हे (अग्ने) अग्नि! (सः) वह मनुष्य (ऋतपा ऋतेजाः) सत्यका पालक सत्यके पालनके लिये उत्पन्न हुआ (क्षेषत्) दीर्घायु प्राप्त करता है। तथा (देवयुः ते उरु ज्योतिः नशते) वह देवत्व प्राप्त करनेका इच्छुक तुम्हारा विस्तीर्ण तेज भी प्राप्त करता है।

मानव धर्म— मनुष्य सत्यका पालन करे, सत्य पालनके लिये ही कटिबद्ध रहे। सत्यका पालन करनेके लिये ही मैं जन्मा हूं ऐसा वह मनमें समझे। जो ऐसा करता है वह देवत्व प्रभुका तेज प्राप्त करके तेजस्वी होता है। और मित्र वरुणके साथ अग्नि एक मतसे अपने बलसे इस मनकी सुरक्षा करते हैं। इससे वह निष्पाप होता है।

१ ऋतपा ऋतेजाः क्षेषत्— सत्यका पालक और सत्य पालनके लिये ही अपना जीवन देनेवाला दीर्घजीवी होता है। (ऋत—सत्य, यज्ञ, सरलता, अकुटिलता)

२ सः देवयुः उरु ज्योतिः नशते— वह देवभक्त विस्तृत तेज प्राप्त करता है। तेजस्वी बनता है। देवयुः— देवत्व दैविक शुभ गुण अपने अन्दर धारण करनेका यत्न करनेवाला।

३ त्यजसा तं मर्तं अंहः पासि— बलसे उस मनुष्यका संरक्षण तू करता है। त्यजस्— शत्रु पर फेंककर मारनेका शस्त्र, शत्रुको दूर करनेका साधन।

मित्र-वरुण-अग्नि यह त्रिक है। मित्र वरिष्ठ-अर्यमा सूर्य-चन्द्र-अग्नि ऐसे अनेक त्रिक हैं। साथी श्रेष्ठ और नेता यह व्यवहारमें त्रिक है। इस त्रिककी सहायता होनेसे लाभ होता है।

[२] (२६) जो मनुष्य (ऋधद्-वाराय अग्नये ददाश) प्रशंसनीय श्रेष्ठ धन वाले अग्निको हवि अर्पण करता है वह मनुष्य (यज्ञेभिः ईजे) अनेक यज्ञ करता है। और (शमीभिः शशमे) शान्ति देनेवाले कर्मोंसे शान्ति प्राप्त करता है। (तं यशसां अजुष्टिः) उस मनुष्यको यशस्वी पुत्रोंकी अप्राप्ति (न एव नशते) कभी नहीं होती। तथा उस (मर्तं अंहः न) मनुष्यको पाप भी नहीं लगता और (प्रदृप्तिः न) गर्व भी उसको नहीं होता।

मानव धर्म— जो मनुष्य यज्ञाग्निमें हवन करता है और अनेक यज्ञ कर्मोंको करके शान्ति लाभ करता है उसको पुत्र पौत्रोंकी प्राप्ति होती है तथा उसको पाप और घमण्ड कभी नहीं होता।

१ ऋधद्वाराय अग्नये ददाश यज्ञेभिः ईजे— प्रदीप्त अग्निमें हवि अर्पण करके मनुष्य अनेक यज्ञ करे। ऋधद्-वारः — भरपूर धन जिसके पास है। मनुष्यको ऐसा होना चाहिये और उसने इस धनसे जनताका हित यज्ञ करके करना चाहिये।

२ शमीभिः शशमे— शान्ति स्थापनाके विविध कर्म करके वह शान्ति प्राप्त करे। शमी — शान्ति स्थापनके कर्म।

३ तं यशसां अजुष्टिः न नशते— उसको यशस्वी पुत्र पौत्रोंकी न्यूनता नहीं होती। उसको यज्ञ प्राप्त करनेवाले अनेक पुत्रपौत्र होते हैं। (यशस्—यशस्वी पुत्र, यशस्वी मित्र विजयी सहायक)

४ तं मर्तं अंहः न प्रदृप्तिः न— उस मनुष्यको पाप तथा गर्व नहीं होते। वह निष्पाप तथा निगर्वी होकर आनन्दसे दीर्घ जीवन प्राप्त करता है। दृप्तिः—गर्व, घमंड प्र-दृप्तिः— घमंड न होना गर्वरहित होकर उत्तम व्यवहार करना।

५ स इवस्तेव प्रति धादसिष्यञ्छिशीत तेजोऽयसो न धाराम् ।
चित्रध्रजतिररतिर्यो अक्तोर्वेर्न द्रुषद्वा रघुपत्मजंहाः ॥ २९ ॥
६ स ईं रेभो न प्रति वस्त उस्राः शोचिषा रारपीति मित्रमहाः ।
नक्तं य ईमरुषो यो दिवा नॄनमर्त्यो अरुषो यो दिवा नॄन् ॥ ३० ॥
७ दिवो न यस्य विधतो नवीनोद्वृषा रुक्ष ओषधीषु नूनोत् ।
घृणा न यो ध्रजसा पत्मना यन्ना रोदसी वसूना दं सुपत्नी ॥ ३१ ॥

[५] (२९) (अस्ता इव प्रति धात्) बाण चलाने वाला लक्ष्यको साधकर जैसा अपना बाण फेंकता है। उस प्रकार (स इत्) वह (असिष्यन् तेजः शिशीत) बाण फेंकते समय अपनी ज्वालाको तीक्ष्ण कर लेता है (अयसो न धारां) जैसी परशुकी धारा तेज की जाती है। (चित्रध्रजतिः अक्तोः) विचित्र गतिवाला अग्नि रात्रिके (अरतिः) अन्धकारका नाश करनेके लिए (द्रुषद्वा वेः न यः रघुपत्मजंहाः) वृक्षपर बैठे हुए शीघ्र उड़नेवाले पक्षीकी तरह लकड़ी पर बैठता है लकड़ीको जलाता है।

१ अस्ता इव प्रतिधात्— बाण फेंकनेवाला लक्ष्यका वेध करके अपना बाण फेंकता है। 'प्रतिधात्' पद लक्ष्य वेधका बोध करता है।

२ असिष्यन् तेजः शिशीत— बाण फेंकनेवाला बाणको तेज करता है और तीक्ष्ण करके शत्रुपर फेंकता है। यहाँ बाण आदि शस्त्र तीक्ष्ण करके शत्रुपर फेंकने चाहिए यह बोध मिलता है।

३ अयसः धारां न— लोहेकी तलवार की धारा तीक्ष्ण होती है। (यहाँ लोहारके निर्माण की किया है।)

४ रघुपत्मजंहाः वेः न द्रु+षद्+वा— शीघ्र उड़नेवाला पक्षी जैसा दूसरे स्थानपर शीघ्र जाता है वैसा अग्नि एक स्थानसे दूसरे स्थानपर शीघ्र जाता है। (द्रु-सद्-वा) लकड़ीपर बैठने वाला अग्नि गति करता है।

[६] (३०) (सः ईं) वह अग्नि (रेभः न) प्रशंसनीय सूर्यके समान (उस्राः प्रति वस्ते) ज्वालाओंको पहनता है। अपना प्रकाश फैलाता है। तथा (मित्रमहाः शोचिषा रारपीति) मित्रके समान महत्त्व बढानेवाला यह अग्नि अपने प्रकाशसे बारबार शब्द करता है। (यः ईं नक्तं अरुषः) जो यह अग्नि रात्रिमें प्रकाशित होकर (दिवा नॄन्) दिनके समान मनुष्योंको अपने कार्यमें प्रेरित करता है। तथा (यः अमर्त्यः अरुषः दिवा नॄन्) वह अमर देव प्रकाशित होकर दिनके समय भी मनुष्योंको शुभ कर्ममें प्रेरित करता है।

जैसा सूर्य उदित होनेके बाद अपने प्रकाशको फैलाता है वैसा ही यह अग्नि भी अपनी ज्वालाओंको फैलाता है। अपने मित्रोंका महत्त्व बढानेके समान यह अग्नि अपने प्रकाशके साथ बारंबार शब्द करता है और अपने मित्रका यश बढाता है। यह अग्नि रात्रीके समय प्रकाशित होकर मनुष्योंको शुभ कर्ममें प्रेरित करता है। यह अमर अग्निदेव अपने प्रकाशसे दिनमें भी मनुष्योंको शुभ कर्ममें प्रेरित करता है।

मानव धर्म— अपना तेज बढाओ। सूर्यके समान तेजस्वी बनो। अपने मित्रका महत्त्व बढाओ। अपनी तेजस्वितासे साथ भाषण करो। रात्रीके अन्धकारके समय भी ऐसा तेज फैलाओ जैसा दिनमें होता है। दिनके प्रकाशमें जैसे लोग शुभ कर्ममें प्रेरित होते हैं वैसे रात्रीमें प्रकाश करके लोगोंको शुभ कर्ममें प्रेरित करो।

१ सः रेभः न उस्राः प्रति वस्ते— वह सूर्यके समान अपने तेजको फैलाता है। प्रकाशके वस्त्र पहनता है।

२ मित्र महाः शोचिषा रारपीति— मित्रका महत्त्व बढानेवाला अपना भाषण तेजस्वितासे साथ करता है।

३ दिवा नॄन् नक्तं अरुषः— दिनमें जैसे लोग शुभ कर्ममें प्रेरित होते हैं वैसे रात्रीके समय प्रकाश करके शुभ कर्ममें लोगोंको प्रेरित करता है।

४ अमर्त्यः अरुषः दिवा नॄन्— अमरदेव अपने प्रकाशसे दिनके समय मनुष्योंको शुभ कर्ममें प्रेरित करता है वैसा ही रात्रीके समय प्रकाश करके मनुष्योंको प्रेरित करो।

[७] (३१) (दिवो न विधतः) तेजस्वी सूर्यके समान प्रकाशमान (यस्य नवीनोत्) जिस अग्निका महान् शब्द होता है। (वृषा रुक्ष ओषधीषु नूनोत्) बलवान् प्रदीप्त हुआ अग्नि औषधी आदिको जलाते समय बड़ा शब्द करता है। (घृणा न) जो प्रकाशसे प्रकाशमान होनेके समान (ध्रजसा पत्मना यन्) चमकते हुए तेजसे इधर उधर और ऊपरकी तरफ जाता है और (दं सुपत्नी रोदसी) हमारे द्युलोक

८ धायोभिर्वा यो युज्येभिरर्कैर्विद्युन्न दविद्योत्स्वेभिः शुष्मैः ।
शर्धो वा यो मरुतां ततक्ष ऋभुर्न त्वेषो रभसानो अद्यौत् ॥ ३२ ॥

म० ६ सू० ४

१ यथा होतर्मनुषो देवताता यज्ञेभिः सूनो सहसो यजासि ।
एवा नो अद्य समना समानानुशन्नग्न उशतो यक्षि देवान् ॥ ३३ ॥

धारण करनेवाली और उत्तम पालन करनेवाली द्यावापृथिवीको (वसुना आ) धनसे पूर्ण करता है ।

जो अग्नि सूर्यके समान प्रकाशता है । और औषधियों और काष्ठोंको जलानेके समय जिसका बडा शब्द होता है । जो अपने प्रकाशसे और तेजसे ऊपरकी ओर ही जाता है और जो अपने धनसे पूर्वोक्त भार पृथिवीको भरपूर भर देता है ।

[८] (३२) (यः अग्निः) जो अग्नि (धायोभिः युज्येभिः अर्कैः) धारक और सबको जोडने योग्य तेजोंके समान कान्तिसे युक्त है । और जो (विद्युत् न स्वेभिः शुष्मैः दविद्योत्) बिजलीके समान अपने तेजसे चमकता है । (वा मरुतां शर्धः वा ततक्ष) जो मरुतोंके बलको कम करता है । वह (ऋभुः न त्वेषः रभसानः अद्यौत्) अत्यंत भासमान सूर्यके समान कान्तिवाला अग्नि वेगसे प्रकाशित होता है ।

सबको जोडने योग्य धारक जैसे अपनी शक्तिसे युक्त होते हैं । वैसा यह अग्नि अपनी शक्तिसे शक्तिमान है बिजलीके समान जो तेजवाला है मरुतोंके बलसे जिसका बल अधिक है तेजस्वी सूर्यके समान जो कान्तिमान् है वह अग्नि वेगसे यहां प्रदीप्त हुआ है ।

१ धायोभिः युज्येभिः अर्कैः— धारक शक्ति और योग्यता तथा तेजसे युक्त हो । (अर्कः— पूजनीय सत्कारके योग्य तेजस्वी)

२ विद्युत् न स्वेभिः शुष्मैः दविद्योत्— बिजलीके समान अपनी कान्तिसे प्रकाशता रह । (शुष्म— बल सामर्थ्य ।)

३ मरुतां शर्धः ततक्ष— वीरोंका बल कम कर अर्थात् वीरोंके बलसे अपना बल बढाओ । (शर्धः— बल सैन्य ।)

४ ऋभुः न त्वेषः रभसानः अद्यौत्— सूर्यके समान तेजस्वी और वेगवान् होकर प्रकाशता रह । (ऋभुः— तेजस्वी सूर्य किरणें)

मानव धर्म— अपने अन्दर धारक शक्ति योग्यता और तेजस्विता बढाओ, बिजलीके समान अपने तेजसे प्रकाशित हो वीरोंके बलसे अपना बल बढा और सूर्यके समान अपने तेजसे प्रकाशता रह ।

[१] (३३) हे (होतः) देवताओंके आह्वाता ! (सहसः सूनो) बलके पुत्र अग्नि ! (यथा मनुषः देवताता) जिस प्रकार मनुष्यके यज्ञमें तू (यज्ञेभिः यजासि) हविर्द्रव्योंसे देवोंका सत्कार करता रहा (एव) उस प्रकार (नः अद्य समानान् उशतः देवान् उशन्) हमारे इस यज्ञमें आज उनके समान दिव्य विबुधोंका सत्कार करनेकी इच्छा करके (समना यक्षि) एकाग्रचित्तसे शीघ्र ही उनका यजन कर ।

मानव धर्म— दिव्य विबुधोंका सत्कार करो और देवताओंका यजन हविर्द्रव्यका अर्पण करके करो ।

१ अग्नि (होता=आह्वाता) देवताओंको बुलानेवाला है (सहसः सूनुः) बलका पुत्र शक्तिसे बढनेवाला है । बलवान पितासे उत्पन्न होता है । अरणियोंके घर्षणसे उत्पन्न होता है और वह घर्षण बलसे किया जाता है । इसलिये अग्नि बलका पुत्र है ।

२ अद्य समानान् उशतः देवान् उशन् समना यक्षि— आज सम विचारवाले देवोंका सत्कार करनेकी इच्छा करके एक मनके विचारसे उनका सत्कार कर ।

३ समना यक्षि— एक मनसे यज्ञ कर, उसमें मनको चंचल होने न दे ।

४ समानान् उशन्— समान विचार धारण करनेवालोंको एक स्थानपर लानेकी इच्छा कर । समानविचारवालोंकी संघटना करनेका यत्न कर ।

५ देवताता (देव-ताता)— दैवी भावोंका फैलाव करनेके लिये किया कर्म देवताके गुणोंका धारण करनेवालोंकी संघटना करना ।

६ यक्षि— यज्ञ कर, यज्ञ=विबुधपूजा विबुध संगठन दीनोंके उद्धारके लिये दान ये त्रिविध कर्म । (यज्-देवपूजा-संगति-करणदानेषु)

२ स नो विभावा चक्षणिर्न वस्तोरग्निर्वन्दारु वेद्यश्चनो धात् ।
विश्वायुर्यो अमृतो मर्त्येषूषर्भुद्भूदतिथिर्जातवेदाः ॥ ३४ ॥
३ द्यावो न यस्य पनयन्त्यभ्वं भासांसि वस्ते सूर्यो न शुक्रः ।
वि य इनोत्यजरः पावकोऽश्नस्य चिच्छिश्नथत्पूर्व्याणि ॥ ३५ ॥

---

[२] (३४) (वस्तोः चक्षणिः न विभावा) दिनके प्रकाशक सूर्यके समान विशेष प्रकारसे प्रकाशनेवाला (वेद्यः अग्निः) सबके सन्मानके योग्य यह अग्नि (नः) हमारे लिये (वन्दारु चनः धात्) प्रशंसनीय अन्न देवे । (विश्वायुः अमृतः अतिथिः) सबके जीवनभूत मरणरहित अतिथिके समान पूज्य (जातवेदाः) जिससे ज्ञान प्रकाशित हुआ ऐसा (यः मर्त्येषु उषर्भुत् भूत्) यह अग्नि मनुष्योंमें उषःकालमें प्रज्वलित होता है ।

दिनके प्रकाशक सूर्यके समान प्रकाशनेवाला सत्कारके योग्य अग्नि हमें आदरके योग्य अन्न देवे । सब विश्वको आयु देनेवाला अमर और सम्मानके योग्य ज्ञानका प्रकाशक यह अग्नि सब मनुष्योंमें उषःकालमें प्रदीप्त होता है ।

मानव धर्म— सूर्यके समान तेजस्वी बन आदरणीय बन, और योग्य होकर अन्नका स्वीकार और प्रदान कर । पूर्ण आयु प्राप्त कर, अमर और पूज्य बन ज्ञानका प्रसार कर और मानवी समाजमें उषःकालमें ही जागृत होकर अपना कार्य प्रारंभ कर ।

१ वस्तोः चक्षणिः न विभावा— दिनके प्रकाशक सूर्यके समान तेजस्वी बन । वैसा शुद्ध बन ।

२ वेद्यः— जानने योग्य सत्कारके योग्य बन ।

३ वन्दारु चनः धात्— आदरणीय अन्न दे दो ।

४ विश्वायुः अमृतः अतिथिः जातवेदाः— पूर्णायु, सब अपमृत्यु आदिसे रहित अतिथिवत् पूज्य और ज्ञानका प्रचार करनेवाला हो ।

(विश्वायुः— पूर्णायु सबकी आयु बढानेवाला । जात-वेदाः— सब पदार्थोंको विद्या जाननेवाला और जिससे सब विद्याका प्रसार होता है ऐसा । विश्व (जात- वेदा सरमात्) ज्ञान प्रगट हुआ है । अतिथिः— भ्रमण करके ज्ञान प्रसार करनेवाला)

५ मर्त्येषु उषर्भुत्— मनुष्योंमें उषःकालमें जागनेवाला बन । मनुष्य उषःकालमें उठें और अपने कर्तव्य करें ।

[३] (३५) (न) अभी (द्यावः यस्य अभ्वं पन-यन्ति) स्तोता जिसके महान् कर्मकी स्तुति करते हैं । (सूर्यो न शुक्रः भासांसि वस्ते) सूर्यके समान शुभ्रवर्णवाला अग्नि अपने तेजको धारण करता है । (यः अजरः पावकः वि इनोति) जो वृद्धावस्थासे रहित और पवित्रता करता है वह और विशेष रीतिसे आक्रमण करता है और (अश्नस्य चित् पूर्व्याणि शिश्नथत्) हिंसक शत्रुके पुराने नगरोंका नाश करता है ।

स्तोता जिसका वर्णन करते हैं । यह अग्नि सूर्यके समान अपने शुभ्र तेजसे प्रकाशित होता है । वह जरारहित और पवित्र है वह अपने प्रकाशसे विश्वको प्रकाशित करता है । अपना शत्रुपर आक्रमण करता है । तथा हिंसक शत्रुके नगरोंका नाश करता है ।

मानव धर्म— वर्णनीय बन, अपना तेज फैला जरा रहित और पवित्र बन हिंसक शत्रुका पराभव कर ।

१ यस्य अभ्वं पनयन्ति— जिसका सब वर्णन करें ऐसा बन ।

२ सूर्यः न शुक्रः भासांसि वस्ते— सूर्यके समान तेजस्वी बनकर अपने तेजस्वितासे विश्वको व्याप्त कर ।

३ अजरः पावकः वि इनोति— जरा रहित तथा पवित्र बन । और अपने यशको फैलाओ । वृद्धावस्थामें तरुण जैसा रह । स्वयं पवित्र बन और पवित्रताका प्रचार कर । शत्रुपर आक्रमण कर ।

४ अश्नस्य चित् पूर्व्याणि शिश्नथत्— हिंसक दुष्ट शत्रुके सब पूर्व समयके किये दुष्ट कर्मोंका बदला लो । शत्रुका पराभव करके उसके नगरोंका नाश करो जिससे फिर वह उपद्रव न दे सके ऐसा करो ।

६ आ सूर्यो न भानुमद्भिरर्कैरग्ने ततन्थ रोदसी वि भासा ।
चित्रो नयत्परि तमांस्यक्तः शोचिषा पत्मन्नौशिजो न दीयन् ॥ ३८ ॥
७ त्वां हि मन्द्रतममर्कशोकैर्ववृमहे महि नः श्रोष्यग्ने ।
इन्द्रं न त्वा शवसा देवता वायुं पृणन्ति राधसा नृतमाः ॥ ३९ ॥
८ नू नो अग्नेऽवृकेभिः स्वस्ति वेषि रायः पथिभिः पर्ष्यंहः ।
ता सूरिभ्यो गृणते रासि सुम्नं मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ ४० ॥

---

[६] (३८) हे (अग्ने) अग्नि! (रोदसी भासा वि ततन्थ) तू द्यावापृथिवीको अपनी कान्तिसे विशेष रूपसे व्यापता है। जिस प्रकार (भानुमद्भिः अर्कैः सूर्यो न) सूर्य अपनी तेजस्वी किरणोंसे व्यापता है। (पत्मन् औशिजः न दीयन्) अपने मार्गसे जानेवाले सूर्यके समान अपने मार्गसे जानेवाला (शोचिषा अक्तः) और तेजसे संयुक्त होनेके कारण (चित्रः तमांसि परिनयत्) यह आश्चर्यकारक अग्नि अन्धकारोंको दूर करता है।

मानव धर्म- जैसा सूर्य अपने किरणोंसे विश्वको व्यापता है उस तरह अग्नि भी व्यापता है। वैसा मनुष्य अपने ज्ञान तेजसे जगत्को व्यापनेका यत्न करे। सूर्य अपने मार्गसे जाता है वैसा अग्नि अपने मार्गसे जाता है और अपने प्रकाशसे अन्धकारको दूर करता है वैसा मनुष्य अपने ज्ञानसे दूसरोंके अज्ञान दूर करे।

१ रोदसी भासा वि आततन्थ— अग्नि आकाश और भूमिको अपने प्रकाशसे भर देता है वैसा मनुष्य अपने ज्ञानको फैलावे।

२ भानुमद्भिः अर्कैः सूर्यः न- तेजस्वी किरणोंसे सूर्य जैसा प्रकाश फैलाता है। उस प्रकार मनुष्य ज्ञान फैलावे।

३ औशिजः पत्मन् दीयन्— सूर्य अपने मार्गसे जाता है वैसा मनुष्य अपने धर्म मार्गसे चले।

४ शोचिषा अक्तः चित्रः तमांसि परिनयत्- तेजस्वी आश्चर्यकारक अग्नि अन्धकारको दूर करता है वैसा मनुष्य ज्ञान प्रचारसे अज्ञानको दूर करो।

[७] (३९) हे (अग्ने) अग्नि! (मन्द्रतमं त्वां अर्कशोकैः हि ववृमहे) अत्यन्त आनन्ददायक ऐसे तेरी पूजनीय और तेजस्वी स्तोत्रोंसे हम स्तुति करते हैं। (नः महि श्रोषि) हमारा महान् पूजन स्तोत्र श्रवण कर। हे अग्नि! (नृतमाः शवसा वायुं) सब श्रेष्ठ नेता श्रेष्ठ मनुष्य बलसे वायुके समान और (इन्द्रं न) इन्द्रके समान (देवता राधसा पृणन्ति) देवता स्वरूप तुझे हवि समर्पण करके प्रसन्न करते हैं।

हे अग्ने! तू अत्यन्त आनन्ददायक है इसलिये तेजस्वी स्तोत्रोंसे तेरी महिमा हम वर्णन करते हैं। यह हमारा स्तोत्र तू श्रवण कर। हम सब श्रेष्ठ नेता बलसे युक्त वायु और इन्द्रके समान तुझ देवताको सब सामग्री समर्पण द्वारा सन्तुष्ट करते हैं।

मानव धर्म- जो आनन्द देता है उसकी महिमाका वर्णन कर। बलवान वायु और इन्द्रके समान अग्नि भी बलवान् है। इसलिये जो बलवान् है उसको अन्नादिके समर्पणसे सन्तुष्ट करो।

१ मन्द्रतमं अर्कशोकैः ववृमहे— आनन्द देनेवाले प्रभुकी स्तोत्रोंसे हम महिमा गाते हैं। (अर्क- पूज्य। शोक- प्रकाश तेजस्विता)

२ नः महि श्रोषि— हमारे बडे स्तोत्रका श्रवण कर।

३ नृतमाः शवसा वायुं इन्द्रं न देवता राधसा पृणन्ति— श्रेष्ठ नेता लोग बलवान् वायु तथा इन्द्र देवताको सब साधनोंसे सन्तुष्ट करते हैं।

४ नः महि श्रोषि— हमारा स्तोत्र श्रवणकर

[८] (४०) हे (अग्ने) अग्नि! (नः अवृकेभिः पथिभिः रायः नु स्वस्ति) हमें हिंसकोंका उपद्रव जहां नहीं है ऐसे उत्तम मार्गोंसे धन और सुख प्राप्त हो। हमें (अंहः पर्षि) पापसे पार करो। (सूरिभ्यः ता सुम्नं गृणते रासि) विद्वानोंको मिलने योग्य वह धन हम स्तोताओंको दे दो। (शतहिमाः सुवीराः मदेम) सौ वर्षतक वीर पुत्रादिसे युक्त होकर हम आनंदका भोग करें।

मानव धर्म- हिंसा कुटिलता रहित मार्गोंसे धन और कल्याणको प्राप्त करो। पापसे बचाओ। ज्ञानियोंको मिलने योग्य धन भक्तोंको दे दो। सौ वर्षतक वीर पुत्रपौत्रोंसे युक्त होकर आनन्दसे रहो।

(मं० ६ सू० ५)

१ हुवे वः सूनुं सहसो युवानमद्रोघवाचं मतिभिर्यविष्ठम् ।
य इन्वति द्रविणानि प्रचेता विश्ववाराणि पुरुवारो अध्रुक् ॥ ४१ ॥
२ त्वे वसूनि पुर्वणीक होतर्दोषा वस्तोरेरिरे यज्ञियासः ।
क्षामेव विश्वा भुवनानि यस्मिन्त्सं सौभगानि दधिरे पावके ॥ ४२ ॥

---

१ अवृकेभिः पथिभिः रायः स्वस्ति मा— कपटरहित मार्गोंसे धन और कल्याण हमें प्राप्त हो। वृक-भिः हिंसक प्राणी। वे जिस मार्गपर नहीं हैं ऐसे मार्गसे धन प्राप्त कर। जहां हिंसा और कुटिलता करनी नहीं पडती उस रीतिसे धन और सुख प्राप्त कर।

२ अंहः पर्षि— पापसे पार हो पापसे दूर रहो।

३ सूरिभ्यः ता सुम्नं रास्व— ज्ञानी लोगोंको योग्य धन दे दो। सुम्नं —उत्तम जीवन।

४ सुवीराः शतहिमाः मदेम— उत्तम पुत्रपौत्रोंसे युक्त होकर हम सौ वर्षकी पूर्ण आयु तक आनन्दसे रहें। यहां सौ वर्ष पर्यंत पुत्रपौत्रोंमें रहें ऐसा कहा है। इससे संन्यास आश्रम यति आदि होता उसके लिये नहीं है यह सिद्ध होता है। सुवीराः— उत्तम वीर सन्तानोंमें हम पूर्ण आयुतक रहें।

शत-हिमाः —सौ हिम तक रहें। यहांका हिम पद वर्षोंका वाचक है।

[१] (४१) हे (अग्ने) अग्नि! (सहसः सूनुं युवानं यविष्ठं अद्रोघवाचं) बलके पुत्र तरुण तेजस्वी और द्रोह न करनेवाला भाषण करनेवाले तुझ अग्निको (वः मतिभिः हुवे) हम मननपूर्वक वर्णन करते हैं। (यः प्रचेताः पुरुवारः) जो विशेष ज्ञानवान् और बहुत प्रशंसनीय (अध्रुक्) द्रोह न करनेवाला अग्नि (विश्ववाराणि द्रविणानि इन्वति) सबके द्वारा प्रशंसनीय धनोंको देता है।

हे अग्ने! बलके प्रेरक,' तरुण द्रोहरहित भाषण करनेवाले युवकके समान उत्साही अग्निका हम स्तोत्रोंसे शुभ वर्णन करते हैं। यह अग्नि ज्ञानी अनेकों द्वारा प्रशंसनीय द्रोह न करनेवाला स्वीकार करने योग्य धनोंको देनेवाला है।

मानव धर्म— बलको बढानेवाले द्रोह रहित भाषण करो सदा तरुण जैसा उत्साह धारण करो। ज्ञानी बनो अनेकोंद्वारा वन्दनीय बनो किसीका द्रोह न करो और प्रशंसनीय धनोंको देते रहो।

१ सहसः सूनुं युवानं यविष्ठं, अद्रोघवाचं मतिभिः हुवे— बलके प्रेरक युवकोंमें युवा जैसे उत्साही द्रोहरहित भाषण करनेवालेकी मैं प्रशंसा करता हूं। 'सहसः सूनुं' — बलके पुत्र बलके प्रेरक, बल बढानेकी प्रेरणा करनेवाला। अ-द्रोघ-वाच् — द्रोह रहित भाषण करनेवाला। भाषणमें किसीका द्रोह न कर। मतिभिः हुवे — अपनी बुद्धियोंसे वर्णन करता हूं। बुद्धिपूर्वक वर्णन करता हूं। गुणीका गुण वर्णन बुद्धिपूर्वक करना योग्य है।

२ प्रचेताः पुरुवारः अध्रुक्— ज्ञानी विज्ञानी, अनेकों द्वारा प्रशंसनीय तथा द्रोह न करनेवाला हो।

३ विश्ववाराणि द्रविणानि इन्वति—सबको स्वीकारने योग्य धनोंको देता है। धन ऐसे प्राप्त करने चाहिए कि जो स्वीकारने योग्य हों। विश्ववारं— सबके द्वारा स्वीकार करने योग्य। धन ऐसे भी होते हैं जो स्वीकार करने योग्य नहीं होते। जैसे डाके डालकर धन प्राप्त होते हैं वे स्वीकार करने योग्य नहीं है।

[२] (४२) हे (पुर्वणीक-पुरु-अनीक) बहुत ज्वालावाले! (होतः) देवोंको बुलानेवाले अग्नि! (त्वे दोषा वस्तोः) तेरेमें रात और दिन (यज्ञियासः वसूनि एरिरे) यज्ञ करनेवाले मनुष्य अवश्य धन समर्पित करते हैं। (विश्वा भुवनानि क्षाम इव) सब प्राणी पृथिवीमें रहनेके समान (यस्मिन् पावके सौभगानि) जिस पवित्र अग्निमें सब सौभाग्य (सं दधिरे) उत्तम रीतिसे रहते हैं।

हे तेजस्वी अग्नि! तेरे अन्दर रातदिन यज्ञ करनेवाले धनों-को अर्पण करते हैं। सब पदार्थ भूमीमें रहते हैं, वैसे सब सौभाग्य पवित्र अग्निमें रहते हैं।

मानव धर्म— वीर अपने साथ बडी सेना रखे। यज्ञमें अपने पासके धनोंको अर्पण करे। जैसे सब प्राणी भूमीपर रहते हैं, उस तरह सब ऐश्वर्य जो पवित्र रहता है उसके पास रहते हैं।

३ त्वं विक्षु प्रदिवः सीद आसु क्रत्वा रथीरभवो वार्याणाम् ।
अत इनोषि विधते चिकित्वो व्यानुषग्जातवेदो वसूनि ॥ ४३ ॥
४ यो नः सनुत्यो अभिदासदग्ने यो अन्तरो मित्रमहो वनुष्यात् ।
तमजरेभिर्वृषभिस्तव स्वैस्तपा तपिष्ठ तपसा तपस्वान् ॥ ४४ ॥

---

१ पुरणीक (पुरु-अनीक) बड़ी सेना जिसके पास रहती ऐसा वीर । बहुत ज्वालाओंसे युक्त अग्नि । ज्वाला अग्निकी ा है ।

२ पविृयासः वसूनि दोषा वस्तोः परीरे— पवित्र ग अपने अन्नों और धनोंको दिन रात यज्ञके लिये प्रेरित करते एक स्थान पर संग्रहित करके नहीं रखते । समाजमें धनका रिभ्रमण करते रहते हैं । धनका संग्रह दोष उत्पन्न करता है नका समाजमें परिभ्रमण हितकारी है ।

३ विश्वा भुवनानि क्षाम इव— सब पदार्थ पृथ्वी र रहते हैं । सब प्राणी पृथ्वीपर रहते हैं । सब पदार्थोंको थ्वीका आश्रय है । किसी एकको है और दूसरोंको नहीं ऐसा हीं है । अविशेष रूपसे पृथिवीका जैसा सबको समान आधार सा नेताका वीरका सबको आश्रय मिलना योग्य है ।

४ पावके सौभगानि— पवित्रके पास सब धन रहते हैं । वयं पवित्र और दूसरोंको पवित्र बनानेवालेके पास सब भाग्य रहते हैं । जो अपवित्र है उसके पास चिरस्थायी धन नहीं रहेगा ।

[३] (४३) हे अग्नि ! (त्वं प्रदिवः) तू विशेष तेजस्वी (आसु विक्षु सीद) इन प्रजाओंमें रहता है और तू ही (क्रत्वा वार्याणां रथीः अभवः) पुरुषार्थसे प्रशंसनीय धनोंको रथमें रखकर बांटता है । (अतः) इस कारण (चिकित्वः जातवेदः) हे ज्ञानी और ज्ञानको प्रकट करनेवाले ! (विधते) सेवा करनेवाले मनुष्यका तू (वसूनि आनुषक् वि इनोषि) धन निरन्तर देता है ।

हे अग्नि ! तू विशेष तेजस्वी होकर इन प्रजाजनोंमें रहता और अपने पुरुषार्थ प्रयत्नसे अनेक प्रकारके योग्य धनोंको रथमें रखकर बांट देता है । इस कारण हे ज्ञानी और ज्ञान प्रकाशक देव ! कर्म करनेमें प्रवीण मनुष्यको तू अनेक प्रकारके धन बारंबार देता रह ।

१ त्वं प्रदिवः आसु विक्षु सीद— तू प्रदीप्त होकर प्रजाजनोंमें रह । (प्र दिवः — विशेष प्रकाशमान प्रदीप्त प्राचीन समयसे ।)

२ क्रत्वा वार्याणां रथीः अभवः— प्रयत्न पूर्वक स्वीकरणीय धनोंका रथी हो अर्थात् धनोंको रथमें रखकर ले जानेवाला हो । इतने धन प्राप्त कर कि जो रथसे ले जाने पड़ें । रथमें अपने पासके धन रख और उनको अपने अनुयायियोंमें बांटनेके लिये रथसे ही ले जा ।

३ चिकित्वः जातवेदः— ज्ञानी और वेद प्रकाशक । [(जातं वेत्ति) जो बने हुए पदार्थ इस सृष्टिमें हैं उनका ज्ञान जिसको है ऐसा विज्ञानी । वेद जिससे प्रकट हुए । (जाते जाते विद्यते) पदार्थ मात्रमें रहनेवाला ।]

४ विधते वसूनि आनुषक् वि इनोषि— विशेष कर्म करनेवालेके लिये तू बारंबार धन देता है । (विधते—विशेष धारक शक्तिसे युक्त । विशेष कर्म करनेवाला । विशेष प्रवीण)

[४] (४४) हे (मित्रमहः तपिष्ठ अग्ने) मित्रका महत्त्व बढानेवाले तपानेवाले अग्नि ! (यः सनुत्यः नः अभिदासत्) जो शत्रु गुप्त स्थानमें रहकर हमको बाधा देता है । और (यः अन्तरः) जो हमारे ही बीचमें रहकर हमारा (वनुष्यात्) नाश करता है, (तं) उस शत्रुको (तपसा तपस्वान्) अपने तेजसे तेजस्वी हुआ तू (तव स्वैः अजरेभिः वृषभिः तप) अपने निज जरारहित बलयुक्त तेजोंसे जला डालो ।

हे मित्रोंका महत्त्व बढानेवाले तपानेवाले अग्ने ! जो शत्रु गुप्त स्थानमें रहकर हमें कष्ट पहुंचाता है और जो हमारे अन्दर रह कर हमारा नाश करता है उसको अपने निज तेजसे तेजस्वी बना हुआ तू अपने ही बढनेवाले सामर्थ्यशाली ज्वालाओंसे जला दे ।

मानव धर्म— मित्रोंका महत्त्व बढाओ । अपना तेज बढाओ । जो शत्रु गुप्तरीतिसे अथवा अप्रकट स्थानमें रहता है अथवा जो अपने ही अन्दर रहकर हमारा नाश करना चाहता है उसको तू अपने निज तेजसे अपने सामर्थ्यसे नष्ट कर ।

२ मित्रमहः तपिष्ठः अग्निः— मित्रका महत्त्व बढाने वाला शत्रुको तपानेवाला तेजस्वी अग्नी है ।

५ यस्ते यज्ञेन समिधा य उक्थैरर्केभिः सूनो सहसो ददाशत् ।
स मर्त्येष्वमृत प्रचेता राया द्युम्नेन श्रवसा वि भाति ॥ ४५ ॥

६ स तत्कृधीषितस्तूयमग्ने स्पृधो बाधस्व सहसा सहस्वान् ।
यच्छस्यसे द्युभिरक्तो वचोभिस्तज्जुषस्व जरितुर्घोषि मन्म ॥ ४६ ॥

---

२ यः सत्रुत्य भः अभिदासत्- जो सर्व गुप्त स्थानमें सुरक्षित रहता है और हमें कष्ट देता है, हमें दास बनानेकी इच्छा करता है। हमारा नाश करता है। (सत्रु-त्यः सत्रुत्य- गुप्त स्थानमें रहनेवाला)

३ यः अन्तरः मनुष्यात्— जो हमारे अन्दर रहकर हमारा नाश करता है।

४ तपसा तपस्वान्— अपने तेजसे तपस्वी बन। दूसरोंकी सहायतासे नहीं परन्तु अपने बलसे बलिष्ठ हो जा।

५ तव स्वैः अजरेभिः शुष्मैः तप— अपने निज अमर बलवान् सामर्थ्योंसे शत्रुको तपाओ, कष्ट दो। (अजरः जरा रहित, क्षीण न होनेवाला जो निर्बल नहीं होता। शुष्म- बलवान् वीर्यवान्।)

[५] (४५) हे (सहस सूनो) बलके प्रेरक ! (यः यज्ञेन ते ददाशत्) जो मनुष्य यज्ञ द्वारा तेरी सेवा करता है। (यः समिधा उक्थैः) जो समिधासे स्तोत्रसे (अर्केभिः) सामगानसे तेरी सेवा करता है। हे (अमृत) मृत्युरहित ! (सः मर्त्येषु प्रचेताः) वह मनुष्योंमें विशेष ज्ञानवान् होकर (राया द्युम्नेन श्रवसा विभाति) धनसे तथा तेजस्वी कीर्तिसे प्रकाशित होता है।

मानव धर्म- बल बढानेकी प्रेरणा कर। अमृतत्व प्राप्त कर। जो यज्ञ समिधा स्तोत्र और सामगानसे ईश्वरकी सेवा करता है, वह मानवोंमें विशेष ज्ञानवान् होता है और धन तथा उत्तम यशसे प्रकाशता है। वैसा तू बन।

१ सहसः सूनु— (सहः प्रेरक सू-प्रेरणे) बल बढानेकी प्रेरणा देनेवाला बल बढानेका उत्साह बढानेवाला।

२ अमृत (अ-मृत)— अपमृत्युसे रहित अपमृत्युको दूर करनेवाला।

३ यः उक्थैः अर्कैः यज्ञेन ददाशत्- जो स्तोत्रों सामगानों और यज्ञसे यजन करता है (सः मर्त्येषु प्रचेताः) वह मानवोंमें विशेष ज्ञानी होता है। मन्त्रपाठसे ज्ञान बढता है। मंत्रोंके पद ज्ञान देते हैं अतः उनके पाठसे मनुष्यका ज्ञान बढता है। जैसा सहसः सूनुः बल बढानेकी प्रेरणा करनेवाला यह पद बल बढानेका उत्साह बढाता है। इसी तरह मन्त्रके पद ज्ञान बढाते हैं। इसलिये मंत्र पाठ करके उनका उपदेश अपने अन्दर ढालनेवाला ज्ञानी हो जाता है।

४ सः राया द्युम्नेन श्रवसा विभाति— वह धन और तेजस्वी यशसे प्रकाशता है। वेदके मंत्रोंका पाठ करनेसे धन प्राप्तिके मर्म और यशस्वी होनेके उपाय ध्यानमें आते हैं और उनसे वह धनवान् और यशस्वी होता है।

जो (प्रचेताः) ज्ञानी होगा और जो (सहसः सूनुः) बल भी बढायेगा वह धन और यश प्राप्त करेगा इसमें क्या संदेह है।

[६] (४६) हे (अग्ने) अग्नि ! (सः इषितः तूयं तत् कृधि) वह तू प्रेरित होनेपर उस कर्मको शीघ्र कर (सहस्वान् सहसा स्पृधः बाधस्व) बलवान् होकर तू स्पर्धा करनेवाले शत्रुओंका अपने बलसे नाश कर। (द्युभिः अक्तः वचोभिः यत् शस्यसे) तू अपने तेजोंसे युक्त हमारे वचनोंसे प्रशंसित हो रहा है। (तत् मन्म घोषि जरितुः जुषस्व) उस मननीय घोषित किये स्तोत्रका तू स्वीकार कर।

मानव धर्म— जिस कर्मके लिये तू नियुक्त हुआ है वह कर्म तू शीघ्रतासे संपन्न कर। अपना बल बढाकर अपने बलसे स्पर्धा करनेवाले शत्रुओंका नाश कर। तू अपने तेजोंको बढाकर प्रकाशित हो।

१ इषितः सः तूयं तत् कृधि— किसी कार्यके लिये प्रेरित होनेपर उस कर्मको अतिशीघ्र संपन्न कर।

२ सहस्वान् सहसा स्पृधः बाधस्व- बलवान होकर अपने बलसे स्पर्धा करनेवाले शत्रुओंका नाश कर।

३ द्युभिः अक्तः वचोभिः शस्यसे- तेजोंसे युक्त होनेके कारण हमारे भाषणोंसे तुम्हारी प्रशंसा होती है। तुम तेजोंको बढाओ जिससे तुम्हारी सर्वत्र प्रशंसा होती रहेगी।

४ तत् घोषि जरितुः मन्म जुषस्व— वह घोषित किया प्रशंसाका स्तोत्र स्वीकार कर। चारों ओरसे तुम्हारे शुभ

७ अश्याम तं काममग्ने तवोती अश्याम रयिं रयिवः सुवीरम् ।
अश्याम वाजमभि वाजयन्तोऽश्याम द्युम्नमजराजरं ते ॥ ४७ ॥

(मं० ६ सू० ६)

१ प्र नव्यसा सहसः सूनुमच्छा यज्ञेन गातुमव इच्छमानः ।
वृश्चद्वनं कृष्णयामं रुशन्तं वीती होतारं दिव्यं जिगाति ॥ ४८ ॥

२ स श्वितानस्तन्यतू रोचनस्था अजरेभिर्नानदद्भिर्यविष्ठः ।
यः पावकः पुरुतमः पुरूणि पृथून्यग्निरनुयाति भर्वन् ॥ ४९ ॥

कर्मोंकी प्रशंसा होती रहे और वह तुम्हारे पास जाती रहे ऐसा कर । ऐसी तुम्हारी प्रशंसा होती रहे ।

[७] (४७) हे (अग्ने) अग्नि ! (तव ऊती) तेरी रक्षासे (तं कामं) उस कामको (अश्याम) हम प्राप्त करें । हे (रयिवः) धनवान् अग्नि ! (सुवीरं रयिं अश्याम) उत्तम वीर पुत्रादि युक्त धन हमें प्राप्त हो । तथा (वाजयन्तः वाजं अभि अश्याम) बलकी इच्छा करनेवाले हम बलको प्राप्त करें । हे (अजर) जरारहित अग्नि ! (ते अजरं द्युम्नं अश्याम) तेरे जरारहित कान्तिमान यशको प्राप्त करें ।

मानव धर्म— प्रभुके संरक्षणसे सुरक्षित होकर मनुष्य अपनी कामना पूर्ण करे । वीर पुत्रोंसे युक्त धन प्राप्त करे । बलकी इच्छा करनेवाले बल प्राप्त करें । क्षीण न होनेवाला यश प्राप्त करें ।

१ तव ऊती कामं अश्याम— तुम्हारे संरक्षणसे सुरक्षित होकर अपनी कामनाओंको हम पूर्ण करें ।

२ सुवीरं रयिं अश्याम— उत्तम वीर पुत्रोंसे युक्त होकर हम धनको प्राप्त करें । वीरोंके साथ रहनेवाला धन हमें प्राप्त हो ।

३ वाजयन्तः वाजं अभि अश्याम— बलकी इच्छा करनेवाले हम बल प्राप्त करें । वाजः— बल, अन्न बल-धन अन्न सामर्थ्य ।

४ अजरं द्युम्नं अश्याम— क्षीण न होनेवाला तेज धन या यश हमें प्राप्त हो । द्युम्नं (द्यु-मन)-तेजस्वी मन जिससे होता है (वह तेज धन यश मनसामर्थ्य)

५ रयिवः अजर अग्ने— धनवान्, जरारहित अग्नि । अपनी शुभ इच्छाओंकी पूर्णता हो तथा हमें धन बल तेजस्वी यश प्राप्त हो ।

[१] (४८) (अवः इच्छमानः) सुरक्षाकी इच्छा करनेवाला (नव्यसा यज्ञेन) नवीन यज्ञके साथ (गातुं सहसः सूनुं) स्तुत्य और बलके प्रेरक (वृश्चद्वनं कृष्णयामं) वनको दग्ध करनेवाले कृष्ण मार्गवाले (रुशन्तं वीती दिव्यं होतारं) तेजस्वी कान्तिमान् दिव्य होता अग्निके पास (जिगाति) जाता है ।

जो अपनी सुरक्षा चाहता है वह नवीन यज्ञके साधन लेकर प्रशंसनीय बलके प्रेरक वनको जलानेवाले काले रंगके मार्गसे जानेवाले तेजस्वी प्रिय दिव्य यज्ञके संपादन करनेवाले अग्निके पास जाता है ।

मानव धर्म— अपनी सुरक्षा चाहनेवाला प्रशंसनीय बलके प्रेरक शत्रुदाहक, मार्ग बनानेवाले तेजस्वी प्रिय दिव्य दाता अग्नीको प्राप्त करे ।

१ अवः इच्छमानः— अपनी सुरक्षाकी इच्छा करो ।

२ नव्यसा यज्ञेन रुशन्तं जिगाति— नवीन यज्ञ करनेकी इच्छासे प्रकाशित अग्निके पास आता है और उसमें हवन करता है, यज्ञ करता है । और उससे संरक्षण प्राप्त करता है । यज्ञसे संरक्षण होता है । श्रेष्ठोंका आदर, सब जनताका संगठन, संगतिकरण और निर्बलोंकी सहायता यज्ञमें होती है । इस कारण यज्ञसे संरक्षण होता है ।

अग्नि (वृश्चद्-वनं) वनों और वृक्षोंको जलाता है (कृष्णयाम) काले वर्णके मार्गसे जाता है अथवा जाता हुआ काला मार्ग करता हुआ जाता है । जहांसे जलाता हुआ अग्नि जाता है वह मार्ग अग्निदाहसे काला बनता है । अग्नि यज्ञ करके जनताका संरक्षण और संगठन करता है और शत्रुओंको जलाकर भस्म कर देता है ।

[२] (४९) (सः श्वितानः) वह अग्नि चमकता (तन्यतुः रोचनस्थाः) फैलनेवाला प्रकाशमें रहनेवाला । (अजरेभिः नानदद्भिः यविष्ठः) जरारहित, शब्द करनेवाले किरणोंसे युक्त अत्यन्त युवा बना (यः पावकः) जो पावक

६ आ भानुना पार्थिवानि ज्रयांसि महस्तोदस्य धृषता ततन्थ।
स बाधस्वाप भया सहोभिः स्पृधो वनुष्यन्वनुषो नि जूर्व ॥ ५३ ॥

७ स चित्र चित्रं चितयन्तमस्मे चित्रक्षत्र चित्रतमं वयोधाम्।
चन्द्रं रयिं पुरुवीर बृहन्तं चन्द्र चन्द्राभिर्गृणते युवस्व ॥ ५४ ॥

(म० ६ सू० ७)

१ मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम्।
कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥ ५५ ॥

शूरस्य प्रसितिः— शूरवीरका पाश कठिन होता है। वैसा वीर (भीम तुविग्रः) भयंकर और रोकनेके लिये अशक्य हो। (प्रसितिः- बन्धन पाश डोरी रस्सी)

यहाँ अग्नि तथा इन्द्रके वर्णनसे शूरवीरका वर्णन है यह वीरोंको देखने योग्य है। राष्ट्ररक्षक वीर ऐसे भयंकर हों।

[६] (५३) हे अग्नि! (भानुना पार्थिवानि ज्रयांसि) प्रकाशसे पृथ्वीपरके गमन योग्य स्थानोंको (महः तोदस्य धृषता आततन्थ) अपने महान प्रेरक किरणोंसे भर देता है। (सः भया अप बाधस्व) वह तू सब भयके कारणोंको दूर कर। और (सहोभिः स्पृधः वनुष्यन्) अपने बलोंसे स्पर्धा करनेवाले शत्रुओंका नाश कर।

हे अग्नि! तू अपने प्रकाशसे भूमिके सब स्थानोंको प्रकाशित कर और अपने प्रेरक किरणोंसे उन स्थानोंको भर दे। भयके स्थानोंको दूर कर। और स्पर्धा करनेवाले शत्रुओंको अपने सामर्थ्योंसे नष्ट कर।

मानव धर्म-- सर्वत्र (ज्ञानका) प्रकाश फैलाओ। भय उत्पन्न करनेवाले शत्रु अन्धेरेमें जहां रहते होंगे वहां तुम्हारा प्रकाश पहुंचाओ। और उन सब स्थानोंको निर्भय करो। तथा स्पर्धा करनेवालोंको अपने सामर्थ्योंसे दूर हटा दो।

१ भानुना पार्थिवानि ज्रयांसि महः तोदस्य धृषता आततन्थ— अपने प्रकाशसे भूमिपरके सब स्थान प्रकाशित कर और अपने प्रेरक प्रकाशको यहां सर्वत्र फैलाओ। (तोद प्रेरक)— प्रकाश होनेसे मनुष्य शुभ कर्ममें प्रवृत्त होता है यह प्रकाशकी (तोदः) प्रेरकता है। और यही प्रकाश शत्रुओंका (तुद्) धर्षण करता है। प्रकाश होनेपर चोर रहते नहीं यह प्रकाशका धर्षणपन है।

२ भया अप बाधस्व- भय स्थानोंको हटा दो। प्रकाश होनेसे भयके स्थान भय न दे सकते। इसलिये प्रकाश भयको दूर करनेवाला है।

३ सहोभिः स्पृधः वनुष्यन्— अपने बलोंसे शत्रुओंका नाश कर। अपना बल बढ गया तो शत्रु स्वयं दूर होते हैं।

[७] (५४) हे (चित्र) आश्चर्यकारक (चित्रक्षत्र) आश्चर्यकारक बलवाले (चन्द्र) आनन्ददायक अग्नि! (सः चन्द्राभिः गृणते अस्मै) वह तू आनन्ददायक स्तोत्रोंसे स्तुति करनेवाले इस भक्तको (चित्रं चितयन्तं चित्रतमं) विलक्षण अद्भुत ज्ञान देनेवाला अत्यन्त आश्चर्यकारक (वयोधां चन्द्रं पुरुवीरं बृहन्तं रयिं) आयु बढानेवाला आश्चर्यकारक बहुत पुत्रपौत्रपरिवारोंसे युक्त महान् धन दे दो।

मानव धर्म— आनन्ददायक स्तोत्रोंसे साधक प्रभुकी स्तुति करे। इस स्तुति करनेवालेको अद्भुत ज्ञान बढानेवाला आश्चर्यकारक आयुको बढानेवाला और पुत्रपौत्रोंसे युक्त विशाल धन प्रभु देता है। (मनुष्य ऐसा धन प्राप्त करे।)

१ चित्र चित्रक्षत्र चन्द्र- विलक्षण क्षात्र तेज आनन्द देनेवाला होता है।

२ स चन्द्राभिः गृणते अस्मै रयिं— वह ईश्वर आनन्द वर्धक स्तोत्रोंसे स्तुति करनेवाले इस सबको धन देवे।

३ चित्रं चितयन्तं चित्रतमं वयोधां, चन्द्रं पुरुवीरं बृहन्तं रयिं- विलक्षण ज्ञानविज्ञान बढानेवाला, आश्चर्यकारक आयु बढानेवाला अन्न देनेवाला आनन्द देनेवाला बहुपुत्रपौत्रोंसे युक्त विशाल धन हमें चाहिये। (वयो-धा- आयुका धारण करानेवाला अन्न देनेवाला बल बढानेवाला धन हो।) इससे विरुद्ध अगम दुर्गुणोंवाला धन न हो। अर्थात् आयु घटानेवाला सन्तान नष्ट करनेवाला सन्तान उत्पन्न न करनेवाला ज्ञान न बढानेवाला ऐसा दुःखदायी धन न हो।

[१] (५५) (दिवः मूर्धानं) द्युलोकके शिरस्थानमें रहनेवाला और (पृथिव्याः अरतिं) भूमिके ऊपर जानेवाले (वैश्वानरं) सब मनुष्योंका नेता (ऋते) और सत्यके प्रचारके

६ वैश्वानरस्य विमितानि चक्षसा सानूनि दिवो अमृतस्य केतुना ।
तस्येदु विश्वा भुवनाधि मूर्धनि वया इव रुरुहुः सप्त विस्रुहः ॥ ६० ॥

७ वि यो रजांस्यमिमीत सुक्रतुर्वैश्वानरो वि दिवो रोचना कविः ।
परि यो विश्वा भुवनानि पप्रथेऽदब्धो गोपा अमृतस्य रक्षिता ॥ ६१ ॥

(मं० ६ सू० ८)

१ पृक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू सहः प्र नु वोचं विदथा जातवेदसः ।
वैश्वानराय मतिर्नव्यसी शुचिः सोम इव पवते चारुरग्नये ॥ ६२ ॥

---

[६] (६०) (अमृतस्य केतुना) अमृतकी पताका रूप (वैश्वानरस्य चक्षसा) सब लोगोंके हितकारी अग्निके तेजसे (दिवः सानूनि विमितानि) द्युलोकके शिखर प्रकाशित हुए। (तस्य इत् उ मूर्धनि विश्वा भुवना) उसके मूर्धा स्थानमें सब भुवन रहते हैं। तथा (वयाः इव सप्त विस्रुहः रुरुहुः) शाखाकी तरह सात फैलनेवाली सात नदियां यहींसे बहती हैं।

अमृतका रूप जैसे सब लोगोंके हितकारी अग्निके तेजसे द्युलोकतक पहुंचनेवाले सब शिखर प्रकाशित होते हैं। यहीं सब भुवन अर्थात् उत्पन्न हुए सब प्राणी रहते हैं और सात नदियाँ भी यहींसे बहती हैं।

सूर्यके प्रकाशमें (तथा अग्निके प्रकाशमें) अमृत अर्थात् जीवनशक्तिका तत्व रहता है। सूर्यका उदय होनेके समय उसके प्रकाशसे पर्वतोंके शिखर प्रकाशित होते हैं। (अग्नि प्रज्वलित होते ही उसका प्रकाश प्रथम ऊंचे स्थानोंपर पहुंचता है।) इन पर्वत शिखरोंपर सब भुवन-सब प्राणी रहते हैं और यहींसे सात नदियाँ उत्पन्न होकर बहती हैं।

सूर्यका प्रकाश हिमालयके शिखरपर प्रथम गिरता है। यहीं सब प्राणी प्रथम उत्पन्न हुए थे और नदियाँ भी यहींसे उत्पन्न हुई हैं। इसलिये यह स्थान विशेष महत्त्वका है।

१ वैश्वानरः- सब लोगोंका हित करनेवाला सबका नेता।

[७] (६१) (यः सुक्रतुः वैश्वानरः रजांसि) जो उत्तम कर्म करनेवाला संपूर्ण मनुष्योंका हित करनेवाला यह अग्नि लोकोंको (वि अमिमीत) निर्माण करता है। तथा (दिवः रोचना कविः वि) द्युलोकके देदीप्यमान नक्षत्रादिकों यह ज्ञानी ही बनाता है। (यः विश्वा भुवनानि परि पप्रथे) जिसने संपूर्ण भुवनमात्रको सर्वत्र विस्तारित किया है। (अदब्धः गोपा अमृतस्य रक्षिता) यह न दबनेवाला सबका रक्षण करनेवाला और अमृतका संरक्षक है।

उत्तम कर्मोंको करनेवाला सबका हितकारी यह (अग्नि) ईश्वर सब लोकोंको निर्माण करता है द्युलोकके ऊपरके प्रकाशमान नक्षत्रोंको भी ज्ञानी (ईश्वर) ने बनाया है। सब भुवनोंको वही विस्तृत करता है। यह न दबनेवाला संरक्षक और अमृतका रक्षक है।

१ सुक्रतुः कविः वैश्वानरः- उत्तम कर्म करनेवाला ज्ञानी सब मनुष्योंका हित करनेवाला होता है।

२ अदब्धः गोपाः अमृतस्य रक्षिता- किसी शत्रुके सामने न दबनेवाला और सबका संरक्षण करता है और अमरत्वका रक्षक भी वही है।

मानव धर्म- मनुष्य उत्तम कर्म करे, नेता बने ज्ञानी बने किसी शत्रुके सामने न दबे सबका संरक्षण करे और अमर पदार्थका संरक्षण करे।

[१] (६२) (पृक्षस्य वृष्णः अरुषस्य) सर्वव्यापी बलवान् तेजस्वी (जातवेदसः सहः विदथा) ज्ञानप्रकाशक अग्निके बलका यज्ञमें (प्र वोचं) मैं वर्णन करता हूं। (नव्यसी शुचिः चारु मतिः) नवीन निर्मल सुन्दर बुद्धिपूर्वक की हुई स्तुति (वैश्वानराय अग्नये) विश्वनेता अग्निके लिये (सोम इव पवते) सोमरसके समान फैल रही है।

यह अग्नि सर्वव्यापक, बलवान् तेजस्वी और ज्ञानप्रकाशक है। विश्वके नेता रूप इस अग्निके लिये, सोमरसके समान यह नवीन पवित्र सुंदर स्तोत्र गाया जा रहा है।

जातवेदा - (जातः वेदः यस्मात्) वेद जिससे बने ज्ञान जिससे पैदा हुआ है। (जातं वेत्ति) प्रत्येक बनी वस्तुओंको जानता है। (जाते विद्यते) प्रत्येक वस्तुमें जो है।

४ अयं होता प्रथमः पश्यतेममिदं ज्योतिरमृतं मर्त्येषु ।
अयं स जज्ञे ध्रुव आ निषत्तोऽमर्त्यस्तन्वा३ वर्धमानः ॥ ७२ ॥

५ ध्रुवं ज्योतिर्निहितं दृशये कं मनो जविष्ठं पतयत्स्वन्तः ।
विश्वे देवाः समनसः सकेता एकं क्रतुमभि वि यन्ति साधु ॥ ७३ ॥

६ वि मे कर्णा पतयतो वि चक्षुर्वीदं ज्योतिर्हृदय आहितं यत् ।
वि मे मनश्चरति दूरआधीः किं स्विद्वक्ष्यामि किमु नू मनिष्ये ॥ ७४ ॥

७ विश्वे देवा अनमस्यन्भियानास्त्वामग्ने तमसि तस्थिवांसम् ।
वैश्वानरोऽवतूतये नोऽमर्त्योऽवतूतये न: ॥ ७५ ॥

यह वैश्वानर अग्नि निःसन्देह सीधे मार्गको जानता है और यही तिरछे मार्गको भी जानता है। यही ऋतुके अनुसार करने योग्य कर्मोंमें जो करना चाहिये उसको करता है। यह अमृत का संरक्षक भूलोकमें अग्निरूपसे संचार करता है और दूर आकाशमें रहकर सूर्यरूपसे सबका निरीक्षण करता है और सबको जानता भी है।

[४] (७२) (अयं प्रथमः होता) यह अग्नि पहिला होता है। (इमं पश्यत) हे मनुष्यों ! तुम इस अग्निको देखो। (मर्त्येषु अमृतं इदं ज्योतिः) मरणशील प्राणियोंमें यही मरण रहित ज्योति है। (सः अयं ध्रुवः आ निषत्तः) वह यह अग्नि स्थिर रूपसे सर्वव्यापी (अमर्त्यः तन्वा वर्धमानः च) अमर और शरीरसे सम्पन्न होता है और बढता भी है।

यह वैश्वानर सब विश्वका संचालक अग्निरूपसे रहनेवाला परमात्मा सबका चालक है। हे मनुष्यो ! तुम इसको देखो। मर्त्य प्राणियोंमें यह अमर ज्योति है। यह सबमें शाश्वतरूपसे रहता और सबको व्यापता है। यह अमर है यह शरीरके साथ सम्बद्ध होकर बढता जाता है।

यहां अग्निरूपके वर्णनसे आत्माका वर्णन किया है। अग्नि आयुष्यका बल है और दिन रातोंके साथ इसमें गुण आ रहे हैं। पहिले मंत्रमें यह स्पष्ट किया है।

[५] (७३) (ध्रुवं मनः जविष्ठं) स्थिर होनेपर भी मनके अत्यन्त वेगवान् ज्योति (पतयत्सु अन्तः) सब जंगम प्राणियोंके अन्दर (कं दृशये) सुखसे दर्शनके लिये (निहितं) स्थापित है। (विश्वे देवाः समनसः सकेताः) सब देव समान विचार करते हुए और समान ज्ञानवाले होकर (एकं क्रतुं साधु अभि वि यन्ति) एक मुख्य कर्मके करनेवालेको सब प्रकारसे प्राप्त करते हैं।

स्थिर रहनेवाला मन भी अत्यन्त वेगवान और तेजस्वी है। यह सब जंगम प्राणियोंमें आनन्द अनुभव करनेके लिये स्थापित किया है। सब देव एक मन और एक ज्ञानके साथ रही एक मुख्य कर्मकर्ताकी सब प्रकारसे सेवा करते हैं।

एक मनकी सेवा चक्षु आदि सब इन्द्रियां करती हैं। यह मन यहां मुख्य है।

[६] (७४) (मे कर्णा वि पतयतः) उसके विषयमें सुननेकी इच्छा करनेवाले मेरे कान उधर दौडते हैं। (चक्षुः वि) मेरी आंखें उसको देखनेकी इच्छासे उधर जाती हैं। (ज्योतिः हृदये आहितं) हृदयमें रखा हुआ यह प्रकाश रूपी ज्योति है। (यत् इदं वि) जो यह बुद्धिरूप तत्त्व है यह भी उसीके पीछे जाता है। (दूरआधीः मे मनः वि चरति) दूरस्थ विषयका विचार करनेवाला मेरा मन इधर उधर फिरता रहता है। (किं स्वित् वक्ष्यामि) इससे अधिक मैं क्या कहूंगा (किमु नु मनिष्ये) और किसका अधिक विचार करूं ?

उस अमरत्वकी ज्योतिके विषयमें सुननेके लिये मेरे कान दौड रहे हैं और मेरे चक्षु भी उसीको देखना चाहते हैं। यह ज्योति हृदयमें रखी गई है। जो यहां यह बुद्धिरूप तत्त्व है वह भी उसीकी खोजमें घूम रहा है। दूरदूरके विषयोंका ध्यान करनेवाला मेरा मन तो सतत दौड रहा है। अब मैं अधिक क्या कहूं और अधिक किसका विचार करूं ? इस मन्त्रने पूर्व मन्त्रके सन्देह दूर किये हैं।

[७] (७५) हे वैश्वानर अग्नि ! (तमसि तस्थिवांसं त्वां विश्वे देवाः) अन्धकारमें रहनेवाले तुमको सब देव (अनमस्यन्) नमस्कार करते हैं। क्योंकि मनुष्य (भियानाः) भय कारणसे भयभीत हुए हैं। (अमर्त्यः वैश्वानरः) अमर मरण रहित यह वैश्वानर अग्नि (नः ऊतये अवतु) हमारी रक्षा करने वाला हो।

४ आ यः पप्रौ जायमान उर्वी दूरेदृशा भासा कृष्णाध्वा ।
अध बहु चित्तम ऊर्म्यायास्तिरः शोचिषा ददृशे पावकः ॥ ७९ ॥

५ नू नश्चित्रं पुरुवाजाभिरूती अग्ने रयिं मघवद्भ्यश्च धेहि ।
ये राधसा श्रवसा चात्यन्यान्सुवीर्येभिश्चाभि सन्ति जनान् ॥ ८० ॥

६ इमं यज्ञं चनो धा अग्न उशन्यं त आसानो जुहुते हविष्मान् ।
भरद्वाजेषु दधिषे सुवृक्तिमवीर्वाजस्य गध्यस्य सातौ ॥ ८१ ॥

साथ दान देता है उसको तेजस्वी नेता उत्तम संरक्षणोंके साथ गौओंके साथ आदि धन देता है अर्थात् दान देनेवालेको धन मिलता है।

१ सः मर्त्येषु अमृतः पावकः— वह शासक वीर मानवोंमें सबके साथ पवित्र होता है। अमर होता है।

२ विप्रः उक्थैः दाशात्— ज्ञानी उत्तम विचारोंके साथ दान देता है।

३ चित्रशोचिः चित्राभिः ऊतिभिः गोमतः व्रजस्य साता दधाति— विलक्षण तेजस्वी वीर नेता विलक्षण संरक्षणोंके साथ गौओंके बाडे उसको देता है।

(चित्रा-ऊतिः) विलक्षण श्रेष्ठ संरक्षण (व्रजः- बाड़ा गए बाड़ा।)

[४] (७९) (कृष्णाध्वा यः जायमानः) कृष्णवर्त्मा अग्नि उत्पन्न होकर (दूरेदृशा भासा उर्वी आ पप्रौ) दूरसे ही दृश्यमान ऐसी अपनी कान्तिसे विस्तीर्ण द्यावापृथिवीको भर देता है। (अध पावकः) फिर वह पवित्र अग्नि (ऊर्म्यायाः बहु चित् तमः शोचिषा तिरः ददृशे) रात्रीके असमन्त घने अन्धकारको अपने तेजसे दूर कर रहा है, ऐसा दिखाई देता है।

मानव धर्म— काले अन्धकारके मार्गसे जाकर वहां प्रकाश करनेवाला वीर अपने प्रकाशसे विस्तीर्ण क्षेत्रको भर देता है। पवित्रता करनेवाला नेता रात्रीके अन्धकारको दूर करता है, सर्वत्र प्रकाश करता है। (मनुष्य अन्धकारको दूर करनेके लिये प्रकाश उत्पन्न करे।)

कृष्ण-अध्वा— काला मार्ग जिसका है। अग्नि जलता हुआ जाता है इसलिये उसका मार्ग काला होता है।

१ दूरेदृशा भासा उर्वी आपप्रौ— दूर दीखनेवाले प्रकाशसे विस्तृत कर्मक्षेत्रको भर दो।

२ पावकः— स्वयं पवित्र बनो और पवित्रता करो।

३ ऊर्म्यायाः बहु चित्तमः शोचिषा तिरः ददृशे रात्रीके घने अन्धेरेको भी अपने प्रकाशसे दूर करो।

[५] (८०) हे (अग्ने) अग्नि! (मघवद्भ्यः च पुरुवाजाभिः ऊती) धनवान् हुए हमको बहुत रक्षणके साथ (चित्रं रयिं नु धेहि) चाहनेयोग्य धन शीघ्र देओ। (ये राधसा श्रवसा च सुवीर्येभिः) जो सिद्धिसे यश और उत्तम वीर्यसे (अन्यान् जनान् अति अभि सन्ति) अन्य मनुष्योंसे अतिशय श्रेष्ठ हैं वैसे वीर्यवान् पराक्रमी हमें बनाओ।

मानव धर्म— धनवानोंको बहुत धन मिले और बहुत संरक्षण भी प्राप्त हो। जो सिद्धि यश और पराक्रमोंसे अति श्रेष्ठ बने हैं उनसे भी श्रेष्ठ हम बनें।

१ मघवद्भ्यः पुरुवाजाभिः ऊती— धनवानोंको बहुत धन मिले और बहुत संरक्षण भी प्राप्त हो।

२ ये राधसा श्रवसा सुवीर्येभिः च अन्यान् जनान् अति अभिसन्ति— जो सिद्धि यश और पराक्रमोंसे अन्योंकी अपेक्षा अधिक हैं, वैसे हम बनें।

[६] (८१) हे (अग्ने) अग्नि! (उशन् इमं यज्ञं चनः धाः) हविष्यान्नकी इच्छावाला तू इस यज्ञसाधनभूत अन्नका स्वीकार कर। (यं आसानः हविष्मान्) जो यहाँ बैठा हुआ हविर्युक्त मनुष्य (ते जुहुते) तेरे लिये हवन करता है। (भरद्वाजेषु सुवृक्तिं दधिषे) तू भरद्वाज गोत्रके ऋषियोंकी की स्तुतिको स्वीकार कर। (गध्यस्य वाजस्य सातौ अवीः) अन्नधनकी प्राप्तिके समयमें उन ऋषियोंकी रक्षा कर।

मानव धर्म— यज्ञ करनेकी इच्छा कर अन्नका धारण कर, यज्ञस्थानमें बैठकर हवन कर, अन्नधनकी प्राप्ति करनेका यत्न जो करते हैं उनका संरक्षण हो। जो अन्नका दान करते हैं उनकी प्रशंसा हो।

(मं० ६, सू० ११)

१ मध्ये होता दुरोणे बर्हिषो राळग्निस्तोदस्य रोदसी यजध्यै ।
अयं स सूनुः सहस ऋतावा दूरात्सूर्यो न शोचिषा ततान ॥ ८९ ॥
२ आ यस्मिन्त्वे स्वपाके यजत्र यक्षद्राजन्त्सर्वतातेव नु द्यौः ।
त्रिषधस्थस्ततरुषो न जंहो हव्या मघानि मानुषा यजध्यै ॥ ९० ॥
३ तेजिष्ठा यस्यारतिर्वनेराट् तोदो अध्वन्न वृधसानो अद्यौत् ।
अद्रोघो न द्रविता चेतति त्मन्नमर्त्योऽवर्त्र ओषधीषु ॥ ९१ ॥

---

[१] (८९) (होता बर्हिषः राट् अग्निः) देवोंको बुलाने वाला यज्ञका राजा अग्नि (तोदस्य दुरोणे मध्ये) यज्ञकर्ताके घरके बीचमें (रोदसी यजध्यै सः अयं) द्यावापृथिवीका यजन करनेके लिये बैठा है। वह यह (सहस सूनुः) बलका प्रेरक (ऋतावा सूर्यो न दूरात्) यज्ञ करनेवाला अग्नि सूर्यकी तरह दूरसे ही (शोचिषा ततान) अपने तेजसे जगत्को प्रकाशित करता है।

यजमानके यज्ञगृहमें यज्ञ करनेके लिये अग्नि प्रदीप्त हुआ है। सूर्य जैसा विश्वको प्रकाशित करता है वैसा यह अग्नि भी जगत्को प्रकाशित करता है।

१ बर्हिषः राट्- यज्ञका राजा बनो।

१ दुरोणे मध्ये यजध्यै- घरके बीचमें यज्ञके लिये निवास कर।

१ सहसः सूनुः ऋतावा सूर्यो न दूरात् शोचिषा ततान बलके कर्म करनेके लिये जन्मा सत्यवान् और सूर्यके समान दूरसे ही चमकता है।

ऋतावा सत्यवान्। दुरोण- घर।

[२] (९०) हे (यजत्र राजन्) पूज्य और प्रकाशमान अग्ने! तेजस्वी देव! (द्यौः सर्वताता इव) प्रकाशमान द्योता यज्ञमें (स्वपाके त्वे यस्मिन्) बुद्धिमान् ऐसे तुझमें (नु यक्षत् आ) उत्तम रीतिसे हवन करता है। (त्रिषधस्थ ततरुषः न) तीनों लोकोंमें तारक सूर्यकी तरह (मानुषा मघानि हव्या यजध्यै) मनुष्योंके प्रशंसनीय हव्योंका यजन करनेके लिये तू (जंहः) शीघ्र जानेवाला हो।

द्यौः— प्रकाशमान आकाश द्युलोक। स्तुति अर्थक दिव् धातुका यह रूप माननेपर इसका अर्थ द्योता होता है।
सर्वताता— सबका विस्तार करनेवाला यज्ञ। सबकी शांति बढानेवाला कर्म। स्वपाक— पूर्ण ज्ञानी, पाक— परिपक्व हनेवाला मूर्ख। ततरुषः— तारक तैरकर तारण करने वाला।

हे अग्ने! यज्ञमें जाकर प्रदीप्त अग्निमें यजन करता है। तीनों लोकोंमें सूर्यका प्रकाश जाता है और वहां वह तारण करता है उस तरह यज्ञमें किये हवनोंका प्रभाव तीनों लोकोंमें हो और वहांका तारण हो।

[३] (९१) (यस्य अरतिः तेजिष्ठा वनेराट्) जिस अग्निकी ज्वाला अत्यन्त तेजस्वी होकर अरण्यमें सुशोभित होती है (वृधसानः तोदः न अध्वन् अद्यौत्) वह बढनेवाला अग्नि सबके प्रेरक सूर्यकी तरह, अपने मार्गमें भी प्रकाशित होता है। (अद्रोघः न अमर्त्यः ओषधीषु) द्रोह न करनेवालेके समान मरणरहित यह अग्नि वनोंमें (द्रविता अवर्त्रः) शीघ्र फैलने वाला और किसीसे रोका न जानेवाला (त्मन् चेतति) अपने प्रकाशसे सबको प्रकाशित करता है।

अग्निकी ज्वाला बढनेपर वनमें शोभती है सबके और वह जानेपर सूर्यकी तरह वह अपने जानेके मार्गमें भी प्रकाशने लगता है। द्रोह न करनेवालेके समान वह अमर अग्नि किसीसे रोका नहीं जाता और अपने प्रकाशसे सबको प्रकाशित करता है।

१ अरतिः तेजिष्ठा वनेराट्— उसकी शोभा वनमें भी शोभती है।

२ वृधसानः तोदः न अध्वन् अद्यौत्— बढनेवाला। वह प्रेरक सूर्यके समान मार्गमें भी प्रकाशता है। सर्वत्र प्रकाशता है।

३ अद्रोघः अमर्त्यः त्मन् चेतति— द्रोह न करने वाला अमर होकर स्वयं अपने प्रकाशसे प्रकाशित होता है।

मानव धर्म— मनुष्य तेजस्वी हो बडप्पन प्राप्त करे। द्रोह न करे। अपने प्रकाशसे प्रकाशित हो जाय।

(म० ६ सू० १३)

१ त्वद्विश्वा सुभग सौभगान्यग्ने वि यन्ति वनिनो न वयाः ।
श्रुष्टी रयिर्वाजो वृत्रतूर्ये दिवो वृष्टिरीड्यो रीतिरपाम् ॥ ९५ ॥

२ त्वं भगो न आ हि रत्नमिषे परिज्मेव क्षयसि दस्मवर्चाः ।
अग्ने मित्रो न बृहत ऋतस्यासि क्षत्ता वामस्य देव भूरेः ॥ ९६ ॥

३ स सत्पतिः शवसा हन्ति वृत्रमग्ने विप्रो वि पणेर्भर्ति वाजम् ।
यं त्वं प्रचेत ऋतजात राया सजोषा नप्त्रापां हिनोषि ॥ ९७ ॥

---

१ स्वं मित्रायाः पाहि तू मित्रोसे संरक्षण कर।

२ रायः धेषि- धनोंका दान कर।

३ दुच्छुनाः यियासि- दुष्ट शत्रुओंको दूर कर।

४ सुवीराः शतहिमाः मदेम- उत्तम वीर पुत्रोंसे युक्त होकर हम सौ वर्ष आनन्दसे रहें। (यहां वर्षवाचक हिमा पद है। सौ हेमन्तऋतु सौ हिमकाल हम जीवित रहें। यहां हिमकालकी प्रखरता व्यक्त होती है। अन्यत्र शरदः शतं सौ शरद् ऋतु ऐसा कहा है।

शतं जीव शरदो वर्धमानः। शतं हेमन्तान् शतमु वसन्तान् ॥ (ऋ. १ ।१६१।४)

सौ शरद् बढता हुआ जीवित रह, सौ हेमन्त ऋतु और सौ वसन्त ऋतुतक जीवित रह। यहां वसंत हेमन्त इन ऋतुओंका भी नाम है। पर शरद् और हिम ये पद अधिकतर आये हैं।

[१] ( ) हे (सुभग अग्ने) उत्तम भाग्यवान् अग्ने! (विश्वा सौभगानि त्वत् वि यन्ति) सब भाग्य तेरेसे ही निकलते हैं। (वनिनो न वयाः) जिस प्रकार वृक्षसे शाखाएं निकलती हैं। (रयिः श्रुष्टी) धन भी तेरेसे ही शीघ्रतासे उत्पन्न होते हैं। (वृत्रतूर्ये वाजः) संग्राममें शत्रुओंको जीतनेके लिये बल भी तेरेसे ही उत्पन्न होता है। (दिवः वृष्टिः) अन्तरिक्षसे वृष्टि तुमसे ही होती है। (ईड्यः अपां रीतिः) इसलिये स्तुति योग्य तू पानी बहानेवाला है।

हे भाग्यवान् अग्ने! सब भाग्य वृक्षसे शाखाएं निकलती हैं उस तरह तुमसे प्राप्त होते हैं। सब धन शत्रुके संहार करनेवाला बल आकाशसे होनेवाली वृष्टि यह सब तुमसे ही होता है। तू इस कारण प्रशंसनीय है। अतः तू पानी हमारे पास भेज दो।

वृक्षसे शाखाएं सहज ही से निकलती हैं। वैसे सब भाग्य अग्निसे मिलते हैं। सब धन उससे मिलते हैं। युद्धमें विजय देनेवाला बल उसीसे मिलते हैं।

[२] (९६) हे अग्नि! (भगः त्वं नः रत्नं आ इषे) भाग्यवान् तू हमको रमणीय धन दे। (दस्मवर्चाः परिज्मा इव क्षयसि) दर्शनीय दीप्तिमान् तू चारों तरफ जानेवाले वीरकी तरह सब जगह रहता है अथवा सब पर शासन करता है। हे (अग्ने) अग्नि! (मित्रो न बृहतः ऋतस्य क्षत्ता असि) मित्रके समान महान् सत्य मार्गका चलानेवाला है। हे (देव) दीप्तिमान् अग्नि! (भूरेः वामस्य) तू बहुत प्रशंसनीय धनका देनेवाला हो।

हे अग्नि! तू हमें उत्तम रत्न दे। तू दर्शनीय और तेजस्वी है। तू वायुकी तरह सब पर अधिकार चलाता है। मित्रके समान सत्यका प्रवर्तक है। अब तू हमें उत्तम संपत्ति देने वाला हो।

१ भगः त्वं नः रत्नं आ इषे— तू भाग्यवान् है इस लिये हमें भाग्य दे।

२ दस्मवर्चाः परिज्मा इव क्षयसि— दर्शनीय तेजस्वी होकर चारों ओर जानेवाले वीरके समान निवास कर।

३ मित्रः न बृहत ऋतस्य क्षत्ता असि— मित्रके समान बड़े सन्मार्गको चलाओ। चलानेवाला हो।

४ भूरेः वामस्य देव— बहुत धनको प्रदान कर।

[३] (९७) हे (अग्ने) अग्नि! (सत्पतिः सः वृत्रं शवसा हन्ति) सज्जनोंका पालन करनेवाला वह पुरुष आवरक शत्रुको अपने बलसे नाश करता है। (विप्र पणेः वाजं भर्ति) वह बुद्धिमान् असुरके अन्नको हरण करता है। हे (प्रचेतः) बहुत ज्ञानवाले (ऋतजात) सत्यके रक्षणके लिये उत्पन्न होने वाले अग्नि! (अपां नप्त्रा सजोषाः) पानीके न गिरानेवाला

४ यस्ते सूनो सहसो गीर्भिरुक्थैर्यज्ञैर्मर्तो निशितिं वेद्यानट् ।
विश्वं स देव प्रति वारमग्ने धत्ते धान्य१पत्यते वसव्यैः ॥ ९८ ॥

५ ता नृभ्य आ सौश्रवसा सुवीराग्ने सूनो सहसः पुष्यसे धाः ।
कृणोषि यच्छवसा भूरि पश्वो वयो वृकायारये जसुरये ॥ ९९ ॥

६ वद्मा सूनो सहसो नो विहाया अग्ने तोकं तनयं वाजिनो दाः ।
विश्वाभिर्गीर्भिरभि पूर्तिमश्यां मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ १०० ॥

ऐश्वर्योंसे संपन्न होकर (त्वं य राया हिनोषि) तू जिसको धनके लिये प्रेरित करता है। वही शत्रुओंको मारता है।

१ सः सत्पतिः वृत्रं शवसा हन्ति— वह सज्जनोंका पालक अपने बलसे शत्रुका वध करता है। राजा सज्जनोंका पालन करे और दुष्टोंका दमन करे।

२ विप्रः पणेः वाजं बिभर्ति— ज्ञानी और शुद्ध व्यवहार करनेवालेसे अन्न या धन छीन लेता है। शुद्ध पद्धतिसे व्यापार व्यवहार करनेवालोंसे राजा धन छीन ले।

३ सजोषाः त्वं यं राया हिनोषि स शवसा वृत्रं हन्ति— तू उत्साही होकर जिसको धन प्राप्तिके लिये प्रेरित करता है। वह अपने बलसे शत्रुका वध करता है।

मानव धर्म— राजा सज्जनोंका संरक्षण करे और अपने बलसे शत्रुका नाश करे। ज्ञानी राजा दुष्ट व्यापारियोंसे धन छीन ले। वह वीरोंका बल बढावे जिससे वे अपने बलसे शत्रुका नाश कर सकें।

[४] (९८) हे (सहसः सूनो) बलपुत्र अग्नि! (ते निशितिं यः मर्तः गीर्भिः उक्थैः) तेरे तीक्ष्ण सामर्थ्यको जो मनुष्य अपने भावनों स्तोत्रों द्वारा (यज्ञैः वेद्या आनट्) तथा यज्ञोंद्वारा वेदीमें प्राप्त करता है। (स) वह मनुष्य हे (देव अग्ने) कान्तिमान् अग्नि! (विश्वं वारं धान्यं प्रतिधत्ते) सब पर्याप्त धान्य प्राप्त करता है। और (वसव्यैः पत्यते) बहुत धनोंसे युक्त होता है।

जो तीक्ष्ण सामर्थ्य प्राप्त करता है वह पर्याप्त अन्न और बहुत धन प्राप्त करता है।

[५] (९९) हे (सहसः सूनो) बलपुत्र अग्नि! (ता सुवीराः सौश्रवसा नृभ्यः) उन उत्तम वीरोंसे युक्त उत्तम यशोंको उन शत्रुओंसे हरण कर और (पुष्यसे आ धाः) पोषण करनेके लिये हमें देदो। (शवसा भूरि पश्वः वयः) तथा बलसे युक्त तू जो बहुत पशु और अन्न (वृकाय जसुरये अरये कृणोषि) क्रूर हिंसक शत्रुओंके लिये दिया है वह भी हरण करके हमें दे दो।

शत्रुओंका पराभव करके उनका सब ऐश्वर्य अपने देशमें लाना और अपने लोगोंमें बांटना।

[६] (१००) हे (सहसः सूनो अग्ने) बलपुत्र अग्नि! (विहाया नः वद्मा) तू महान् ज्ञानी हमारे लिये हितोपदेशक हो। (वाजिनः तोकं तनयं दाः) हमें धनधान्यसे संपन्न पुत्र पौत्र देदो। (विश्वाभिः गीर्भिः पूर्तिं अभि अश्याम्) सब स्तोत्रोंका गान करनेसे हमारी कामनाओंकी पूर्ति हो। (सुवीराः शतहिमाः मदेम) और पुत्रपौत्रोंसे युक्त होकर सौ वर्ष आनंदसे हम रहें।

तू हमें हितकारक उपदेश कर। धनधान्यसे संपन्न पुत्रपौत्र हमें प्राप्त हो। हमारी कामनाओंकी पूर्ति होती रहे। उत्तम वीर संतानोंसे युक्त होकर हम सौ वर्षतक आनंदसे रहें।

१ विहायाः नः वद्मा— विशेष ज्ञानी हमें उपदेश करे।

२ वाजिनः तोकं तनयं दाः— बलिष्ठ पुत्रपौत्र हमें प्राप्त हो।

३ विश्वाभिः गीर्भिः पूर्तिं अभि अश्याम्— सब उत्तम भावनोंसे पूर्णता हम प्राप्त करें।

४ सुवीराः शतहिमाः मदेम— उत्तम वीर संतानोंके साथ हम सौ हिमकालतक आनंद करते रहें।

(म० ६, सू० १४)

१ अग्ना यो मर्त्यो दुवो धियं जुजोष धीतिभिः ।
भसन्नु ष प्र पूर्व्य इषं वुरीतावसे ॥ १०१ ॥
२ अग्निरिद्धि प्रचेता अग्निर्वेधस्तम ऋषिः ।
अग्निं होतारमीळते यज्ञेषु मनुषो विशः ॥ १०२ ॥
३ नाना ह्यग्नेऽवसे स्पर्धन्ते रायो अर्यः ।
तूर्वन्तो दस्युमायवो व्रतैः सीक्षन्तो अव्रतम् ॥ १०३ ॥
४ अग्निरप्सामृतीषहं वीरं ददाति सत्पतिम् ।
यस्य त्रसन्ति शवसः संचक्षि शत्रवो भिया ॥ १०४ ॥

---

[१] (१ १) (यो मर्त्यः अग्ना दुवः धियं) जो मनुष्य अग्निकी सेवा बुद्धिपूर्वक (धीतिभिः जुजोष, स्तुतिके साथ करता है। (सः पूर्व्यः नु प्र भसत्) वह मनुष्य परिशुद्ध होकर प्रकाशमान होता है। (अवसे इषं वुरीत) और अपनी सुरक्षाके लिये पर्याप्त अन्न प्राप्त करता है।

जो मनुष्य अपनी बुद्धिपूर्वक सेवा करता है। वह शीघ्र ही प्रमुख स्थानपर विराजमान होता है और अपनी सुरक्षाके साथ पर्याप्त अन्न प्राप्त करता है।

१ मर्त्यः दुवः धियं धीतिभिः जुजोष— जो मनुष्य आशीर्वादके साथ अपनी बुद्धिमें रखता है।

२ सः पूर्व्यः प्रभसत्— वह परिशुद्ध होकर प्रकाशता है।

३ अवसे इषं वुरीत— अपनी सुरक्षाके लिये अन्न अपने पास रखता है।

[२] (१ २) (अग्निः इत् प्रचेता) अग्नि ही उत्तम ज्ञानी है। (हि वेधस्तमः ऋषिः) और वह कर्ममें अत्यन्त कुशल द्रष्टा ऋषि है। (मनुषः विशः) मानवी प्रजा इस (होतारं अग्निं यज्ञेषु ईळते) होता अग्निकी यज्ञमें स्तुति करते हैं।

अग्नि-अपनी उत्तम ज्ञानी और कर्ममें कुशल द्रष्टा ऋषि है। मानवी प्रजाजन इस अग्निकी यज्ञमें स्तुति गाते हैं।

१ अग्निः प्रचेता वेधस्तमः ऋषिः— अपनी ज्ञानी और कर्मप्रवीण द्रष्टा ऋषि है।

२ मनुषः विशः होतारं अग्निं यज्ञेषु ईळते— मानवी प्रजा होता अग्नीकी यज्ञोंमें स्तुति गाते हैं।

[३] (१ ३) हे (अग्ने) अग्नि! (अर्यः रायः अवसे नाना स्पर्धन्ते) शत्रुके धन भक्तोंकी सुरक्षा करनेके लिये शत्रुसे पृथक होकर स्पर्धा करते हैं। (आयवः दस्युं तूर्वन्तः) भक्त मनुष्य शत्रुका नाश करनेकी इच्छा करते हुए (व्रतैः अव्रतं सीक्षन्त) व्रतोंसे व्रत विरोधियोंका पराभव करते हैं।

शत्रुके धन शत्रुसे पृथक् होते हैं और हमारे पास आनेकी त्वरा करते हैं। वे धन हमारा संरक्षण भी करते हैं। मनुष्य शत्रुका नाश करनेके लिये और विरोधियोंका पराभव करनेके लिये यज्ञादि कर्म करते हैं।

१ अर्यः नाना रायः अवसे स्पर्धन्ते— शत्रुके नाना प्रकारकी संपत्ति अपनी सुरक्षाके लिये स्पर्धा करते हैं।

२ आयवः दस्युं तूर्वन्त व्रतैः अव्रतं सीक्षन्तः— मनुष्य शत्रुका नाश करते हैं और व्रतोंसे व्रतविरोधियोंका पराभव करते हैं। उत्तम नियमोंका पालन करके नियम पालन न करनेवालोंका पराभव करते हैं। उत्तम नियमोंके पालनसे आसक्तियोंको समझाते हैं कि व्रतहीन रहना बुरा है।

[४] (१ ४) (अग्निः) वह अग्नि (अप्सां ऋतीषहं सत्पतिं वीरं ददाति) श्रेष्ठ कर्म करनेवाले शत्रुओंका पराभव करनेवाले सज्जनोंका पालन करनेवाले और पुत्रको देता है। (यस्य संचक्षि शवसः) जिस पुत्रको देखकर उसके बलसे (भिया शत्रवः त्रसन्ति) डरकर शत्रु भाग जाने लगते हैं।

पुत्र ऐसा होना चाहिये कि जो कर्म करनेमें प्रवीण हो, शत्रुओंका पराभव करनेवाला हो, सज्जनोंका उत्तम पालन कर नेवाला हो और जिसको देखनेसे ही उसके बलसे शत्रु भयभीत होकर कांपने लगते हैं।

५ अग्निर्हि विश्मना निदो देवो मर्तमुरुष्यति ।
सहावा यस्यावृतो रयिर्वाजेष्ववृतः ॥ १०५ ॥

६ अच्छा नो मित्रमहो देव देवानग्ने वोचः सुमतिं रोदस्योः ।
वीहि स्वस्तिं सुक्षितिं दिवो नॄन्द्विषो अंहांसि दुरिता तरेम ता तरेम तवावसा तरेम ॥ १०६ ॥

(मं० १, सू० १५)

१ इममू षु वो अतिथिमुषर्बुधं विश्वासां विशां पतिमृञ्जसे गिरा ।
वेतीद्दिवो जनुषा कच्चिदा शुचिर्ज्योक्चिदत्ति गर्भो यदच्युतम् ॥ १०७ ॥

---

१ अग्निः मर्त्यो अतीवर्त सत्पतिं वीरं ददाति — अग्नि कर्म करनेमें कुशल सज्जन भक्त करनेवाले सज्जनोंका उत्तम पालन करनेवाला वीर पुत्र देता है। पुत्र ऐसा होना चाहिये।

२ यस्य संदृशि दावसः भियो यावयः असन्ति — जिसके दर्शनसे उसके बलके कारण शत्रु भयभीत होकर पराभूत होते हैं।

इसमें पुत्रके जो गुण कहे हैं उनको ध्यानमें धारण करना योग्य है।

[५] (१ ५) (सहावा देव अग्निः विश्मना मर्तं) बलवान् दिव्य अग्नि ज्ञानसे मनुष्यको (निदः उरुष्यति) निन्दासे रक्षा करता है और (हि यस्य रयिः वाजेषु अवृतः) उस मनुष्यका धन युद्धोंमें (अवृत) सुरक्षित होता है।

बलवान् अग्निदेव अपने अद्भुत ज्ञानसे अपने भक्तका संरक्षण निन्दा करनेवाले शत्रुसे करता है। तथा उसका धन युद्धोंके समय भी सुरक्षित रहता है। कोई शत्रु उसका धन उससे पृथक् कर नहीं सकता।

१ सहावा देवः अग्निः विश्मना मर्तं निदः उरुष्यति — बलवान् अग्निदेव अपने ज्ञानसे अपने भक्तकी निन्दक शत्रुसे सुरक्षा करता है।

२ यस्य रयिः वाजेषु अवृत — उसका धन युद्धोंमें सुरक्षित रहता है। शत्रु उस धनको उससे पृथक् नहीं कर सकता।

मानव धर्म— अपने ज्ञानसे निन्दकोंसे अपनी रक्षा करो। अपने धनकी युद्धोंमें सुरक्षा करो।

[६] (१ ६)—
(२४ वां मंत्र देखो वहीं अर्थ दिया है।)

[१] (१ ७) हे अग्नि ! (वः) आप (इमं ऊं षु गिरा ऋञ्जसे) इस अग्निको अपनी वाणी द्वारा प्रसन्न कीजिये। जो (अतिथिं उषर्बुधं विश्वासां विशां पतिं) अतिथिकी तरह पूज्य उषःकालमें प्रबुद्ध सब प्रजाओंका पालन करनेवाला (जनुषा शुचिः कच्चित् दिवः आ वेति) जन्मसे ही पवित्र है और जो द्युलोकसे यहाँ आता है। (गर्भः) गर्भरूपमें जो वनस्पतियोंके बीचमें विद्यमान् रहकर (यत् अच्युतं ज्योक् चित् अत्ति) जो हवि विश्वासपूर्वक दिया जाता है वही सदा खाता रहता है।

१ अतिथिं उषर्बुधं विश्वासां विशां पतिं इमं गिरा ऋञ्जसे— इस अतिथिवत् पूज्य उषःकालमें जागनेवाले सब प्रजाजनोंके पालनकर्ताकी अपनी वाणीसे प्रशंसा करो। (जो भ्रमण करके उपदेश नहीं देता जो सबेरे जागता उठता नहीं सब प्रजाओंका जो योग्य पालन नहीं करता उसकी प्रशंसा कोई न करें।)

२ जनुषा शुचिः— यह जन्मसे ही पवित्र है। अतः प्रशंसाके योग्य है।

३ यत् अच्युतं तत् ज्योक् अत्ति— जो गिरा हुआ नहीं होता वही अन्न सदा खाता है। दूसरों द्वारा खाया हुआ ऐसा हुआ अन्न कभी नहीं सेवन करता।

४ गर्भः— गर्भ जैसा पवित्र और पवित्र आचरण वाले माता द्वारा है वैसा यह है। गर्भ माताके गर्भाशयमें सुरक्षित रहता है। और जनका पवित्र सारभूत रस पाता है वैसा यह है। ऐसा सार ग्रहण करनेवाला जो हो उसकी प्रशंसा करनी चाहिये।

२ मित्रं न यं सुधितं भृगवो दधुर्वनस्पतावीड्यमूर्ध्वशोचिषम् ।
स त्वं सुप्रीतो वीतहव्ये अद्भुत प्रशस्तिभिर्महयसे दिवेदिवे ॥ १०८ ॥

३ स त्वं दक्षस्यावृको वृधो भूरर्यः परस्यान्तरस्य तरुषः ।
रायः सूनो सहसो मर्त्येष्वा छर्दिर्यच्छ वीतहव्याय सप्रथो भरद्वाजाय सप्रथः ॥ १०९ ॥

४ द्युतानं वो अतिथिं स्वर्णरमग्निं होतारं मनुषः स्वध्वरम् ।
विप्रं न द्युक्षवचसं सुवृक्तिभिर्हव्यवाहमरतिं देवमृञ्जसे ॥ ११० ॥

---

[२] (१०८) (वनस्पतौ सुधितं ईड्यं ऊर्ध्वशोचिषं) अरणियोंमें अच्छी तरहसे रहनेवाले, स्तुत्य जिसकी ज्वाला ऊपर जाती है ऐसे (यं मित्रं न भृगवः दधुः) जिस मित्रवत् अग्निको भृगु आदि ऋषियोंने स्थापित किया है। हे (अद्भुत) आश्चर्यकारक अग्नि! (सः त्वं वीतहव्ये सुप्रीतः) वह तू हवि देनेवालेपर सुप्रसन्न हो। (दिवेदिवे प्रशस्तिभिः महयसे) जो प्रतिदिन उत्तम स्तोत्रों द्वारा तुम्हारी महिमा गाता है।

अरणियोंमें रहनेवाले प्रशंसा योग्य ऊर्ध्वगतिवाले मित्रवत् पूज्य अग्निकी भृगुऋषि स्थापना करते हैं। हे आश्चर्यकारक अग्नि! तू वीतहव्य ऋषिपर प्रसन्न हो। वह ऋषि प्रतिदिन स्तोत्रोंसे तुम्हारी महिमाका वर्णन करता है।

१ ऊर्ध्वशोचिः— अग्निकी ज्वाला ऊपर जाती है। वैसा उच्च जीवन मनुष्यका होना चाहिये।

२ वीतहव्य— जो हवनीय पदार्थ अग्निमें अर्पण करता है। हविका हवन करनेवाला। यह ऋषिका भी नाम है और हवन करनेवालेका भी यहांपर वर्णन करता है।

[३] (१०९) हे अग्नि! (सः अवृकः त्वं दक्षस्य वृधः भूः) वह क्रूरता रहित तू दक्ष मनुष्यका संवर्धन करनेवाला हो। तथा (परस्य अन्तरस्य अर्यः तरुषः) दूरके और पासके शत्रुओंसे तारनेवाला हो। हे (सहसः सूनो) बलपुत्र अग्नि! (सप्रथः मर्त्येषु वीतहव्याय भरद्वाजाय) सब प्रकारसे बलवान तू सब मनुष्योंमें हवि देनेवाले (भरद्वाजके लिये) अन्न समर्पण करनेवालेके लिये (रायः छर्दिः आयच्छ) धन और रहने योग्य घर देओ।

१ सः अवृकः त्वं दक्षस्य वृधः भूः— तू अब क्रूरता रहित होकर दक्ष मनुष्यको बढानेवाला हो। जो कर्ममें दक्ष होता है उसीकी वृद्धि और उन्नति हो सकती है।

२ परस्य अन्तरस्य अर्यः तरुषः भूः— दूरके और समीपके शत्रुओंका नाश करनेवाला हो।

३ सप्रथः मर्त्येषु वीतहव्याय भरद्वाजाय रायः छर्दिः आयच्छ— मनुष्योंमें जो हविष्यान्नका हवन करता है और अन्नदान करता है उसको धन और घर दे दो। वीत-हव्य — हव्यका- अन्नका- हवन करनेवाला। भरद्-वाजः — भरपूर अन्नका दान करनेवाला। स-प्रथः— प्रसिद्ध, सबसे अधिक सामर्थ्यवान्।

४ रायः छर्दिः आयच्छ— व्यवहारके लिये धन और रहनेके लिये घर दे दो। हरएक मनुष्यके लिये इतना तो मिलना चाहिये।

मानव धर्म— क्रूरता छोडो और सब कार्य दक्षतासे करो। दूरके और समीपके शत्रुओंका नाश करो। अन्नका दान करो।

[४] (११०) तू (सुवृक्तिभिः हव्यवाहं देवं) उत्तम स्तुति द्वारा हव्यको ले जानेवाले दिव्य गुणयुक्त (द्युतानं वः अतिथिं स्वर्णरं) दीप्यमान, तुम सबके लिये अतिथिके समान पूज्य स्वर्गको ले जानेवाले (मनुषः होतारं स्वध्वरं विप्रं न द्युक्षवचसं अरतिं) मनुष्योंके यज्ञमें देवोंको बुलानेवाले उत्तम हिंसा रहित यज्ञ करनेवाले विद्वानकी तरह कान्तिके निवासभूत (अग्निं ऋञ्जसे) अग्निकी- आत्माकी- प्रसन्न करो।

१ द्युतानं अतिथिं स्वर्णरं, स्वध्वरं विप्रं द्युक्षवचसं अरतिं अग्निं ऋञ्जसे— तेजस्वी पूज्य सुखपूर्ण लोकको देनेवाले हिंसारहित कर्म करनेवाले ज्ञानी तेजस्वी श्रेष्ठ अग्निका सत्कार करो।

५ पावकया यश्चितयन्त्या कृपा क्षामन्रुरुच उषसो न भानुना ।
तूर्वन्न यामन्नेतशस्य नू रण आ यो घृणे न ततृषाणो अजरः ॥ १११ ॥

६ अग्निमग्निं वः समिधा दुवस्यत प्रियंप्रियं वो अतिथिं गृणीषणि ।
उप वो गीर्भिरमृतं विवासत देवो देवेषु वनते हि वार्यं देवो देवेषु वनते हि नो दुवः ॥ ११२ ॥

७ समिद्धमग्निं समिधा गिरा गृणे शुचिं पावकं पुरो अध्वरे ध्रुवम् ।
विप्रं होतारं पुरुवारमद्रुहं कविं सुम्नैरीमहे जातवेदसम् ॥ ११३ ॥

---

[५] (१११) (यः पावकया चितयन्त्या कृपा क्षामन् रुरुचे) जो अग्नि पवित्र ज्ञान देनेवाली कान्तिसे भूमिपर प्रकाशता है। (उषसः न भानुना) जैसी उषा अपने प्रकाशसे प्रकाशित होती है और (एतशस्य रणे यामन् तूर्वन् न) एतशके संग्राममें शत्रुका नाश करनेके समय (यः नु आघृणे) अग्नि दीप्त प्रदीप्त हुआ था। (ततृषाणः अजरः) वह भूख और तृषासे पीडित जरारहित अग्नि है। उस अग्निको प्रसन्न करो।

जैसी उषा अपने प्रकाशसे प्रकाशती है जैसे शत्रुसे युद्ध करनेके समय शत्रुपर विनाशक प्रहार करनेवाला वीर तेजस्वी दीखता है। वैसा यह अग्नि पवित्र ज्ञान देनेवाले तेजसे इस पृथ्वीपर प्रकाशता है। यह अतिशय कर्म करनेसे भूख और प्यासले पीडित जैसा है उसको हवन द्वारा प्रसन्न कर।

१ पावकया चितयन्त्या कृपा क्षामन् रुरुचे— पवित्र ज्ञान बढानेवाली कान्तिसे पृथ्वीपर प्रकाशित होते रहो।

२ रणे यामन् तूर्वन् न आघृणे— रणसंग्राममें शत्रुका नाश करनेवाला वीर जैसा प्रकाशता है। वैसा तू शूरवीर बनकर प्रकाशित हो जाओ।

३ ततृषाणः अजरः— कार्य करते करते भूख और प्यास लगे यह प्रेमका चिह्न है। इस अवस्थामें भी जरारहित तरुण जैसा उत्साही हो। मनुष्यको ऐसा बनना चाहिये।

[६] (११२) हे स्तोताओ! (वः प्रियं प्रियं वः अतिथिं गृणीषणि) तुम अत्यन्त प्रिय अतिथिके समान पूज्य स्तुत्य (अग्निं अग्निं समिधा दुवस्यत) अग्निकी समिधाओंसे सेवा करो। (वः अमृतं गीर्भिः विवासत) वैसे ही तुम मरणरहित अग्निकी वाणी द्वारा सेवा करो। (हि देवेषु देवः वार्यं वनते) क्योंकि देवोंके बीच अग्नि देव ही वरणीय धनको अपने पास रखता है। (हि देवेषु देवः नः दुवः वनते) इस कारण देवोंके बीच अग्नि देव ही – अकेला ही– हमारी सेवाको ग्रहण करता है।

१ प्रियं अतिथिं गृणीषणि— प्रिय तथा भ्रमण करके जो जनोंको उत्तम उपदेश देता है उसकी प्रशंसा कर।

२ अमृतं विवासत— जिसके विचार मारक नहीं हैं उसकी सेवा करो। उत्साही अमर विचारवालेकी प्रशंसा हो।

३ देवः वार्यं वनते— जो दिव्यगुणवाला है वही उत्तम धन अपने पास रखता है।

४ देवः नः दुवः वनते— दिव्यगुणवाला ही हमारी सेवा प्राप्त कर सकता है।

भ्रमण करके उत्तम उपदेश करनेवाले उत्साही विचारवाले दिव्य नेताकी प्रशंसा करना योग्य है।

[७] (११३) (समिद्धं अग्निं समिधा गिरा गृणे) अच्छी प्रकारसे प्रदीप्त तेजस्वी अग्निकी स्तोत्रों द्वारा मैं स्तुति करता हूं। (शुचिं पावकं ध्रुवं) शुद्ध सबको पवित्र करनेवाले निश्चल अग्निको (अध्वरे) यज्ञमें मैं स्थापित करता हूं। (विप्रं होतारं पुरुवारं अद्रुहं) मेधावी होता बहुतों द्वारा प्रशंसनीय द्रोह न करनेवाले (कविं जातवेदसं सुम्नैः ईमहे) ज्ञानी ज्ञानप्रकाशक अग्निकी उत्तम स्तोत्रों द्वारा हम प्रार्थना करते हैं।

प्रदीप्त अग्निकी समिधाओंके साथ स्तोत्रद्वारा मैं स्तुति करता हूं। अग्नि स्वयं शुद्ध है और दूसरोंको पवित्र करता है तथा वह स्थिर है। वह ज्ञानी देवोंको बुलानेवाला अनेकों द्वारा प्रशंसित किसीका द्रोह न करनेवाला ज्ञानी ज्ञानप्रकाशक है उसकी मैं प्रशंसा करता हूं।

१ समिद्धं अग्निं गृणे— प्रदीप्त अग्निकी मैं प्रशंसा करता हूं। जो तेजस्वी नहीं उसकी प्रशंसा करना भी योग्य नहीं।

८ त्वां दूतमग्ने अमृतं युगेयुगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्यम् ।
देवासश्च मर्तासश्च जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा निषेदिरे ॥ ११४ ॥

९ विभूषन्नग्न उभयाँ अनु व्रता दूतो देवानां रजसी समीयसे ।
यत्ते धीतिं सुमतिमावृणीमहेऽध स्मा नस्त्रिवरूथः शिवो भव ॥ ११५ ॥

१० तं सुप्रतीकं सुदृशं स्वञ्चमविद्वांसो विदुष्टरं सपेम ।
स यक्षद्विश्वा वयुनानि विद्वान् प्र हव्यमग्निरमृतेषु वोचत् ॥ ११६ ॥

---

१ शुचिं पावकं ध्रुव—स्वयं शुद्ध सर्वत्र पवित्रता करने वाले शाश्वत नेताकी प्रशंसा होती है। अपवित्र अशुद्ध, चंचल पुरुषकी कोई प्रशंसा नहीं करता।

१ विप्रं पुरुवारं अद्रुहं कविं जातवेदसं सुम्नैः ईमहे— ज्ञानी प्रशंसनीय अद्रोही दूरदर्शी ज्ञानप्रचारककी हम प्रशंसा करते हैं। अज्ञानी अप्रशस्त द्रोही हिंसक अदूरदर्शी ज्ञान विध्वंसककी कोई प्रशंसा नहीं करता।

मानव धर्म— तेजस्वी शुद्ध, सदाचारी ज्ञानी अद्रोही दूरदर्शी जो होगा वह प्रशंसा योग्य है।

[८] (११४) हे (अग्ने) अग्नि! (देवासः च मर्तासः च) देवता और मनुष्य (त्वां दूतं दधिरे) तुझे दूत बनाते हैं। (अमृतं युगेयुगे हव्यवाहं पायुं ईड्यं) मरणरहित युगयुगमें हव्य वहन करनेवाले पालन करनेवाले स्तवनीय (जागृविं विभुं विश्पतिं) जाग्रत सर्वत्र व्याप्त प्रजाओंका पालन करने वाले (त्वां) तुझ अग्निकी (नमसा) नमस्कार द्वारा (निषेदिरे) सेवा करते हैं।

१ अमृतं पायुं जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा निषेदिरे— जो अमर रक्षक जाग्रत वैभववान प्रजाका पालक है उसको नमन करते हैं। ऐसे जाग्रत रक्षक प्रजापालककी प्रशंसा करना योग्य है। पर जो मारिचक रक्षा न करनेवाला आलसी दुष्ट प्रजाके नाशका हेतु बनेगा उसका सत्कार कोई न करे।

[९] (११५) हे (अग्ने) अग्नि! (उभयान् विभूषन् अनुव्रता) देव और मनुष्योंको विभूषित करके यज्ञादि कर्मोंमें (देवानां दूतः रजसी समीयसे) देवोंका दूत होकर तू द्यावापृथिवीमें घूमता है। (यत् ते धीतिं सुमतिं आवृणीमहे) हम तेरे स्तोत्रसे कर्म और स्तुति करते हैं। (अध त्रिवरूथः नः शिवः भव) और तीनों संरक्षणोंसे युक्त तू हमको सुखकर हो।

१ उभयान् अनुव्रता विभूषन्— दोनों प्रकारकी प्रजाके अनुकूल आचरण करनेवाला होकर उनको सुभूषित कर। प्रजामें ज्ञानी-अज्ञानी सधन-निर्धन शूर-भीरु ऐसे द्विविध लोग होते हैं। इनको सुख प्राप्त होना चाहिये।

२ देवानां दूतः समीयसे—दिव्य गुणवालोंको बुलानेके लिये ज्ञानीयोंको बुलानेके लिये जाना योग्य है।

३ धीतिं सुमतिं आवृणीमहे— धारणावती बुद्धि कर्मशक्ति तथा सुमतिको हम अपनेमें धारण करते हैं।

४ त्रिवरूथः शिवः नः भव— तीनों संरक्षणोंसे हमें सुखदायी हो।

शरीर मन तथा बुद्धिका संरक्षण तीन प्रकारका संरक्षण है। यह तीन प्रकारका संरक्षण होना चाहिये।

[१०] (११६) (अविद्वांसः विदुष्टरं तं) अल्प ज्ञानवाले हम उस सर्वज्ञ (सुप्रतीकं सुदृशं स्वञ्चं) शोभनांग सुन्दर दिखने वाले गमनशील (सपेम) अग्निकी-अग्रणीकी- परिचर्या करते हैं। (सः यक्षत्) वह अग्नि यजन करे। (विश्वा वयुनानि विद्वान्) वह संपूर्ण कर्मोंको जाननेवाला (अग्निः अमृतेषु हव्यं प्रवोचत्) अग्नि मरणरहित देवोंके बीच हमारे हव्य पदार्थोंके विषयमें वर्णन करके कहे।

१ अविद्वांसः विदुष्टरं सुप्रतीकं सुदृशं स्वञ्चं सपेम— हम अज्ञानी हैं इसलिये हम अनन्त ज्ञानी उत्तम शरीरवाले सुन्दर और प्रगतिशील नेताकी सेवा करते हैं। वह हमें ज्ञान देवें और ज्ञानी बनावें।

२ सुप्रतीक सुदृशं स्वञ्च— सुन्दर आदर्श प्रगति करनेवाला नेता पूजनीय होता है।

११ समग्ने पास्युत तं पिपर्षि यस्त आनट् कवये शूर धीतिम् ।
यज्ञस्य वा निशितिं वोदितिं वा तमित्पृणक्षि शवसोत राया ॥ ११७ ॥
१२ त्वमग्ने वनुष्यतो नि पाहि त्वमु नः सहसावन्नवद्यात् ।
सं त्वा ध्वस्मन्वदभ्येतु पाथः सं रयिः स्पृहयाय्यः सहस्री ॥ ११८ ॥
१३ अग्निर्होता गृहपतिः स राजा विश्वा वेद जनिमा जातवेदाः ।
देवानामुत यो मर्त्यानां यजिष्ठः स प्र यजतामृतावा ॥ ११९ ॥

---

१ विश्वा वयुनानि विद्वान्— सब कर्मोंका ज्ञान प्राप्त करे।

मानव धर्म— अज्ञानी ज्ञानीकी सेवा करे और उससे ज्ञान प्राप्त करे। मनुष्य कर्मोंको करनेका उत्तम ज्ञान प्राप्त करे।

[११] (११७) हे (शूर अग्ने) शौर्यवान् अग्नि! (यः) जो (कवये ते धीतिं आनट्) बुद्धिमान् पुरुष तेरे लिये कर्म करता है। (तं पासि) उस पुरुषकी तू रक्षा करता है। (उत तं पिपर्षि) और उसकी इच्छाओंको पूर्ण करता है। (यज्ञस्य वा निशितिं वा) जो यज्ञकी या संस्कारको (उदितिं वा) तथा समाप्तिको करता है। (तं इत् शवसा उत राया पृणक्षि) उसको ही बलसे और धनसे तू पूर्ण करता है।

हे शूर अग्नि! तुझ जैसे बुद्धिमान्के लिये जो कर्म करता है उसका तू संरक्षण करता है और उसको परिपूर्ण बना देता है। जो तेरे लिये यज्ञ करता है, उसको तू धन और बलसे भरपूर भर देता है।

१ कवये धीतिं आनट् तं पासि पिपर्षि— ज्ञानीकी सेवाके लिये जो कर्म करता है उसकी सुरक्षा वह करता है और उसकी इच्छाएं वह पूर्ण करता है।

२ निशितिं उदितिं आनट् तं शवसा राया पृणक्षि— जो तेजस्विता और उदयके लिये कर्म करता है उसको बल और धनसे भरपूर भर देता है।

[१२] (११८) हे (अग्ने) अग्नि! (त्वं वनुष्यतः नि पाहि) तू हिंसक शत्रुसे हमारी सुरक्षा कर। हे (सहसावन्) बलवान् अग्नि! (त्वं उ नः अवद्यात्) तू ही हमको पापसे बचाओ। (त्वा ध्वस्मन्वत् पाथः सं अभ्येतु) तुझे दोषरहित अन्न प्राप्त हो। (स्पृहयाय्यः सहस्री रयिः) स्पृहा करने योग्य सहस्र प्रकारका धन हमें प्राप्त हो।

१ त्वं वनुष्यतः नि— तू हिंसक शत्रुसे हमारी सुरक्षा कर।

२ हे सहसावन्! त्वं नः अवद्यात्— हे बलवान्! तू हमें पापसे बचाओ।

३ ध्वस्मन्वत् पाथः त्वा समभ्येतु— निर्दोष अन्न तुझे प्राप्त हो।

४ स्पृहयाय्यः सहस्री रयिः— वर्णनीय सहस्रों प्रकार का धन हमें प्राप्त हो।

मानव धर्म— हिंसक शत्रुका नाश कर, पापसे हमारी सुरक्षा कर। निर्दोष अन्नका सेवन कर। स्पृहणीय सहस्रों प्रकारका धन प्राप्त कर।

[१३] (११९) (होता राजा यः अग्निः गृहपतिः) देवोंको बुलानेवाला राजा या प्रकाशमान् वह अग्नि घरोंका पति है। तथा (जातवेदाः विश्वा जनिमा वेद) वह ज्ञाता संपूर्ण प्राणिमात्रोंको जानता है। (यः देवानां उत मर्त्यानां यजिष्ठः) जो देवों और मनुष्योंमें अतिशय यजनीय अर्थात् पूज्य है। (ऋतावा सः प्र यजतां) सत्यपालक वह अग्नि देवोंके यज्ञ सम्पन्न करे।

१ गृहपतिः जातवेदाः राजा विश्वा जनिमा वेद— गृहस्थी ज्ञानी राजा सब प्राणियोंको जानता है। गृहस्थी तथा राजा ज्ञानी हो और सबका ज्ञान प्राप्त करे।

२ देवानां उत मर्त्यानां यजिष्ठः— देवों और मानवोंमें वह सत्कार करे। वह मानवोंको सत्कार करने योग्य है।

३ सः ऋतावा प्र यजतां— वह सत्यपालक यज्ञ करे।

मानव धर्म— गृहपति अथवा गृहस्थी ज्ञानी हो। राजा भी ज्ञानी हो। सब भूतोंका ज्ञान वह प्राप्त करे। देवों और मानवोंके लिये वह यज्ञ करे।

१४ अग्ने यद्द्य विशो अध्वरस्य होतः पावकशोचे वेष्ट्वं हि यज्वा ।
ऋता यजासि महिना वि यद्भूर्हव्या वह यविष्ठ या ते अद्य ॥ १२० ॥

१५ अभि प्रयांसि सुधितानि हि ख्यो नि त्वा दधीत रोदसी यजध्यै ।
अवा नो मघवन्वाजसातावग्ने विश्वानि दुरिता तरेम ता तरेम तवावसा तरेम ॥ १२१ ॥

१६ अग्ने विश्वेभिः स्वनीक देवैरूर्णावन्तं प्रथमः सीद योनिम् ।
कुलायिनं घृतवन्तं सवित्रे यज्ञं नय यजमानाय साधु ॥ १२२ ॥

---

[१४] (१२०) हे (अध्वरस्य होतः पावकशोचे अग्ने) यज्ञके होता पवित्र कान्तिवाले अग्नि ! (अद्य विशः यत् वेः) इस समय मनुष्यका जो कर्तव्य है उसको वर्धन करनेकी इच्छा कर । (हि त्वं यज्वा ऋता यजासि) क्योंकि तू यज्ञ करनेवाला है अतः यज्ञमें देवोंका यजन कर । (महिना यत् वि भूः) अपने माहात्म्यसे तू व्याप्त होता है । इसलिये हे (यविष्ठ) युवा अग्नि ! (ते अद्य या हव्या वह) तेरे पास आज जो हव्य देते हैं उनका वहन कर ।

१ अध्वरस्य होतः पावकशोचे— हिंसारहित कर्मका संपादन करनेवाला पवित्र तेजस्वी हो ।

२ विशः यत् अद्य वेः— प्रजा जो चाहती है वही (राजा) करे । प्रजा जो शुभ यज्ञ कर्म करना चाहती है वही राजा करे ।

३ ऋता यजासि, महिना विभूः — सत्यसे यज्ञ कर और अपनी महिमासे सर्वत्र प्रभावी बन ।

मानव धर्म पवित्र और तेजस्वी होकर हिंसारहित कर्म कर । प्रजाजनोंका हित कर । सत्यपालनपूर्वक शुभ कर्म कर और अपने महत्त्वसे चारों ओर प्रकाशता रह ।

[१५] (१२१) हे अग्नि ! (सुधितानि प्रयांसि अभि ख्यः) यज्ञस्थानमें अच्छी तरहसे रखे हुए अन्नादि हव्योंको देख । (रोदसी यजध्यै नि दधीत) द्यावापृथिवीमें रहनेवाले देवोंको देनेके लिये ये रखा है । हे (मघवन् अग्ने) ऐश्वर्यवान् अग्नि ! (वाजसातौ नः अव) संग्राममें हमारी रक्षा कर (विश्वानि दुरितानि तरेम) संपूर्ण दुःखोंसे हम पार हो जाँय ।

१ सुधितानि प्रयांसि अभिख्य- उत्तम संस्कारोंसे सुसंस्कृत ये अन्न रखे हैं उनको तू देख ।

२ यजध्यै नि दधीत— यज्ञके लिये ये अन्न रखे हैं ।

३ वाजसातौ न अव— युद्धके समय हमारा संरक्षण कर । (वाज सातौ= अन्नका बँटवारा करनेके समय स्पर्धा और युद्ध होते हैं । उनमें हम सुरक्षित हों ।)

४ विश्वानि दुरिता तरेम— सब पापोंसे हम पार हो जांय । हमारे पास पाप न हों ।

मानव धर्म— उत्तम सुसंस्कृत अन्नोंको यज्ञदानके लिये रखो । युद्धोंमें संरक्षण कर । सब पापोंसे दूर रह ।

[१६] (१२२) हे (स्वनीक अग्ने) सुन्दर ज्वालावाले अग्नि ! (विश्वेभिः देवैः ऊर्णावन्तं योनिं) सब देवोंके साथ ऊनका आसन बिछाये वेदी स्थानपर आकर (प्रथम सीद) प्रथम बैठो । (कुलायिनं घृतवन्तं सवित्रे) घरमें रहनेवाले और घृतयुक्त हवि देनेवाले (यजमानाय यज्ञं साधु नय) यजमानके यज्ञको ठीक प्रकारसे देवोंतक पहुंचाओ ।

१ स्वनीकः अग्निः— (सु अनीक) उत्तम सेनावाला (अग्निः) अग्रणी हो । अग्निरूपमें उत्तम ज्वालावाला प्रदीप्त ।

२ ऊर्णावन्तं योनिं प्रथमः सीद्—जहां आसन बिछाये हैं ऐसी वेदीपर आकर तुम प्रथम स्थानमें बैठो ।

३ कुलायिनं घृतवन्तं सवित्रे यजमानाय यज्ञं साधु नय— (कुलायिनं) जिसका अपना घर है ऐसे घर स्वामीके घृतमिश्रित आहुति देनेवाले यजमानके यज्ञको उत्तम रीतिसे सफल कर । कुलाय घर, कुलायी- जिसका अपना घर निजका है । गृहस्थी ।

मानव धर्म— उत्तम वीरोंकी सेनाके साथ अग्रणी रहे । प्रथम स्थानमें बैठनेकी योग्यता धारण करे । गृहस्थोंके यज्ञको उत्तम रीतिसे समाप्त करे उसमें त्रुटी रहने न दे ।

१७ इममु त्यमथर्ववदग्निं मन्थन्ति वेधसः ।
यमङ्कूयन्तमानयन्नमूरं श्याव्याभ्यः ॥ १२३ ॥
१८ जनिष्वा देववीतये सर्वताता स्वस्तये ।
आ देवान्वक्ष्यमृताँ ऋतावृधो यज्ञं देवेषु पिस्पृशः ॥ १२४ ॥
१९ वयमु त्वा गृहपते जनानामग्ने अकर्म समिधा बृहन्तम् ।
अस्थूरि नो गार्हपत्यानि सन्तु तिग्मेन नस्तेजसा सं शिशाधि ॥ १२५ ॥

(मं० ६ सू० १६)

१ त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः । देवेभिर्मानुषे जने ॥ १२६ ॥

---

[१७] (१२३) (वेधसः इमं उ त्यं अग्निं अथर्ववत् मन्थन्ति) कर्म करनेवाले ज्ञानी मनुष्य उस अग्निका अथर्वाके समान मन्थन करते हैं (अंकूयन्तं अमूरं यं श्याव्याभ्यः आनयन्) इधर उधर जानेवाले गतिमान् इस ज्ञानी अग्निको अन्धकारसे यहां लाया है।

ज्ञानी मन्थन करके अग्निको सिद्ध करते हैं। प्रथम वह इधर उधर जाता है पर उस ज्ञानीको अन्धकारके स्थानसे लाकर यहां यज्ञस्थानमें रखते हैं।

१ श्याव्याभ्यः अंकूयन्तं अमूरं आनयन्— अन्धकारसे भ्रमणशील ज्ञानीको लाते हैं। ज्ञानी किसी स्थानपर रहता हो तो उसको लाकर शुभ कर्ममें लगाना चाहिये।

[१८] (१२४) हे अग्नि! (सर्वताता जनिष्व) सबका विस्तार करनेवाले यज्ञमें तू प्रकट हो। (देववीतये स्वस्तये ऋतावृधः) देवत्व प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले मनुष्यके कल्याणके लिये सत्यसहित यज्ञके वर्धक देवोंको (वक्षि) लाओ। (देवेषु यज्ञं पिस्पृशः) और देवोंमें हमारे यज्ञका समर्पण करो।

सर्वताता— (सर्व-ताता) सबका जिसमें विस्तार जिससे होता है उसका नाम यज्ञ है। ऐसे शुभ कर्ममें कर्तव्य करनेके लिये (जनिष्व) जन्म लिया है।

१ देववीतये स्वस्तये ऋतावृधः अमृतान् वक्षि— देवत्वकी प्राप्तिके लिये और कल्याण करनेके लिये सत्यको बढानेवाले अमर शक्तिमान विबुधोंको यहां ले आओ।

मानव धर्म— सब सत्कर्म करनेवालोंकी शक्ति जिससे बढेगी ऐसे शुभ कर्म करने चाहिये। दैवी शक्तियोंकी प्राप्ति करनी चाहिये। सबका कल्याण होना चाहिये। इसलिये सत्यमार्गको बढानेवाले अमर शक्तिवाले विभूतियोंसे अपना संबंध जोडना चाहिये।

[१९] (१२५) हे (गृहपते अग्ने) गृहपति अग्नि! (वयं उ त्वा समिधा बृहन्तं अकर्म) हम तुझे समिधा द्वारा बढाते हैं। इसलिये (नः गार्हपत्यानि अस्थूरि) हमारे घरके धन अनेक अश्ववाले रथ हों और हम (तिग्मेन तेजसा नः सं शिशाधि) बडे तेजसे युक्त हों ऐसा करो।

१ नः गार्हपत्यानि अस्थूरि— हमारे घर अनेक घोडोंवाले रथोंसे युक्त हों। स्थूरिः-एक घोडेका रथ। अ-स्थूरि- अनेक घोडोंका रथ। एक घोडेकी गाडी रखना दरिद्रताका चिन्ह है। अनेक घोडोंवाले रथ धनवान होनेका चिन्ह है। वैसे रथ हमारे घरके पास रहें। अर्थात् हम बडे धनवान बनें।

१ तिग्मेन तेजसा नः सं शिशाधि— उग्र तेजसे हम युक्त हों। जो शत्रुका पराभव करता है। वह उग्र तेज है। वैसा तेज हमारा हो।

[१] (१२६) हे (अग्ने) अग्नि! तेजस्वी देव! (त्वं मानुषे जने) तू सब मनुष्य लोगोंके बीच (विश्वेषां यज्ञानां होता) सब यज्ञोंको करनेवाला करके (देवेभिः हितः) विबुधोंने यहां रखा है।

१ मानुषे जने विश्वेषां यज्ञानां होता हितः— मानवी समाजमें सब यज्ञोंको कुशलतासे करनेवालेको आदर पूर्वक सम्मानके स्थानमें रखते हैं।

१ विश्वेषां यज्ञानां होता मानुषे जने हितः— सब यज्ञोंको कुशलतासे करनेवाला मानवी समाजमें हितकारी होता है।

२ स नो मन्द्राभिरध्वरे जिह्वाभिर्यजा महः । आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥ १२७ ॥
३ वेत्था हि वेधो अध्वनः पथश्च देवाञ्जसा । अग्ने यज्ञेषु सुक्रतो ॥ १२८ ॥
४ त्वामीळे अध द्विता भरतो वाजिभिः शुनम् । ईजे यज्ञेषु यज्ञियम् ॥ १२९ ॥
५ त्वमिमा वार्या पुरु दिवोदासाय सुन्वते । भरद्वाजाय दाशुषे ॥ १३० ॥

---

१ विश्वेषां यज्ञानां होता, मानुषे जने देवेभिः हितः— सब यज्ञोंको प्रवीणतासे करनेवाला मानवी समाजमें ज्ञानियोंने ही हितकारक करके रखा होता है ।

मानव धर्म— सब यज्ञोंको कुशलताके साथ करनेवाला विद्वान् नेता मनुष्यसमाजमें हितकारी करके दिव्य विबुधोंद्वारा सम्मानके स्थानमें रखने योग्य है ।

यज्ञ वह है कि जिसमें (१) विबुधोंका सत्कार, (२) आपसकी संघटना और (३) न्यूनताकी पूर्ति करनेके लिये दान ये तीन कर्म होते हैं ।

[२] (१२७) हे अग्नि ! (सः नः अध्वरे) वह तू हमारे हिंसारहित यज्ञ कर्ममें (मन्द्राभिः जिह्वाभिः) आनन्द देनेवाली वाणियोंके साथ (महः देवान्) महान् तेजस्वी विबुधोंको (आ वक्षि) बुला के लाओ और (यक्षि च यज) उनके लिये यजन करो और हवन करो ।

मानव धर्म— मनुष्योंको हिंसा तथा कुटिलतारहित कर्म करने चाहिये । उनमें दिव्य विबुधोंको बुलाना चाहिये और उनका संमान करना चाहिये ।

१ मन्द्राभिः जिह्वाभिः— आनंद बढानेवाली जिह्वा अर्थात् आनन्द बढानेवाली वाणी (का प्रयोग मनुष्योंको करना चाहिये ।)

२ महः देवान् आ वक्षि यक्षि च— बडे विबुधोंको बुलाकर उनका सत्कार करो ।

[३] (१२८) हे (वेधः सुक्रतो) निर्माण करनेवाले और अच्छे कर्म करनेवाले (देव अग्ने) दिव्य ज्ञानी तेजस्वी देव ! तू (यज्ञेषु) यज्ञोंमें (अध्वनः पथः च) अच्छे मार्गको और बुरे मार्गोंको (अञ्जसा) अतिशीघ्र (वेत्थ हि) जानता है ।

१ वेधाः सुक्रतुः देवः— निर्माण करनेके कार्यमें विबुध कुशल होते हैं ।

२ अध्वनः पथः च अञ्जसा वेत्थ— अच्छे और बुरे मार्गोंको सत्वर जानना चाहिये । जो यह जानता है वह दिव्य ज्ञानी होता है ।

मानव धर्म— मनुष्य सत्वर अच्छे और बुरे मार्गोंको जाने जो कर्म करता है वह उत्तम कुशलतासे कर ।

वेधा— विधाता निर्माता निर्माण करनेवाला ।

अञ्जस्— गति तथा शीघ्रतासे स्वच्छतासे ।

[४] (१२९) हे अग्नि ! तेजस्वी देव ! (भरतः) भरतने (वाजिभिः) बलवान् पुरुषोंके साथ (द्विता शुनं) दोनों प्रकारके सुखोंके देनेवाले (त्वां) तुम्हारी (ईळे) स्तुति की और (यज्ञियं) यजनीय देवका तुम्हारा (यज्ञेषु ईजे) यज्ञोंमें यजन किया ।

१ भरतः वाजिभिः द्विता शुनं त्वां ईळे— भरण पोषण करनेवाला पुरुष अन्य बलवान् मनुष्योंके साथ दोनों प्रकारके सुख देनेवाले तुझ विबुधके गुण गाता है । विबुधके गुणोंका वर्णन करता है । (भरतः) दूसरोंका भरणपोषण करनेवाला पुरुष (वाजिभिः) अन्नवाले पुरुषोंके साथ रहकर दोनों प्रकारके सुखोंको देनेवाले विबुधके गुण वर्णन करता है ।

२ यज्ञियं यज्ञेषु ईजे— सत्कारके योग्य वीरका सत्कार यज्ञमें करता है । यजनीयका यज्ञोंमें यजन करता है ।

भरतः— भरणपोषण करनेवाला भारत देशका रहनेवाला ।

वाजी— बलवान्, अन्नवान् । शुनं— सुख अभ्युदय कल्याण ।

द्विता— दो प्रकारका ऐहिक पारमार्थिक शारीरिक-मानसिक भौतिक-आत्मिक ।

मानव धर्म— भरणपोषण करनेवाला पुरुष अनेक अन्नवान् और बलवान् पुरुषोंके साथ मिलकर भौतिक और आत्मिक सुख देनेवाले नेताकी प्रशंसा करे और सत्कारके योग्य पुरुषोंका सत्कार करे ।

[५] (१३०) हे अग्नि ! तेजस्वी देव ! (त्वं) तुमने (इमा) ये (पुरु) बहुतसे (वार्या) स्वीकारणीय धन (सुन्वते दिवोदासाय) सोमवाले दिवोदासको दिये वैसे (दाशुषे भरद्वाजाय) दाता भरद्वाजको देओ ।

२४ ता राजाना शुचिव्रताऽऽदित्या मारुतं गणम् । वसो यक्षीह रोदसी ॥ १४९ ॥
२५ वस्वी ते अग्ने सन्दृष्टिरिषयते मर्त्याय । ऊर्जो नपादमृतस्य ॥ १५० ॥
२६ क्रत्वा दा अस्तु श्रेष्ठोऽद्य त्वा वन्वन्त्सुरेक्णाः । मर्त आनाश सुवृक्तिम् ॥ १५१ ॥
२७ ते ते अग्ने त्वोता इषयन्तो विश्वमायु ।
तरन्तो अर्यो अरातीर्वन्वन्तो अर्यो अराती ॥ १५२ ॥
२८ अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यासद्विश्वं न्यत्रिणम् ।
अग्निर्नो वनते रयिम् ॥ १५३ ॥

(न हव्यवाहनः दूतः) हविष्यान्न वहन करनेवाला दूत होता है। (स हि सीदतु) वह अग्नि यहां आकर बैठें।

१ होता कविक्रतुः— मनुष्य विद्वानोंको बुलाने और आदर्श ज्ञानी तथा कुशलतासे कर्म करनेवाला हो।

[२४] (१४९) हे (वसो) धनवान् ! (रोदसी) द्यावापृथिवीका (ता राजाना शुचिव्रता) उन प्रसिद्ध, तेजस्वी पवित्र कर्म करनेवाले मित्रावरुण नामक राजाओंका (आदित्यान् मारुतं गणं) आदित्योंका और मरुतोंके समूहोंका (इह) इस यज्ञमें (यक्षि) यजन कर। इनका सत्कार कर।

१ राजाना शुचिव्रता— राजालोग शुद्ध आचरण करनेवाले हों।

[२५] (१५०) हे (ऊर्जो न पात् अग्ने) बलको न गिरानेवाले अग्नि ! (ते अमृतस्य) तुम मरणरहितकी (संदृष्टिः) उत्तम दृष्टि (इषयते मर्त्याय) अन्नादिकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले मनुष्यके लिये (वस्वी) धन देनेवाली होती है।

१ ऊर्जो न पात्— अपने बलको अवनति न करे,

२ स दृष्टिः इषयते मर्त्याय वस्वी— उत्तम दृष्टि मनुष्यको धन देनेवाली हो।

[२६] (१५१) (अद्य) आज ही (क्रत्वा त्वा वन्वन् दाः) कर्म द्वारा तेरी सेवा करनेवाला और दान देनेवाला मनुष्य (श्रेष्ठः सुरेक्णा अस्तु) अत्यन्त श्रेष्ठ और उत्तम धनोंसे युक्त हो। तथा (मर्त सुवृक्तिं आ अनाश) वह मनुष्य उत्तम भाषण करनेवाला हो।

१ दाः क्रत्वा वन्वन् श्रेष्ठः सुरेक्णाः अस्तु— दाता मनुष्य अपने कर्मसे सेवा करनेवाला श्रेष्ठ तथा उत्तम धनधान्य संपन्न हो।

१ मर्तः सुवृक्तिं आ-अनाश— मनुष्य उत्तम भाषण करे।

मानव धर्म— मनुष्य दान देवे कर्म द्वारा सेवा करे तथा श्रेष्ठ धनधान्यसंपन्न हो। मनुष्य उत्तम भाषण करे। मनुष्यके मुखमें उत्तम वचन रहे।

[२७] (१५२) हे (अग्ने) अग्नि ! (ते ते) वे तेरे भक्त (त्वोताः विश्वं आयुः इषयन्त) तेरेसे सुरक्षित होकर पूर्ण आयुतक अन्नादि भोगोंको प्राप्त करते हैं। और (अर्यः अरातीः तरन्तः) शत्रुकी आक्रमणकारी सेनाको पराजित करते हैं। (अर्यः अरातीः वन्वन्तः) और आक्रमणकारी शत्रुओंका नाश करते हैं।

१ ते त्वोताः विश्वं आयुः इषयन्तः— वे तेरे द्वारा सुरक्षित होकर संपूर्ण दीर्घ आयुतक अन्नादि भोग प्राप्त करते हैं।

२ अर्यः अरातीः तरन्तः— शत्रुकी सेनाको पार करते हैं।

३ अर्यः अरातीः वन्वन्तः— शत्रुसेनाका नाश करते हैं।

४ अरातीः— अराता अनुसार शत्रुकी आक्रमणकारी सेना।

मानव धर्म— मनुष्य ऐसा यत्न करे कि जिससे वे अपनी पूर्ण आयुतक अन्नादि सब भोग प्राप्त करके आनन्दसे रहें, शत्रुके आक्रमणोंको दूर करें और विजय प्राप्त करें।

[२८] (१५३) (अग्निः) अग्नि ! (तिग्मेन शोचिषा) अपने तीक्ष्ण तेजसे (विश्वं अत्रिणं) सब दुष्ट राक्षसोंका (नि यासत्) नाश करता है। और (नः अग्निः रयिं वनते) हमको अग्नि धन देता है।

*

२४ अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्द्रविणस्युर्विपन्यया । समिद्धः शुक्र आहुत ॥ १५९ ॥
२५ गर्भे मातुः पितुष्पिता विदिद्युतानो अक्षरे । सीदन्नृतस्य योनिमा ॥ १६० ॥
२६ ब्रह्म प्रजावदा भर जातवेदो विचर्षणे । अग्ने यद्दीदयद्दिवि ॥ १६१ ॥
२७ उप त्वा रण्वसंदृशं प्रयस्वन्तः सहस्कृत । अग्ने ससृज्महे गिरः ॥ १६२ ॥
२८ उप च्छायामिव घृणेरगन्म शर्म ते वयम् । अग्ने हिरण्यसंदृशः ॥ १६३ ॥
२९ य उग्र इव शर्यहा तिग्मशृङ्गो न वंसग । अग्ने पुरो रुरोजिथ ॥ १६४ ॥

---

[२४] (१५९) (विपन्यया) स्तोत्रोंके साथ (आहुतः समिद्धः) हवन होनेके कारण प्रदीप्त और (शुक्रः अग्निः) पवित्र तेजवाला अग्नि (द्रविणस्युः) धन देनेकी इच्छा करता हुआ (वृत्राणि जङ्घनत्) राक्षसादि शत्रुओंका नाश करे ।

[२५] (१६०) (मातुः गर्भे अक्षरे) माता पृथ्वीके बीच स्थानकी अविनाशी वेदीमें (विदिद्युतानः) प्रकाशनेवाला (पितुः पिता) पिताका पिता (ऋतस्य योनिं) यज्ञकी वेदी-पर (आ सीदन्) आकर बैठता है ।

अग्नि पुत्र है उसकी माता पृथिवी है । पृथिवीका पुत्र अग्नि है । पृथिवीका पति द्युलोक है । द्यावापृथिवी ये दो परस्पर मिले माता पिता हैं । यह अग्नि पिताका भी पिता है । द्युलोकका भी पिता मूल अग्नितत्त्व है । मूल अग्निका सत्त्व केन्द्र सूर्यमें हुआ है । सूर्यसे पृथ्वीपरका अग्नि जन्मा है । इससे यह दाता है ।

[२६] (१६१) हे (जातवेदः विचर्षणे अग्ने) सब पदार्थोंको जाननेवाले विशेष द्रष्टा अग्ने ! (यत् दिवि दीदयत्) जो द्युलोकमें प्रकाशित होता है वह (प्रजावत् ब्रह्म आ भर) पुत्रपौत्र देनेवाला अन्नरूपी धन हमें भरपूर भर दो।

१ प्रजावत् ब्रह्म आ भर— पुत्रपौत्रोंको बढानेवाला ज्ञान हमें चाहिये । अन्न भी ऐसा चाहिये जिससे वीर्यवान् पुत्र पौत्र उत्पन्न हो सकते हैं । ब्रह्म ज्ञान अन्न ।

[२७] (१६२) हे (सहस्कृत अग्ने) बलयुक्त अग्ने ! (प्रयस्वन्तः) अन्न देनेवाले हम लोग (रण्वसंदृशं) देखनेमें रमणीय ऐसे (त्वा गिरः) तेरे समीप स्तुति (उप ससृज्महे) करते हैं ।

सहस्+कृतः— बल बढानेवाला, शत्रुका पराभव करनेका सामर्थ्य निर्माण करनेवाला ।

रण्व+संदृशः— रमणीय दर्शन जिसका है । सुन्दर, रमणीय ।

प्रयस्+वान्— अन्नवाला प्रयत्नशील ।

१ प्रयस्वन्तः रण्वसंदृशं गिरः उप ससृज्महे— अन्नदान करनेवाले हम सब रमणीय ज्ञानी पुरुषकी प्रशंसा अपनी वाणीसे करते हैं ।

[२८] (१६३) हे (अग्ने) अग्नि ! (हिरण्यसंदृशः घृणेः) सुवर्णके समान कान्तिमान् तथा दीप्तिमान् (ते) तेरे समीप (उप अगन्म) हम प्राप्त होते हैं और (छायां इव शर्म) छायामें जैसा सुख मिलता है । उस प्रकार तेरे समीपमें हमें सुख मिलता है ।

१ छायां शर्म इव— धूपमें तपा हुआ मनुष्य जैसा छायामें आकर सुखका अनुभव करता है वैसा सुख तेजस्वी नेताके समीप अनुयायीको प्राप्त होता है । इसलिए कहा है—

१ हे अग्ने ! हिरण्यसंदृशः घृणेः ते उप अगन्म— हे अग्ने ! हे अग्रणी ! सुवर्ण जैसे तेजस्वी नेताके पास हम जाते हैं । और सुखका अनुभव करते हैं ।

तेजस्वीके पास जानेसे अन्धकारका भय दूर होता है । ज्ञानीके पास जानेसे अज्ञानका भय दूर होता है ।

[२९] (१६४) (यः) जो (उग्रः इव शर्यहा) शूरवीरकी तरह बाणोंसे शत्रुओंका नाश करनेवाला (तिग्मशृङ्गो न) तीक्ष्ण सींगवाले बैलकी तरह हे (अग्ने) अग्ने ! तू (पुरः रुरोजिथ) शत्रुओंकी तीन पुरियोंका नाश करता है ।

१ उग्रः शर्यहा पुरः रुरोजिथ— शूरवीर अपने बाणोंसे शत्रुकी नगरियोंको तोड देता है।

४० आ यं हस्ते न खादिनं शिशुं जातं न बिभ्रति । विशामग्निं स्वध्वरं ॥ १६५ ॥
४१ प्र देवं देववीतये भरता वसुवित्तमम् । आ स्वे योनौ नि षीदतु ॥ १६६ ॥
४२ आ जातं जातवेदसि प्रियं शिशीतातिथिम् । स्योन आ गृहपतिम् ॥ १६७ ॥
४३ अग्ने युक्ष्वा हि ये तवाऽश्वासो देव साधवः । अरं वहन्ति मन्यवे ॥ १६८ ॥
४४ अच्छा नो याह्या वहाऽभि प्रयांसि वीतये । आ देवान्त्सोमपीतये ॥ १६९ ॥
४५ उदग्ने भारत द्युमदजस्रेण दविद्युतत् । शोचा वि भाह्यजर ॥ १७० ॥

---

[४०] (१६५) (शिशुं जातं न) नवजात बालकको जैसे (हस्ते आ बिभ्रति) हाथमें धारण करते हैं। अथवा (खादिनं न) हिंस्र प्राणीको जैसे सावध रहकर हाथसे पकडते हैं वैसे (विशां स्वध्वरं अग्निं) मनुष्योंके यज्ञके निष्पादक इस अग्निकी सेवा यत्नसे करो।

१ जातं शिशुं न हस्ते आ बिभ्रति— नवजात बच्चेको जैसे हाथसे सावधानीसे पकडते हैं।

२ खादिनं न हस्ते आ बिभ्रति— क्रूर हिंस्र पशुको जिस तरह सावध रहकर पकडते हैं।

३ विशां स्वध्वरं अग्निं— इस तरह मनुष्य सावधान रहकर इस अग्निकी सेवा करनी चाहिये।

मानव धर्म— नवजात बालकको सावधानताके साथ पकडना चाहिये नहीं तो उसको दुःख होगा। तथा व्याघ्र आदि हिंस्र प्राणीको सावध रहकर पकडना चाहिये नहीं तो वह मारनेको ही धाव देगा।

पहिली सावधानता बच्चेको संभालनेकी है और दूसरी सावधानता अपनी सुरक्षा करनेके लिये है।

[४१] (१६६) (देवं वसुवित्तमं) दीप्तिमान् और धनोंको प्राप्त करनेवाले अग्निको (देववीतये) देवोंको देनेके लिये (प्र भरत) अच्छा भरण करो। वह अग्नि (स्वे योनौ) अपनी वेदीके स्थानमें (आ नि षीदतु) आकर बैठे।

[४२] (१६७) (जातं अतिथिं) आये अतिथिके समान (प्रियं) प्रिय (जातवेदसि) परमात्माको (आ शिशीत) स्थापित करो। और (गृहपतिं स्योने) घर देनेवाले सुखकर आसनमें आदरपूर्वक अर्पण करो।

अतिथि- (अतति) जो गतिमान् है। अतिथिके समान पूज्य है।

प्रथम अग्निको स्थापन करो पश्चात् उसको प्रदीप्त करो और पश्चात् उसमें हवन करो।

अतिथि आनेपर उसको प्रथम आसनपर बिठाओ और उसको प्रसन्न करो तत्पश्चात् उसको खानेके लिये अन्न समर्पण करो।

[४३] (१६८) हे (देव अग्ने) प्रकाशमान् अग्ने! (ये तव साधवः अश्वासः) जो तेरे उत्तम घोडे अश्व हैं उनको (युक्ष्व) जोड दे (मन्यवे हि अरं वहन्ति) यज्ञके प्रति जानेके लिये तुझे इच्छानुसार वहन कर सकते हैं।

१ साधवः अश्वासः युक्ष्व— उत्तम शिक्षित घोडे रथको जोडने चाहिये। अशिक्षित घोडे रथको गढेमें फेंक देंगे।

२ मन्यवे अरं वहन्ति- इच्छानुसार जो रथको चलाते हैं वे घोडे उत्तम हैं।

[४४] (१६९) हे अग्ने! (नः अच्छ याहि) हमारे पास आओ। (प्रयांसि देवान् वीतये सोमपीतये) अन्नोंके विबुधोंको देनेके लिये सोमपानके समय (आ वह) ले चलो।

[४५] (१७०) हे (भारत अग्ने) भरणपोषण करनेवाले अग्नि! (उत् शोच) ऊर्ध्व गतिसे जानेवाली ज्वालाओंसे प्रकाशित हो। हे (अजर) वृद्धावस्थासे रहित! (दविद्युतत्) अत्यन्त प्रकाशमान तू (द्युमत्) कान्तिमान् होकर (अजस्रेण) अविच्छिन्न तेजसे (वि भाहि) अच्छी तरहसे प्रकाशित हो।

१ भारत! उत् शोच- हे भरण करनेवाले हितकारी! अपने तेजसे प्रकाशित हो।

२ दविद्युतत् द्युमत् अजस्रेण वि भाहि— तेजस्वी

४६ वीती यो देवं मर्तो दुवस्येदग्निमीळीताध्वरे हविष्मान् ।
होतारं सत्ययजं रोदस्योरुत्तानहस्तो नमसा विवासेत् ॥ १७१ ॥

४७ आ ते अग्न ऋचा हविर्हृदा तष्टं भरामसि ।
ते ते भवन्तूक्षण ऋषभासो वशा उत ॥ १७२ ॥

४८ अग्निं देवासो अग्रियमिन्धते वृत्रहन्तमम् ।
येना वसून्याभृता तृळ्हा रक्षांसि वाजिना ॥ १७३ ॥

और प्रकाशित होकर प्रचण्ड तेजसे उत्तम रीतिसे प्रकाशित हो जाओ ।

[४६] (१७१) (यः हविष्मान् मर्तः) जो हविर्द्रव्यसे युक्त मनुष्य (वीती देवं) कान्तिमान् होकर देवकी (दुवस्येत्) परिचर्या करता है उस (अध्वरे) हिंसारहित यज्ञमें (रोदस्योः) द्यावापृथिवीमें (होतारं सत्ययजं अग्निं) वर्तमान यथोचित पुरुषार्थसे सत्यरीतिसे यजन करनेवाले अग्निकी (ईळीत) स्तुति गावे । और (उत्तानहस्तः) हाथ उठाकर (नमसा) नमस्कारसे (आ विवासेत्) सेवा करे ।

१ उत्तानहस्तः नमसा आविवासेत्- हाथ उठाकर नमस्कार करके सेवा करे । हाथ उठाकर नमस्कार करना चाहिये। ऊपर किये हाथका नाम उत्तानहस्त है । जिस आसनसे आवाहन करते हैं उस हथेलीको ऊपर उठाकर नमस्कार करना ऐसा भी भाव यहाँ दीखता है ।

१ मर्तः देवं दुवस्येत्— मनुष्य देवकी सेवा करे ।

[४७] (१७२) हे (अग्ने) अग्नि ! (ते हृदा ऋचा तष्टं हविः) तुझे अन्तःकरणपूर्वक मंत्रोंसे संस्कार किया अन्न (आ भरामसि) हम देते हैं । (ते) तेरे लिये (उक्षणः ऋषभासः) बलवान् समर्थ बैल (उत वशाः) और गौ अन्न देनेवाले (भवन्तु) हों ।

१ ते हृदा ऋचा तष्टं हविः आ भरामसि तेरे लिये अन्तःकरणपूर्वक मंत्रोंद्वारा सुसंस्कृत अन्न अर्पण करते हैं । इस तरह हवि अर्पण करना चाहिये ।

१ ते उक्षणः ऋषभासः उत वशाः भवन्तु- तेरे लिये बलवान् बैल और गायें अन्न देनेवाली हों । बैल अन्न उत्पन्न करते हैं । बैल हल चलाते हैं उससे धान उत्पन्न होता है । वह हवि है । गौ दूध घी देती है वह हवि होता है । इस तरह बैल और गाय अग्निको हवि देते हैं ।

[४८] (१७३) (येन वाजिना रक्षांसि तृळ्हा) जिस बलवान्ने राक्षसोंका नाश किया और जिस अग्निने (वसूनि आभृता) धन लाकर भर दिये हैं । उस (अग्रियं वृत्रहन्तमं अग्निं) अग्रेसर, मुख्य शत्रुनाशक अग्निको अमरोंके (देवासः) विद्वान लोग (इन्धते) प्रदीप्त करते हैं प्रज्वलित करते हैं और उसमें हवन करते हैं ।

१ वाजिना रक्षांसि तृळ्हा- बलवान् वीर राक्षसोंका नाश करता है ।

१ येन वाजिना वसूनि आभृता— बलवान् वीरने धनोंको लाकर भर दिया है ।

१ देवासः अग्रियं अग्निं इन्धते— देव अग्रगामी अग्निको प्रदीप्त करते हैं [और उसमें हवन करते हैं ।]

॥ अग्नि सूक्त समाप्त ॥

शत्रुको दूर करनेका सामर्थ्य भी हो और ज्ञान भी हो। केवल बल ही न हो पर बलके साथ विद्या भी हो।

सौंदर्य

जिसमें ज्ञान पवित्रता और बल रहता है उसकी आकृति उन गुणोंके कारण सुंदर दीखती है। यह सौंदर्य ज्ञानके, पवित्रताके और बलके कारण दीखता है। ज्ञानका तेज पवित्रताकी कान्ति और बलका प्रभाव जहां मिलेगा वहां सौंदर्य निःसंदेह दीखेगा। इसका वर्णन इस तरह मन्त्रोंमें हुआ है—

१ दस्मः (६।१।१)– दर्शनीय सुन्दर रूपवान्

३ दर्शतः (६।१।३)– सुन्दर दर्शनीय

२८ वर्पः महि मसत् (६।२।४)— शरीर महान् तेजस्वी होता है, सुशोभित रूपवाला होता है—

१७ वसतिः यमेव्याः कृत्या चित् रण्वाः (६।३।१) वह मनुष्योंके नगरोंमें रहा अथवा वनमें रहा तो भी वह वहां भी रहे रमणीय ही दीखता है, सुंदर ही दीखता है। घरमें और अरण्यमें वह समान रीतिसे शोभता है।

४१ श्वितामः (६।६।२)– सुन्दर गौर वर्णवाला वह है। वर्ण गौर हो या गव्हमी हो पर उसपर चमक भरपूर हो। यह आरोग्यकी चमक है। यह सौंदर्य बढाती है।

मित्रता

जो नेता ज्ञानी बलवान् पवित्र शूर और सुन्दर हो तेजस्वी हो उसके साथ मित्रता करना एक आनन्दका विषय है। प्रत्येक चाहेगा कि ऐसा मित्र हमें मिले इसके साथ हमारी मित्रता हो। इसलिये इस नेताके वर्णनमें मित्रताका भी वर्णन है।

१७ मित्रः (६।८।३)– वह उत्तम मित्र होता है

११ मित्रो न बृहत ऋतस्य क्षत्ता असि (६।१३।२)- वह मित्रके समान बडे सत्य मार्गका प्रवर्तक होता है।

२४ मित्र-महः (६।२।११)— मित्रकी महत्ता उसमें रहती है। उसके मित्र होनेसे अपना भी सन्मान बढता है।

१५ मित्रेण सजोषाः (६।३।१)– मित्रके साथ समान विचार रखता है। मित्रके साथ विरोध नहीं करता।

सुदृढ

ऐसा शुभगुणयुक्त नेता विश्वर्षणिः (६।५।१)–विशेष द्रष्टा होता है। वह सोचता है और सभी बातोंको यथायोग्य देखता है। इसलिये उसको कोई ठगा नहीं सकता।

१४ यः मर्त्येषु उपर्बुध् भूत् (६।४।२)– वह मानवोंमें उषःकालमें उठनेवाला होता है। ज्ञानी प्रातःकालमें उठता है।

पूज्य

जो ज्ञानी शूर, बलवान्, पवित्र मैत्री करनेयोग्य सुंदर होगा वह निःसंदेह पूज्य माना जायगा। इस कारण अग्निरूप अग्रणीके वर्णनमें ये पद आते हैं—

८ यजतः– (६।१।८)– यजनीय पूजनीय।

२१ यज्ञः (६।४।४)– वंदनीय नमस्कारके योग्य वर्णनीय

२० प्रियः अतिथिः (६।२।७) जातः अतिथिः (६।१६।४२)– प्रिय अतिथिके समान पूजनीय आदरणीय

९ सपर्येण्यः (६।१।६)–पूजा करनेयोग्य सत्कार करने योग्य 'मन्द्र यजीयान्' आनन्ददायक पूज्य विशु प्रियः –प्रजाओंमें प्रिय।

११९ यः देवानां उत मर्त्यानां यजिष्ठः (६।१५। १३)– जो देवों और मानवोंके लिये पूजाके योग्य आदर करनेके लिये योग्य

११२ विश्वेभिः देवैः ऊर्णावन्तं योनिं प्रथमः सीद (६।१५।१६)– सब देवोंके साथ उनके आसनपर आ प्रथम स्थानमें बैठता है। सभामें प्रमुखस्थानमें जो बैठता है।

११० महिमा विभूः– अपनी महिमासे वैभवसंपन्न होता है अपने महत्त्वके कारण जो सर्वत्र माननीय होता है।

७ ईड्यः (६।१।२)– जो प्रशंसा करनेयोग्य है, स्तुतिके लिये जो योग्य है।

७ नम्यः (६।१।७)– स्तुति करनेयोग्य सन्मानके साथ वर्णन करनेयोग्य

१३ पुरुवार (६।१।१३) बहुतोंद्वारा वरण करने योग्य

१० रेभः (६।३।६)– वर्णन करनेयोग्य काम्य करनेयोग्य

५८ नव्यसा वचेन गातु (६।६।१)– नवीन वर्णनीय स्तोत्रके द्वारा यशका गान करने योग्य

४१ अद्रोघवाच (६।५।१)– जिसमें द्रोह नहीं है ऐसी वरिष्ठ पवित्र वाणीसे प्रशंसा करनेयोग्य है।

इस प्रकार यह अग्रणी वर्णनके योग्य है पवित्र है पूज्य है, वन्दनीय है।

रक्षक निर्माण किया है। वह रक्षण करे और शत्रु दूर करे। यहां अग्निको (पा-यु) रक्षण करनेवाला कहा है।

तेजस्विता

अग्निके तेजस्वी होनेमें किसीको भी संदेह नहीं हो सकता पर तेजस्वी जो मनुष्य भी होते हैं वह वीर कैसा तेजस्वी है ऐसा वर्णन किया जाता है इस तरहके वर्णन अब देखिये—

१ यज्ञम् (६।१।१); ८ राजन् (६।१।८); १४ वेधाः (६।२।११); १७ सूरः (६।३।३); ये सब वर्णनके पद उसकी तेजस्विताका वर्णन कर रहे हैं।

३ चित्रभानुः दीदिवान् (६।१।३)— सदा प्रकाशमान

६ दमे दीद्यमानः (६।१।६)— अपने परम प्रकाशने-वाला इस 'दम' का अर्थ स्थान है वैसे यज्ञस्थान पर ग्राम घर आदि ये सब दम ही हैं। जिस शब्द पर का प्रयोग किया जाता है, वैसा ही दम का भी उसी अर्थमें प्रयोग होता है।

७ बृहता रोचनेन दीद्यानः (६।१।७) बडे तेजसे तेजस्वी बना है।

११ बृहद्भिः वाजैः स्थविरेभिः रेवद्भिः चित्रर्द्धि माहि (६।१।११)— विशाल बलोंके साथ तथा विशेष धनोंके साथ निरंतर प्रकाशित होता रह।

१९ सूरः न रुपा युता रोचसे (६।२।६)— सूर्यके समान कान्तिसे और तेजसे प्रकाशित होता है।

२० उषाः प्रतिवस्ते (६।३।६)— अपने तेजकी चमत्कारका धारण करता है।

२० शोचिषा रारपीति (६।३।६)— अपने तेजसे बारंबार प्रकाशित होता है।

३१ क्षभ्रुः न स्वेनः रमसानः भयात् (६।३।८)— तेजस्वी मृगके समान यह अपने तेजसे प्रकाशित होता है।

३४ यस्तोः भासति न विभाया (६।४।२ — दिनके प्रकाशके समान यह प्रभावशाली है।

३९ सूर्यो न शुक्रः भासांसि वस्ते (६।४।३)— सूर्यके समान यह तेजस्वी है और तेजस्वितादिका धारण करता है।

३९ मद्रतः पावकः वि दुनोति (६।४।३) यह बारंबार पवित्रता करनेवाला विशेष तेजसे देखता है।

३७ यः पारप्य मितिपिष्ठ (६।४।५)— यह निवारण करनेयोग्य शत्रुको अपने तेजसे क्षीण करता है।

३८ रोदसी भासा वि भा ततन्थ (६।४।६)— द्यावा पृथिवीको अपने तेजसे व्यापता है।

भानुमद्भिः अर्कैः सूर्यो न (६।४।६)— तेजस्वी किरणोंसे सूर्यके समान प्रकाशता है।

४१ मंद्रियः (६।५।१)— तेजस्वी, ४४ तपिष्ठः (६।५।४) तपनेवाला तपसा तपस्वान्— अपने तेजसे तेजस्वी बना है।

६१ शुम्भतु विश्वानरः महिमा नाकं अस्पृशत् (६।८।२)— सत्कर्मकर्ता नेता अपनी महिमासे द्युलोकको स्पर्श करता है। प्रकाशता है।

७९ यः दूरेदृशा भासा कृष्णा भाप्यो (६।१।४)— यह दूरदर्शी वीर अपने तेजसे विस्तीर्ण द्यावापृथिवीको भर देता है।

९१ यस्य भरतिः तेजिष्ठा (६।१२।३) जिसकी गति तेजस्वी होती है।

रमन् चेतति— वह स्वयं प्रकाशित होता है।

९६ दक्षपत्याः (६।१३।२) [?] तेजवाला है।

१११ यः पावकया चितयन्त्या कृपा क्षामन् रुरुचे (६।१५।५)— जो पवित्र और ज्ञान बढानेवाली कान्तिसे प्रकाशमान होता है।

११० पावकशोचिः (६।१५।१४)— जिसका प्रकाश पवित्रता करनेवाला है।

१४१ प्रत्नवत् नवीयसा धाम्ना संयता भानुना बृहत् ततन्थ (६।१६।२१)— तू प्राचीनके समान नवीन तेजसे स्थापित प्रकाश बहुत प्रकाशित होता है।

१५३ हिरण्य-संदृशः (६।१६।३८)— सुवर्णके समान रमणीय और तेजस्वी।

१७० द्यविद्युतत् शुमन् अजस्रेण पिभाहि (६।१६। ४५) तेजस्वी प्रकाशमान अविच्छिन्न तेजसे प्रकाशित हो।

इस रीतिसे इसकी तेजस्विताका वर्णन है। नेता और तेजस्वी हो यह इसका तात्पर्य है।

युवा

अग्नीको नेता माना जैसा रहे। आयुसे चाहे वृद्ध हो, पर विचारोंमें वह तरुण बना हो वर्म भी तरुण जैसे करे, इस विषयमें अग्निके वर्णनमें देखिये—

४१ युवा (१।५।१); ४० अजरः (१।२।९)- जरा रहित; १४ अमृतः (१।४।२)- अमर, न मरनेवाला; ४१ यविष्ठः (१।५।१)- तरुण, ११६ यविष्ठयः (१।११।११)- अत्यंत तरुण; ४९ अजरेभिः भानवद्भिः यविष्ठः (१।६।२) जरारहित परंतु प्रकाश करनेवाले कर्मोंसे युक्त अत्यंत तरुण

६० अमृतस्य केतुः (१।७।६)- यह अमरत्वका ध्वज जैसा है

७२ मर्त्येषु इदं अमृतं ज्योतिः (१।९।४)- मर्त्योंमें यह अमरज्योति है।

इस तरह इसका युवा होनेका वर्णन है।

यशस्वी

यह अपनी बलवान्, ज्ञानी प्रभुत्व पराक्रम करनेवाला है, युवा जैसा कर्म करता है इस कारण यह यशस्वी होता है देखिये—

११ श्रवोभिः श्रवस्यः (१।१।११)- यह यशोंको प्राप्त करनेसे यशस्वी तथा कीर्तिमान् है।

१४ त्वं हि क्षैतवत् यशः मित्रो न पत्यसे (१।२।१)- तू निश्चयपूर्वक मनुष्योंके साथ रहकर मित्रके समान यश प्राप्त करता है।

पूर्वोक्त गुणगुण जिसके पास होंगे वह यश प्राप्त करेगा इसमें कोई संदेह ही नहीं है।

गतिमान्

गतिमान चपल अथवा स्फूर्तिसे काम करनेवाला यह भी एक गुण नेतामें चाहिये। इस विषयके वर्णन अब देखिये—

२१ वाजी न कृत्व्यः (१।३।८)- घोडेके समान चौकन्नाईके साथ कर्म करनेवाला घोडा जैसा शीघ्र जाता है वैसा यह नेता शीघ्र कर्म करता है

२१ परिज्मा (१।३।८)- चारों और घूमनेवाला चपल स्फूर्तिवाला

२२ अत्यः न ह्वार्यः (१।३।८) कुटिलचालके घोडेके समान शीघ्र गतिवाला

४८ अस्य एम तिग्मं (१।३।४)- इसका मार्ग अत्यंत तेजस्वी और तीक्ष्ण है।

२९ चित्रभ्राजतिः (१।३।५)- यह विलक्षण स्फूर्ति वाला है।

५४ पृथिव्यां भराती (१।७।१)- पृथ्वीपर यह और भ्रमण करता है।

५५ जनासां अतिथिः (१।७।१)- लोगोंमें पूजनीय होकर भ्रमण करनेवाला है।

७१ भ्रव मनः जविष्ठः (१।९।५)- स्थिर होनेपर भी मनसे अत्यंत वेगवान् है।

९४ भर्वम् (१।११।६)- यह गतिमान् है

९६ परिज्मा इव क्षयसि (१।१२।२)- वायुके समान यह वेगवान् होकर रहता है।

यह वर्णन इसके वेगका इसकी स्फूर्तिका है। नेतामें इस तरह स्फूर्ति होनी चाहिये यह इसका तात्पर्य है।

उत्तम कर्मोंका कर्ता

अग्निका वर्णन करनेके समय यह उत्तम कर्मोंका कर्ता करके कवि वर्णन करता है और इस कारण उसके गुण भी कहा है। जो ज्ञानी सभी अनुष्ठान करनेवाला उत्तम नेता है वह उत्तम कर्म करनेवाला होना ही चाहिये। यह उत्तम कर्म न करेगा यह किस तरह नेता हो सकता है। अर्थात् ये सब गुण सहचारी गुण हैं। अब इसके उत्तम कर्म करनेके विषयमें यहां देखिये—

२८ तव क्रतुभिः अमृतत्व मायन् (१।७।४)- तेरे उत्तम कर्मोंसे अमरत्व प्राप्त करते हैं।

५९ तव तानि महानि व्रतानि न किः आदधर्ष (१।७।५)- तेरे उन महान् कर्मोंमें कोई बाधा नहीं डाल सकता।

६१ अदब्धः गोपाः अमृतस्य रक्षिता (१।७।७)- यह न दबनेवाला सबका रक्षण करनेवाला अमरत्वका रक्षण करनेका कर्म करता है।

११८ सुक्रतुः (१।१६।३)- यह उत्तम कर्म करनेवाला है।

१३१ त्वं दैव्यं जन्म विप्रस्य सुष्टुतिं शृण्वन् आवह (१।१६।६)- तू विद्वानोंके ज्ञानीकी उत्तम स्तुति सुननेके लिये ले जा।

१३३ त्वं मनुर्हितः (१।१६।९)- तू मनुष्योंके हित करनेके कर्म करता है।

१४४ भारतः (१।१६।१९)- भारतीयोंका तू हित करनेवाला है।

१४८ कविक्रतुः मानुषा युगा (१।१६।२२)- यह ज्ञानी और शुभ कर्म करनेवाला मानवी युगोंका निर्माता है।

श्रेष्ठ मनुष्योंके गुणधर्म

भरद्वाज ऋषिके अग्नि मंत्रोंमें श्रेष्ठ मनुष्योंके गुणोंका निर्देश है यह वर्णन अब देखिये—

१ देवयन्तः नरः (६।१।२)– देव बननेकी इच्छा करनेवाले लोग। देवोंके जैसा आचरण करनेवाले लोग। ये श्रेष्ठ लोग कहलाते हैं। वेदोंमें देवोंका जो वर्णन है वह वर्णन देखकर मनुष्य वे गुणधर्म अपनेमें ढालनेका प्रयत्न करें और देवोंके शुभ गुणोंसे युक्त बनें।

२ जागृवांसः रयिं अनुग्मन् (६।१।२)– जागनेवाले लोग धन प्राप्त करते हैं। जो जागते नहीं अर्थात् जो दक्ष नहीं रहते वे धन नहीं प्राप्त कर सकते।

१ महः राये चितयन्तः त्वा अनुग्मन् (६।१।२)– बड़े धनकी प्राप्तिके लिये ज्ञानी होकर तेरा अनुसरण करते हैं। प्रथम ज्ञानी बनना और पश्चात् देवत्वका अनुसरण करना चाहिये।

१२ अध्रुक्‌ दमूनाः विश्वचर्षणिः वाजी रथी याति (६।१२)– हिंसारहित कर्म करनेवाला लोगोंका तारण करनेवाला सर्वद्रष्टा बलवान् वीर रथसे चला जाता है। मनुष्य क्रूर न बने तारक बने सब ज्ञान प्राप्त करे बलवान् बने और रथमें बैठकर जावे उसके समान बने।

१५१ मर्तः सुवृक्ति भः अमाय (६।१६।२६)– मनुष्य उत्तम भाषण करनेवाला तुम्हारे पास आ जाय। मनुष्य उत्तम काव्य करे और गावे।

७ सुप्यः सुम्नायवः देवयन्तः यथ त्वा ईमहे (६।१।७)– उत्तम बुद्धिवान् उत्तम मनवाले देवत्वका विचार अपने अन्दर करनेवाले हम तेरी भक्ति करते हैं।

७ विशः विशः अमयः— यह प्रजाओंको सर्वोंको पहुँचाता है।

इस तरह मनुष्य उत्तम हों।

मनुष्य तेजस्वी हो

१५ देवयुः ते उरु ज्योतिः महान्‌ (६।१।१)– देवत्व प्राप्त करनेका इच्छुक तेरा महान् तेज प्राप्त करता है। जो देवत्व प्राप्त करना चाहता है वह अपने अन्दर महान् तेज धारण करे।

१०५ तिग्मेन तेजसा नः संशिशाधि (६।१५।१९)– अपने तीक्ष्ण तेजसे हमें सुतीक्ष्ण कर। हमारे अन्दर उत्तम तेज बढे ऐसा कर।

१११ तव सहसो प्रयासि (६।१६।८)– तेरा सुंदर तेज मुझे दे। मैं तुम्हारे तेजसे तेजस्वी बनूंगा। यही देवत्व प्राप्ती है।

अन्न और बल

५७ वाजयन्तः वाजं अभि अश्याम (६।५।७)– हम बलकी इच्छा करनेवाले बलको प्राप्त करें। वाजः का अर्थ अन्न बल बढानेवाला अन्न और बल ऐसा होता है। हमें बल चाहिये अतः बल बढानेवाला अन्न चाहिये। ऐसा अन्न प्राप्त करके हम बलवान् बनें।

यश

४ अवस्यवः अमृक्तं अवः आपन्‌ (६।१।४)– यशकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले अपराजित यश प्राप्त करते हैं। कभी कभी ऐसा होता है कि यश तो मिलता है पर वह पराभवसे भी बना हुआ अयशस्वी होता है। वैसा नहीं चाहिये। अतः अपराजित यश प्राप्त करना चाहिये।

१२ बृहतीः भारे अयाः इषः भद्राः सौश्रवसानि सन्तु (६।१।१२)– बडे दोषरहित अन्न तथा कल्याणकारी यश हमें प्राप्त हों। अन्न ऐसे हों कि जो निर्दोष हों और यश ऐसे हों कि जो विशाल कीर्ति फैलानेवाले हों।

२१ तं यशासां अश्नुविः न नशते (६।३।२)– उसको यशकी प्राप्ति नहीं होती ऐसा नहीं अर्थात् उसको यश मिलता ही मिलता है।

४७ ते अजरं द्युम्नं अश्याम (६।५।७)– तेरा जरा-रहित तेज यश वा धन हमें प्राप्त हो।

१८ शतायुषं वयावन्तं धर्य पुष्यति (६।१५)– सौ वर्ष आयु करनेवाला पुत्रपौत्रादि धन वा यश जिससे बढ़ रहता है ऐसा घर वह बढाता है। हमें ऐसा घर दो कि जो आयु बढावे, अन्न पर्याप्त देवे और यश तथा कीर्ति देवे।

शत्रुका नाश

१७ सः बृहतः दिवः ऊर्मी अहः न द्विषः प्रयान्‌ तरति (६।४।४)– वह मनुष्य विशाल चमकनेवाले वीरके घेरावसे जानेके तैर जानेके समान द्वेष व द्वेष करनेवाले शत्रुओंके पार होता है और बढता है। अभ्यन्तः अजम घेरावसे करना

●

ईश्वरकी सेवा

ईश्वरकी सेवा उत्तम रीतिसे करनी चाहिये इस विषयमें ये वचन देखने योग्य हैं—

४५ यः यज्ञेन उक्थैः अर्केभिः ते ददाशत् (६।५।५)- जो यज्ञ स्तोत्र तथा पूजनोंसे तुम्हारी सेवा करता है।

१४ अध्वरः विश्वचर्षणिः यज्ञी त्वां याति (६।२।१)- अहिंसक सब देखनेवाला यजमान तुझे प्राप्त करता है।

११२ अमृतं वः गीर्भिः विवासत (६।१५।६)- तुम मरणरहित प्रभुकी सेवा अपनी वाणियोंसे करो।

११४ त्वं नमसा निषेदिरे (६।१५।८)- तू प्रणाम कर।

१७१ उत्तानहस्तः नमसा आविवासेत् (६।१६।४६)- ऊपर हाथ उठाकर विनये नमस्कारसे सेवा करो। किसीको प्रणाम करना हो तो हाथ ऊपर उठाकर करो। यहां प्रणाम करनेकी विधि हमें मालूम होती है। प्रणाम हाथ ऊपर उठाकर करना चाहिये।

इन्द्रियाँ

इन्द्रियोंके विषयमें निम्नलिखित मन्त्रमें इच्छा बताया जाता है—

वि मे कर्णा पतयतो वि चक्षुः
वीदं ज्योतिः हृदय आहितं यत्।
वि मे मनः चरति दूर आधीः
किं स्विद् वक्ष्यामि किमु नू मनिष्ये ॥ (६।९।६)

मेरे कान सुननेके लिये दौड रहे हैं मेरी आंख दौड रही है मेरे हृदयमें रखा यह तेज और उसके साथ मेरा मन दूरतकका विचार करता हुआ चल रहा है। अब मैं क्या वचन कहूं और किसका मनन करूं?

इसमें अपने अन्तःकरण और ज्ञान इंद्रियोंका वर्णन है। ये इंद्रियाँ वेगसे दौड रही हैं। उनको स्वाधीन रखना चाहिये। जिस तरह रथके घोडोंको स्वाधीन रखा जाता है।

नमन और ध्यान

प्रभुको नमन करनेके विषयमें ये निम्नलिखित वचन मनन करने योग्य हैं—

४ देवस्य पदं नमसा व्यन्तः (६।१।४)- वे प्रभुके पदको नमस्कार करके प्राप्त करते हैं।

६ त्वां हुवाया नमसा उप आ सदेम (६।१।६)- तुझे हम झुककर नमस्कार करके समीप आकर प्राप्त करते हैं।

४ यज्ञियानि नामानि दधिरे (६।१।४)- तुम्हारे पूजनीय नामोंको धारण करते हैं। नामोंका मनन करते हैं।

१५ चर्षणयः यज्ञेभिः गीर्भिः ईळते (६।२।२)- मनुष्य यज्ञों और स्तोत्रोंसे प्रभुका यश गाते हैं।

१६ मानुषः जनः सुम्नायुः अध्वरे जुह्वे (६।२।३)- मानवी जनसमुदाय सुखकी इच्छा करता हुआ हिंसारहित कर्ममें प्रभुकी प्रार्थना करता है।

६१ यस्य महत्त्वं पनयन्ति (६।७।३)- जिस प्रभुके महान् कर्मकी सब प्रशंसा करते हैं।

६५ विशां राजानं ऋग्मियं उपस्तुः (६।८।४) प्रजाओंके राजा स्वरूप वर्णनीय प्रभुकी स्तुति मनुष्य करते हैं।

१०८ दिवेदिवे प्रशस्तिभिः महयसे (६।१५।२)- प्रतिदिन उत्तम स्तोत्रों द्वारा तुम्हारी महिमा बढाई जाती है।

११३ जातवेदसं सुम्नैः ईमहे (६।१५।७) जिससे ज्ञान फैला है उस प्रभुकी स्तोत्रोंसे स्तुति गाते हैं।

१६९ नमस्यन्तः रण्वसंदृशं त्वां गिरः उप स्वज्महे (६।१६।४४)- भजन करनेवाले हम सुख रमणीय प्रभुकी अपनी वाणीसे स्तुति गाते हैं।

सुखशान्ति और दीर्घायु

४ ते भद्रायां संदृशौ रणयन्त (६।१।४)- तेरे कल्याणपूर्ण सम्यक् दर्शनमें वे भक्त रममाण होते हैं।

२६ शमीभिः शशमे (६।३।२) शान्ति बढानेवाले कर्मोंसे मनुष्य शान्तिको प्राप्त करते हैं।

४० सुवीराः शतहिमाः मदेम (६।४।८; ६।१०।७)- उत्तम वीर पुत्रपौत्रोंके साथ रहते हुए भी सौ वर्षतक हम आनन्द प्राप्त करते रहेंगे।

११५ शिवरूपः नः शिवः भव (६।१५।९)- सभी स्थानोंमें श्रेष्ठ तू प्रभु हमारे लिये कल्याणकारी हो।

सत्यका प्रवर्तक

२५ ऋतपाः ऋतेजाः क्षेषत् (६।३।१)- सत्यके मार्गका रक्षण करनेवाला सत्यके प्रचारके लिये जो प्रसिद्ध है वह वीर बढा रहता है। सत्यपालक वीर ही बढते रहें।

भक्तिका निर्माण

११६ वेधसः भक्तिं अर्पयन् अभ्यग्नि (६।१५।१०)

१३८ त्वां वाघतः विश्वस्य मूर्ध्नः पुष्करात् अधि अथर्वा निरमन्थत (६।१६।१३)- ज्ञानी मन्थन करके

भरद्वाज ऋषिका दर्शन ।

इन्द्र प्रकरण ।

(मण्डल ६ सूक्त १७)

१ पिबा सोममभि यमुग्र तर्द ऊर्वं गव्यं महि गृणान इन्द्र ।
वि यो धृष्णो वधिषो वज्रहस्त विश्वा वृत्रममित्रिया शवोभि ॥ १७४ ॥

२ स ई पाहि य ऋजीषी तरुत्रो यः शिप्रवान् वृषभो यो मतीनाम् ।
यो गोत्रभिद् वज्रभृद् यो हरिष्ठा स इन्द्र चित्राँ अभितृन्धि वाजान् ॥ १७५ ॥

३ एवा पाहि प्रत्नथा मन्दतु त्वा श्रुधि ब्रह्म वावृधस्वोत गीर्भि ।
आविः सूर्यं कृणुहि पीपिहीषो जहि शत्रूँरभि गा इन्द्र तृन्धि ॥ १७६ ॥

---

[१] (१७४) हे (उग्र) उग्र वीर ! तू (यं सोमं अभि पिब) इस सोमरसका पुष्कल प्राशन कर । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (गृणानः) स्तुति किया हुआ तूने (महि ऊर्वं गव्यं तर्द) बडे विशाल गौओंके समूहको प्रकाशमें लाया । हे (धृष्णो) शत्रुका धर्षण करनेवाले (वज्र-हस्त) वज्रको हाथमें लेनेवाले वीर ! (यः) जो तूने (शवोभिः) अपने सामर्थ्योंसे (विश्वा अमित्रिया वृत्र) सब शत्रुओंका तथा घेरनेवाले शत्रुका (वि वधिषः) विशेष रीतिसे वध किया ॥ १ ॥

भावार्थ— हे वीर ! तू इस सोमरसका पान कर । तेरी प्रशंसा इस कारण हो रही है कि तूने (शत्रुके द्वारा चुराई) गायोंके समूहको प्रकाशमें लाया हुआ निकाला । और अपने सामर्थ्योंसे सब दुर्जनों और घेरनेवाले शत्रुका वध किया ।

१ उग्र ऊर्वं महि गव्यं तर्द— हे वीर ! तूने विशाल गायोंके समूहको ढूंढ निकाला । शत्रुकी चुराई गई गौवें ढूंढ निकालीं ।

* धृष्णो वज्रहस्त ! वृत्र विश्वा अमित्रिया शवोभिः वधिष — हे शत्रुका धर्षण करनेवाले वज्र हाथमें लेनेवाले वीर ! अपने सामर्थ्योंसे सब दुष्ट शत्रुओंका तूने वध किया ।

[२] (१७५) (य ऋजीषी) जो अर्जुन सरल मनवाला है (यः तर-त्रः) जो शीघ्र तारण करता है (यः शिप्रवान्) जो मुकुट धारण करता है (यः मतीनां वृषभः) जो बुद्धियोंमें श्रेष्ठ बलवान बना है । (सः) वह तू (ईं पाहि) इस रसका रक्षण कर (यः गोत्रभिद्) जो मेघोंका भेदन करता है (यः वज्रभृत्) जो वज्र धारण करनेवाला है (यः हरि-ष्ठाः) जो घोडोंके साथ रहता है हे (इन्द्र) वीर इन्द्र ! (सः) वह तू (चित्रान् वाजान् अभि तृन्धि) विलक्षण बलवर्धक अन्न हमें दे ॥ २ ॥

ऋजीषी— सरल इच्छावाला सोमरस पीनेवाला ।

तरुत्र— (तर त्रः) शीघ्र रक्षण करनेवाला

शिप्रवान्— उत्तम साफा उत्तम मुकुट धारण करनेवाला उत्तम हनुवाला

मतीनां वृषभः— बुद्धियोंकी वृद्धि करनेवाला बुद्धिमानोंमें बलवान

गोत्रभिद्— गौओंका छोडनेवाला

वज्रभृत्— वज्रको धारण करनेवाला

हरि-ष्ठा — घोडोंको पास रखनेवाला

चित्रान् वाजान् अभि तृन्धि— विलक्षण सामर्थ्य बढानेवाला अन्न हमें दे ।

[३] (१७६) (प्रत्नथा एव पाहि) पूर्वके समान तू रक्षण कर । (त्वा मन्दतु) यह सोम तुझे आनन्द देवे । (ब्रह्म श्रुधि) ज्ञानका काव्य श्रवण कर । (उत गीर्भिः वावृधस्व) और स्तुतिके वचनोंसे तू बढता रह । (सूर्यं आविः कृणुहि) सूर्यको प्रकाशित कर । (इषः पीपिहि) अन्न हमें दे दो । (शत्रून् जहि) शत्रुका नाश कर । हे इन्द्र ! (गाः अभि तृन्धि) गौओंको प्रकाशमें ला ॥ ३ ॥

प्रत्नथा पाहि— पूर्वकालमें जिस तरह पालन किया

जीवात्मा-परमात्मा भिन्न हैं तथापि विश्वशरीर परमात्माका है ऐसा आलंकारिक वर्णन पूर्वस्थानमें अथर्ववेदके मन्त्रोंमें किया ही है। जीवात्माका शरीर यह है उसमें देवताओंके अंश हैं यह हम देख ही चुके हैं।

जो देवता विश्वरूपसे परमात्माके विश्वशरीरमें जो कार्य कर रही है, वह देवताका एक अंश जीवात्माके शरीरमें वही कार्य सूक्ष्मरूपसे कर रहा है। अतः किसी देवताका वर्णन परमात्माके विश्वशरीरके किसी अंगविशेषका ही वर्णन है।

प्रस्तुत प्रकरणमें अग्निका वर्णन है वह परमात्माके सूक्ष्म आधिदैविक वर्णन है। अर्थात् यह वर्णन परमात्माका ही वर्णन है। अब यह वर्णन जीवात्माके शरीरमें भी अंशरूप अग्नि रहा है उसका भी वही वर्णन है। अग्नि और उसकी विभूति व्यापक अग्निमें है और एकदेशीय भिन्नस्थानोंमें है। यह व्यापक और एकदेशीय ध्यानमें न लिया जाय तो दोनोंमें अभिन्न समान है। इस कारण अग्निका जो वर्णन वेदमें है वह परमात्माका भी वर्णन है वही अग्निका भी वर्णन है वही जीवात्मा का भी वर्णन ज्ञानीका भी वर्णन पुरोहितका भी वर्णन और ज्ञानी का भी वर्णन है। क्योंकि अग्नितत्त्वकी विभूति सर्वत्र समान है।

जहां जिस रूपमें अग्नि है वहां उस रूपके अनुसार वेदमन्त्रका अर्थ देखना चाहिये। इसी कारण ब्राह्मणग्रंथ कहीं पर अग्निको ब्राह्मण कहते हैं कहीं क्षत्रिय बताते हैं कहीं राजाका वर्णनपरक हैं और कहीं केवल आगका ही वर्णन करते हैं।

अग्निकी विभूति कहां किस रूपमें रहती है यह जानना चाहिये। अग्नि वाणीके रूपसे मनुष्यमें रहा है इस कारण अग्निके वर्णनमें वाणीका वर्णन आना अत्यंत स्वाभाविक है। और आगे हम मन्त्रोंके पदोंमें यह वर्णन देखेंगे। यह ऐसा वर्णन होना अस्वाभाविक नहीं है परन्तु ऊपर बताये रीतिसे ऐसा वर्णन होना स्वाभाविक ही है।

विश्वरूप परमात्मा और व्यक्तिके मध्यमें एक तीसरा रूप है जिसको समाज या राष्ट्र कहा जाता है। इस तरह अग्निके मुख्य तीन रूप हुए—

१ विश्वरूप में अग्नि सूर्य, इन्द्र आदि देव हैं।

२ राष्ट्ररूप में ज्ञानी और राजा आदि पुरुष हैं।

३ व्यक्तिके रूप में वाणी वीर्य तथा जाठराग्नि आदि गुण हैं।

इनको ही क्रमसे (१) आधिदैविक, (२) आधिभौतिक और (३) आध्यात्मिक कहते हैं। इस तरह एक एक रूप तीनों स्थानोंमें तीन रूपोंको धारण करता है। अग्नि अग्निके रूपमें विश्वरूपमें है ब्राह्मणों के रूपमें राष्ट्रमें है और वाक्शक्तिके रूपमें व्यक्तिमें है।

इसी तरह विश्वरूपमें वायुके रूपमें मरुत् देव हैं वीरोंके रूपमें राष्ट्रमें हैं और प्राणोंके रूपमें व्यक्तिमें हैं।

अन्यान्य देवोंके विषयमें इसी रीतिसे जानना योग्य है। यह सम्बन्ध जाननेके पश्चात् ही वेदमन्त्रोंके ठीक ठीक अर्थ जाने जा सकते हैं।

हमने अग्निमन्त्रोंका अर्थ देनेके समय जहां जिस प्रकारका सम्बन्ध है वहां उस प्रकारका संकेत और अर्थ भी बहुत स्थानोंपर दिया है। पाठकोंके मनमें संदेह होनेकी सम्भावना है। अतः यह स्पष्टीकरण किया है और बताया है कि इस प्रकार तीनों स्थानोंमें देवताका स्वरूप बदलता है और तदनुसार अर्थ भी समझना योग्य है।

अग्नि केवल आग ही नहीं है। जैसे हम जिसको आग कहते हैं वही केवल वैदिक अग्नि नहीं है। वैदिक अग्नि आधिदैवत क्षेत्रमें सूर्य-विद्युत्-अग्नि आदि रूपोंमें, अधिभूतक्षेत्रमें अर्थात् मानवसमुदायके राष्ट्रीय क्षेत्रमें ज्ञानी, विद्वान् वक्ता नेता आगमी है। तथा आध्यात्मिक क्षेत्रमें वक्तृत्व वाणीके रूपमें है। अग्निका यह स्वरूप पाठक ध्यानमें धरें और पश्चात् अग्निके मन्त्र पढें और मनोयोग करके अर्थ तदनुसार समझें। ऐसा करनेसे सब वेदोंकी विद्या हो सकती है।

॥ यहां अग्नि प्रकरण समाप्त ॥

७ पप्राथ क्षां महि दंसो व्युर्वी-मुप द्यामृष्वो बृहदिन्द्र स्तभाय' ।
आधारयो रोदसी देवपुत्रे प्रत्ने मातरा यह्वी ऋतस्य ॥ १८० ॥
८ अध त्वा विश्वे पुर इन्द्र देवा एकं तवसं दधिरे भराय ।
अदेवो यदभ्यौहिष्ट देवान् स्वर्षाता वृणत इन्द्रमत्र ॥ १८१ ॥
९ अध द्यौश्चित् ते अप सा नु वज्राद् द्वितानमद्भियसा स्वस्य मन्यो' ।
अहिं यदिन्द्रो अभ्योहसानं नि चिद्विश्वायु' शयथे जघान ॥ १८२ ॥
१० अध त्वष्टा ते मह उग्र वज्रं सहस्रभृष्टिं ववृतच्छताश्रिम् ।
निकाममरमणसं येन नवन्तमहिं सं पिणगृजीषिन् ॥ १८३ ॥

ऊर्वाद् गाः उत् असृजः— चोरोंके स्थानसे गायोंको बाहर लाने दिया। शत्रुने गायें चुरायी और वह कोठेमें रखी। वीरने उन कोठोंके द्वार खोल दिये और गायोंको मुक्त कर दिया।

[७] (१८०) हे इन्द्र ! तू (महि दंसः) बडे कर्मोंको करके (उर्वी क्षां वि पप्राथ) विस्तीर्ण भूमिको विशेष रीतिसे फैलाया। और (ऋष्वः) बडे शक्तिशाली तूने (बृहत् द्यां उप स्तभाय) बडे द्युलोकको ऊपर स्तम्भ किया। और (देव-पुत्रे) देव जिनके पुत्र हैं ऐसे (प्रत्ने यह्वी मातरा) पुरानी बडी माताओंके समान सबके निर्माण करनेवाली (रोदसी अधारयः) द्युलोक और पृथिवीको तुमने धारण किया ॥ ७ ॥

द्युलोक और पृथिवी ये पिता और माता हैं इनसे सूर्य विद्युत वायु अग्नि आदि सब देव उत्पन्न हुए हैं। अदन और अदितिकी कथा ऐसे देवके गर्भोंसे उत्पन्न हुई है।

[८] (१८१) (अध) अब हे इन्द्र ! (विश्वे देवाः) सब देवोंने (एकं तवसं त्वा) अकेले बलवान् तुझे (भराय) युद्धके लिये (पुरः दधिरे) आगे किया। (अ-देवः) असुर वृत्र (यत्) जब (देवान् अभ्यौहिष्ट) देवोंके साथ सामना करने लगा तब (स्वर्षाता) उस संग्राममें मरुत् (अत्र) यहां (इन्द्रं वृणते) इन्द्रकी ही सेवा करते थे ॥ ८ ॥

विश्वे देवा तवसं एकं पुरः दधिरे— सब विद्वानोंने (देवोंने) अकेले सामर्थ्यवान् वीरको (इन्द्रको) अपना नेता बनाया। विशेष शक्तिमानको ही अपना नेता बनाना योग्य है।

यत् अदेवः देवान् अभ्यौहिष्ट— जब असुर देवोंपर हमला करने लगा। जब दुष्टोंने सज्जनोंपर आक्रमण किया।

अत्र स्वर्षाता (मरुतः) इन्द्रं वृणते— यहां उस संग्राममें (मरुतोंने) इन्द्रकी ही चाह की थी। तब उस झगडेमें मरनेतक उठकर लडनेवाले वीरोंने अपने सेनानायककी चाह की। युद्धमें सेनापतिकी चाह करना योग्य है।

[९] (१८२) (अध) अब (सा द्यौः चित्) वह द्युलोक भी (द्विता) दो प्रकारोंसे (ते वज्रात्) तेरे वज्रसे तथा (स्वस्य मन्योः) आपके क्रोधके आपके उत्साहके (भियसा) भयसे (नु अप अनमत्) विनम्र हो गया। (यत् विश्वायुः इन्द्रः) जब सब आयुवाले इन्द्रने (अभि-ओहसानं अहिं) आक्रमण करनेवाले अहि वृत्रको (शयथे चित् नि जघान) शयन करनेकी अवस्थामें पूर्ण रीतिसे मारा ॥ ९ ॥

विश्वायुः— जिसकी शक्ति कम नहीं होती वह प्रभु मेघ।

अभि-ओहसानः— आक्रमण करनेवाला शत्रु।

इन्द्रः अभ्योहसानं अहिं शयथे नि जघन्थ— इन्द्रने आक्रमण करनेवाले शत्रुको सोनेकी अवस्थामें मारा। (शत्रुको वह जिस अवस्थामें हो उस अवस्थामें मारना चाहिये।)

वज्रात् भियसा अपनमत्— वीरके वज्रके भयसे शत्रु नम्र होते हैं।

स्वस्य मन्योः भियसा अपनमत्— वीरके अपने क्रोधसे अपने उत्साहसे शत्रुके लोग विनम्र होते हैं।

अपने पास शस्त्र अस्त्र सब उत्तम प्रकारसे सज्जित अवस्थामें रखने चाहिये तथा अपना उत्साह प्रबल रखना चाहिये।

[१०] (१८३) (अध) अब (उग्र) हे उग्र वीर ! (त्वष्टा) त्वष्टा कारीगरने (महः ते) बडे शक्तिमान् ऐसे तेरे लिये (सहस्र-भृष्टिं) सहस्र धाराओंसे युक्त और (शत-अश्रिं) सौ पर्वोंवाले (वज्रं ववृतत्) वज्रको बनाया। हे (ऋजीषिन्) सरल मनवाले वीर ! (येन) जिस वज्रसे (निकामं) तीव्र

११ वर्धान् यं विश्वे मरुतः सजोषाः पचच्छतं महिषाँ इन्द्र तुभ्यम् ।
पूषा विष्णुस्त्रीणि सरांसि धावन् वृत्रहणं मदिरमंशुमस्मै ॥ १८४ ॥

१२ आ क्षोदो महि वृतं नदीनां परिष्ठितमसृज ऊर्मिमपाम् ।
तासामनु प्रवत इन्द्र पन्थां प्रार्दयो नीचीरपसः समुद्रम् ॥ १८५ ॥

१३ एवा ता विश्वा चकृवांसमिन्द्रं महामुग्रमजुर्यं सहोदाम् ।
सुवीरं त्वा स्वायुध सुवज्र–आ ब्रह्म नव्यमवसे ववृत्यात् ॥ १८६ ॥

चमकनेवाले और (वर मन्दं) युद्ध करनेकी ही केवल इच्छा करनेवाले तथा (शवसं अहिं) शब्द करनेवाले अहि-वृत्रको तुमने (स विध्यत्) वींध दिया मार दिया ॥ १० ॥

शरीरपर कवच अपने राष्ट्रके वीरोंके लिये उत्तम ढाल कवच बनावें। और वीर लोग उन कवचोंका ठीक तरहसे प्रयोग करके शत्रुका नाश करें। और अपने राष्ट्रको सुरक्षित रखें।

[११] (१८४) (सजोषा विश्वे मरुतः) एक विचारसे रहनेवाले सब मरुत् वीर, (यं) जिस तुमको (वर्धान्) बढाते हैं, तेरा यश गाते हैं। हे इन्द्र! (पूषा तुभ्यं) पूषा देव तुम्हारे लिये (शतं महिषान् पचत्) सौ प्रकारके बलवर्धक अन्नोंको पकाता है। (विष्णुः) विष्णुने (त्रीणि सरांसि) तीन पात्रोंमें (अस्मै) इस इन्द्रके लिये (वृत्र-हणं मदिरं अंशुं) वृत्र मार देनेकी शक्ति बढानेवाले, आनन्द बढानेवाले सोमरसको तैयार करके भर रखा है ॥ ११ ॥

सजोषा विश्वे मरुतः यं वर्धान्— एक विचारसे रहनेवाले मरनेतक लडनेवाले वीर इस (वीर)की प्रशंसा गाकर उसका यश गाते हैं। इस तरह वीर सुभट वीरोंका सम्मान बढावें।

पूषा शतं महिषान् पचत् — पोषणकर्ता सौ महिष अन्नोंको पकाता है। वीरोंके खानेके लिये यह अन्न है। महिषः माहिषा— इस नामकी सोमसदृश वैसी वनस्पति और उसका कंद। भैंसा भैंस।

अस्मै त्रीणि सरांसि वृत्रहणं मदिरं अंशुं धावन्- इसके लिये तीन पात्र शत्रुको मारनेकी शक्ति देनेवाले आनंद वर्धक सोमरसके भर दिये। तीन पात्र सोमरसको छानकर भरकर रखे।

[१२] (१८५) हे इन्द्र! तूने (महि वृतं) बडा घेरा हुआ (परिष्ठितं) सब प्रकारसे स्थिर हुआ (नदीनां क्षोदः) नदियोंका जल (आ असृजः) बहा दिया। तथा (अपां ऊर्मिं) जलोंकी लहरोंको चलाया। (तासां पन्थां) उन नदियोंके मार्गोंको (प्रवतः अनु) प्रवाहित होने योग्य बनाया। और (नीचीः) निम्न मार्गसे जलप्रवाहोंको (अपसः समुद्रं) जलके समुद्रतक (प्र अर्दयः) जाने योग्य किया ॥ १२ ॥

इन्द्रने वृत्रको मारकर नदियोंका प्रवाह रुका हुआ था, वह प्रवाह चलने योग्य बनाया। नदियां जोरसे प्रवाहित होने लगीं और वेगसे समुद्रतक पहुंचीं।

वृत्रके कारण नदियोंका जल प्रवाह रुका हुआ था। अर्थात् नदियोंमें पानीका बर्फ बना था। सूर्य तापसे वह बर्फ पिघलने लगा और नदियां भरकर बहने लगीं।

शत्रुने यदि जलस्थानोंपर अपना अधिकार जमाया हो तो सेनापतिको उचित है कि वह वहांसे शत्रुको दूर करके जल-स्थान अपने आधीन करे और अपने लोगोंको पर्याप्त जल मिले ऐसा करे।

[१३] (१८६) (एवा ता विश्वा चकृवांसं) इस तरह उन सब कर्मोंको करनेवाले (महां उग्रं) बडे उग्र (अ-जुर्यं) जरा रहित और (सहोदां) बल देनेवाले (सुवीरं स्वायुधं) उत्तम वीर तथा उत्तम शस्त्रोंसे युक्त (सु वज्र) उत्तम वज्रधारी (एवं त्वा) तुझ इन्द्रको (अवसे) हमारी सुरक्षाके लिये (नव्यं ब्रह्म) नवीन स्तोत्र (ववृत्यात्) प्रचारित करे ॥ १३ ॥

इन विशेषणोंसे युक्त वीरकी प्रशंसा की जाय और वह वीर जनताकी सुरक्षा अपनी सामर्थ्यसे करे।

१४ स नो वाजाय इषे च राये धेहि द्युमत इन्द्र विप्रान्।
भरद्वाजे नृवत इन्द्र सूरीन् दिवि च स्मैधि पार्ये न इन्द्र ॥ १८७ ॥
१५ अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ १८८ ॥

(ऋ. मं. ६, सू. १८)

१ तमु ष्टुहि यो अभिभूत्योजा वन्वन्नवातः पुरुहूत इन्द्रः।
अषाळ्हमुग्रं सहमानमाभि-र्गीर्भिर्वर्ध वृषभं चर्षणीनाम् ॥ १८९ ॥
२ स युध्मः सत्वा खजकृत् समद्वा तुविम्रक्षो नदनुमाँ ऋजीषी।
बृहद्रेणुश्च्यवनो मानुषीणा-मेकः कृष्टीनामभवत्सहावा ॥ १९० ॥

---

[१४] (१८७) हे इन्द्र! (नः द्युमतः विप्रान्) हमारे तेजस्वी सब ब्राह्मणोंको (सः) वह तू (वाजाय) बलके लिये (इषे) अन्नके लिये (राये) ऐश्वर्यके लिये (नः धेहि) धारण कर। (भरद्वाजे) अन्नयुक्त- भरद्+वाजमें (सूरीन् नृवतः) विद्वान मनुष्योंसे युक्त कर। हे इन्द्र! तू (पार्ये दिवि च नः एधि स्म) पार करने योग्य आगामी दिनमें हमारा रक्षक हो ॥ १४ ॥

सः वाजाय इषः राये नः धेहि- वह तू बल अन्न और धनके लिये हमको धारण कर। हमें बल अन्न और धन प्राप्त हो ऐसा कर।

सूरीन् नृवतः— विद्वानोंको सहायक मनुष्योंसे युक्त कर। विद्वानोंको पुत्रवान् कर।

पार्ये दिवि च न एधि— भविष्यकालमें हमें सुख मिले ऐसा कर। तेजस्वी भविष्य कालमें हमें रख।

[१५] (१८८) (अया) इस स्तुतिसे (देव हितं वाजं सनेम) जो विद्वानोंके लिये हितकारक अन्न या बल है उसे हम प्राप्त करेंगे। और (सुवीराः शतहिमाः मदेम) उत्तम वीर पुत्रोंसे युक्त होकर सौ हिमकाल आनंदसे रहेंगे ॥ १५ ॥

देव हितं वाजं सनेम— इन्द्रियोंका हित करनेवाला अन्न हम प्राप्त करें। ज्ञानियोंका हित करनेवाला अन्न या बल हम प्राप्त करें। देव देवता इन्द्रिय ज्ञानी।

सुवीराः शतहिमाः मदेम— उत्तम वीरोंसे युक्त होकर सौ वर्षतक आनंदमें रहें यहां सौ हिमकाल ऐसा पद है। हिमकाल जहां अधिक प्रखर शीतसे युक्त होता है वहांका यह वाक्य दीखता है।

[१] (१८९) (यः) जो (अभिभूति-ओजाः) शत्रुओंका पराभव करनेमें समर्थ (वन्वन्) शत्रुका वध करनेवाला (अ-वातः) परंतु स्वयं अपराजित अत एव (पुरु-हूतः) बहुतोंद्वारा प्रार्थित इन्द्र है (तं उ स्तुहि) उसीकी प्रशंसा कर। (अ-षाळ्हं) अपराभूत (उग्रं) उग्र वीर (सहमानं) शत्रुका पराभव करनेवाले (चर्षणीनां वृषभं) प्रजाजनोंमें सांडके समान बलवान् जो इन्द्र है उसका (आभिः गीर्भिः वर्ध) इन स्तोत्रोंसे उसका यश बढा ॥ १ ॥

वीर (अभिभूति-ओजाः) शत्रुका पराभव करनेवाला (वन्वन्) दुष्टोंका वध करनेवाला परंतु (अ-वातः) स्वयं अपराजित तथा बहुतोंद्वारा प्रशंसित तथा (अषाळ्हः) कभी पराजित न होनेवाला उग्र (सहमानः) शत्रुको पराजित करनेवाला (चर्षणीनां वृषभः) प्रजाजनोंमें महाबलवान्। वीर ऐसा हो। इन्द्र ऐसा है इसलिये उसकी सब ज्ञानी कीर्ति और यश गाते हैं।

[२] (१) (सः) वह (युध्मः) उत्तम युद्ध करनेमें कुशल (सत्वा) बलवान (खज-कृत्) युद्ध करनेवाला (स-मद्-वा) वीरोंके साथ आनन्द करनेवाला (तुवि-म्रक्षः) अनेकोंके साथ युद्ध करनेवाला (नदनु-मान्) उत्तम वक्ता (ऋजीषी) गरम मनवाला अथवा सोम पीनेवाला (बृहद्-रेणुः) बहुत धूली उडानेवाला अर्थात् वेगवान रथमें बैठनेवाला (च्यवन) शत्रुको स्थानभ्रष्ट करनेवाला (मानुषीणां कृष्टीनां) मानवी प्रजाओंमें (एकः सहावा अभवत्) एक अद्वितीय बलवान् हुआ है ॥ २ ॥

ये वीरके गुण हैं। ये सब गुण मानवोंके जीवनमें ढालने योग्य हैं। हरएक मानव इनको अपनेमें धारण करनेका यत्न करे।

३ त्वं ह नु त्यददमायो दस्यूँरेकः कृष्टीरवनोरार्याय ।
अस्ति स्विन्नु वीर्यं१ तत् त इन्द्र न स्विदस्ति तदृतुथा वि वोचः ॥ १९१ ॥
४ सदिद्धि ते तुविजातस्य मन्ये सहः सहिष्ठ तुरतस्तुरस्य ।
उग्रमुग्रस्य तवसस्तवीयो ऽरध्रस्य रध्रतुरो बभूव ॥ १९२ ॥
५ तन्नः प्रत्नं सख्यमस्तु युष्मे इत्था वदद्भिर्वलमङ्गिरोभिः ।
हन्नच्युतच्युद् दस्मेषयन्तमृणोः पुरो वि दुरो अस्य विश्वाः ॥ १९३ ॥
६ स हि धीभिर्हव्यो अस्त्युग्र ईशानकृन्महति वृत्रतूर्ये ।
स तोकसाता तनये स वज्री वितन्तसाय्यो अभवत् समत्सु ॥ १९४ ॥

---

[३] (१९१) हे इन्द्र ! (त्वं ह नु त्यत्) तूने ही (दस्यून् अदमयः) दुष्टोंका दमन किया । तू (एकः) अकेले अपने ही (आर्याय कृष्टी अवनोः) श्रेष्ठ आर्यके आधीन सब प्रजाजनोंको दे दिया है । हे इन्द्र ! (ते तत् वीर्य अस्ति स्वित् नु) तेरा वह अद्भुत बल है ना ! अथवा (न अस्ति स्वित्) नहीं है ? (तत् ऋतु-था वि वोचः) इस विषयमें समय समयपर कहता रह ॥ ३ ॥

त्वं दस्यून् अदमयः— तूने दुष्टोंका दमन किया है ।

त्वं एकः आर्याय कृष्टी अवनोः— तू अकेलेने आर्यके लिये प्रजाको दिया । अर्थात् श्रेष्ठ मनुष्य आर्य क्षेम ही सब प्रजापर राज्यशासन करें ऐसा किया ।

[४] (१९२) हे (सहिष्ठ) बलवान् इन्द्र ! (तुवि-जातस्य) बहुतोंमें प्रसिद्ध और (तुरतः तुरस्य) हमारे शत्रुओंका नाश करनेवाले (ते सहः) तेरा वह बल (सत् इत् हि मन्ये) है, ऐसा निश्चयसे मैं मानता हूं । (उग्रस्य तवसः) उग्र बलवान् और (अ-रध्रस्य) स्वयं अहिंसित परंतु (रध्र-तुरः) शत्रुका नाश करनेवाले ऐसे तेरा (उग्रं तवीय बभूव) उग्र बल होता ही है ॥ ४ ॥

तुविजातस्य तुरतः तुरस्य ते सहः सत् इत्— अनेक वीरोंमें सुप्रसिद्ध और शत्रुका नाश करनेवाले तुझ जैसे वीरका ही ऐसा बल होता है ।

उग्रस्य तवसः रध्रतुरः उग्रं तवीयः बभूव— उग्र सामर्थ्यवान् और शत्रुका नाश करनेवाले वीरका विशेष प्रभाव होता है ।

[५] (१९३) (नः प्रत्नं तत् सख्यं युष्मे अस्तु) वह हमारा पुराना सख्य तुम्हारे साथ चलता रहे । हे (अ-च्युत-च्युत्) सुदृढ शत्रुओंको स्थानभ्रष्ट करनेवाले (दस्म) दर्शनीय वीर इन्द्र ! (इत्था वदद्भिः अंगिरोभिः) इस तरह बोलनेवाले अंगिरोंके साथ रहकर (इषयन्तं वलं) सबोंसे लडनेवाले बल नामक असुरको (हन्) तूने मारा । (अस्य पुरः वि ऋणोः) इस शत्रुके नगरोंको तोड दिया और (विश्वाः दुरः) सब द्वारोंको तोड दिया ॥ ५ ॥

नः प्रत्नं सख्यं युष्मे अस्तु— जैसा पूर्व कालमें हमारे साथ सख्य था वैसा भविष्यमें भी सख्य रहे । ऐसा भाव मनमें रखना चाहिये ।

अ-च्युत-च्युत्— सुदृढ शत्रुओंको स्थानभ्रष्ट करनेवाला वीर हो ।

इषयन्तं वलं हन्— वीर सबोंके साथ लडनेवाले शत्रुका वध करे ।

अस्य पुरः वि ऋणोः— शत्रुके नगरोंको तोड दे ।

अस्य विश्वा दुरः वि ऋणोः— इस शत्रुके सब द्वार तोड दे । द्वारोंको तोड दे । अर्थात् शत्रुके कीलोंको तोड दे ।

शत्रुसे लडनेके ये नियम वेदानुकूल हैं ।

[६] (१९४) (ईशानकृत् उग्र) शासकोंको निर्माण करनेवाला उग्र वीर (स हि) वह इन्द्र निश्चयसे (महति वृत्रतूर्ये) बडे संग्राममें (धीभिः हव्यः अस्ति) बुद्धिमानोंके द्वारा बुलाने योग्य है । (सः तोकसाता तनये) वह इन्द्र पुत्र पौत्रोंके लाभ होनेपर भी वही प्रार्थनीय है । (स वज्री) वह वज्रधारी इन्द्र (समत्सु) संग्रामोंमें (वितन्तसाय्यः अभवत्) शत्रुका विशेष नाशक होता है ॥ ६ ॥

ईशानकृत् उग्रः— शासकोंको बनानेवाला वीर उग्र होता है ।

१३ प्र तत् ते अद्या करणं कृतं भूत् कुत्सं यदायुमतिथिग्वमस्मै ।
पुरू सहस्रा नि शिशा अभि क्षा-मुत् तूर्वयाणं धृषता निनेथ ॥ २०१ ॥

१४ अनु त्वाहिघ्ने अध देव देवा मदन् विश्वे कवितमं कवीनाम् ।
करो यत्र वरिवो बाधिताय दिवे जनाय तन्वे गृणानः ॥ २०२ ॥

१५ अनु द्यावापृथिवी तत् ते ओजो ऽमर्त्या जिहत इन्द्र देवाः ।
कृष्वा कृत्नो अकृतं यत् ते अस्त्यु-क्थं नवीयो जनयस्व यज्ञैः ॥ २०३ ॥

(मं ६ सू. १९)

१ महाँ इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्रा उत द्विबर्हा अमिनः सहोभिः ।
अस्मद्र्यग्वावृधे वीर्यायो-रुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् ॥ २०४ ॥

---

[१३] (१ १) (ते तत् कृतं करणं प्र भूत्) तेरा यह कार्य और तेरा साधन बडा प्रभावशाली हुआ है। जो तूमने कुत्स, आयु और अतिथिग्वकी सुरक्षा की और (अस्मै) इसके लिये (पुरु सहस्रा नि शिशाः) तूने बहुत सहस्रों प्रकारसे धन दिये। (क्षां अभि) भूमिको जोरसे (धृषता) बलसे (तूर्वयाणं उत् निनेथ) त्वरासे गतिको उत्कर्षतक पहुंचाया ॥ १३ ॥

१ ते तत् कृतं करणं प्रभूत्— तेरा कार्य और साधन बडा प्रभावशाली हुआ।

२ अस्मै पुरु सहस्रा निशिशाः— इसको अनेक सहस्रों प्रकारसे धन दिये।

३ क्षां अभि धृषता तूर्व-याणं उत् निनेथ— भूमिके जोरसे बलके साथ चढकर त्वरासे आक्रमण किया।

ये वीरके कार्य हैं। वीरको ऐसे कर्म करना उचित है।

[१४] (१ १) हे (देव) प्रकाशमान! (त्वा अध विश्वे देवाः) तेरे साथ आज सब देव (अहिघ्ने) अहिको मारनेवाले तेरे (अनु मदन्) अनुकूल रहकर आनंद करते हैं। (कवीनां कवितमं) ज्ञानियोंमें अत्यन्त ज्ञानी तू है ऐसा वे मानते हैं। (यत्र) जिस समय (गृणानः) प्रशंसित होकर तूने (दिवे जनाय तन्वे) तेजस्वी मनुष्योंके तथा पुत्रके लिये (वरिवः करः) धन दान किया ॥ १४ ॥

१ अध विश्वे देवा अहिघ्ने त्वा अनु मदन्— आज सब देवोंने दुष्ट असुर मारनेवालेके साथ रहकर आनंद प्राप्त किया।

२ कवीनां कवितमं— तू ज्ञानियोंमें ज्ञानी है।

३ यत्र दिवे जनाय तन्वे वरिवः करः— जहां तू तेजस्वी मनुष्यके लिये तथा उसके पुत्रादिके लिये धन देता है।

बुद्धिमानोंमें बुद्धिमान् होना योग्य है। असुरका नाश करनेसे सबको आनंद होता है। दिव्य भद्र मनुष्यको दान करना योग्य है।

[१५] (१ १) हे इन्द्र! (ते तत् ओजः) तेरा वह प्रसिद्ध बल (द्यावा पृथिवी अनु जिहते) द्यौ और पृथिवी अनुसरते हैं। (अमर्त्याः देवाः) अमर देव तेरे बलको अनुसरते हैं। हे (कृत्नो) कर्म करनेवाले वीर! (यत् ते अकृतं अस्ति) जो तेरा न किया कर्म है तू उसको (कृष्व) कर और (यज्ञैः नवीयः उक्थं जनयस्व) यज्ञोंके द्वारा नवीन स्तोत्र निर्माण कर ॥ १५ ॥

१ अमर्त्याः देवा ते तत् ओजः अनु जिहते— अमर देव तेरे उस सामर्थ्यको अनुसरते हैं।

२ हे कृत्नो! यत् ते अकृतं अस्ति तत् कृष्व— हे पुरुषार्थी वीर! जो तूने अबतक किया नहीं है वैसा पुरुषार्थ अब करके दिखा दे।

३ यज्ञैः नवीयः उक्थं जनयस्व— यज्ञोंसे नवीन प्रशं-सित कर्म करके दिखा दो या त्याग करके दिखा दो।

[१] (२ ४) (नृवत्) नेताओं द्वारा परिवेष्टित (चर्षणिप्राः महान् इन्द्रः आ) प्रजाओंका पालन करनेवाला महान् इन्द्र हमारे पास आवे। (उत) और (द्विबर्हाः) दोनों स्थानोंमें भी (सहोभिः अ-मिनः) अनेक शक्तियोंके कारण अहिंसित और इन्द्र (अस्मद्र्यक् वीर्याय वावृधे) हमारे सन्मुख आकर वीरताके कर्म करनेका सामर्थ्य बढाते हैं। (उरु

२ इन्द्रमेव धिषणा सातये धाद् बृहन्तमृष्वमजरं युवानम् ।
अषाळ्हेन शवसा शूशुवांसं सद्यश्चिद्यो वावृधे असामि ॥ २०५ ॥
३ पृथू करस्ना बहुला गभस्ती अस्मद्र्यक् सं मिमीहि श्रवांसि ।
यूथेव पश्वः पशुपा दमूना अस्माँ इन्द्राभ्या ववृत्स्वाजौ ॥ २०६ ॥
४ तं व इन्द्रं चतिनमस्य शाकै-रिह नूनं वाजयन्तो हुवेम ।
यथा चित् पूर्वे जरितार आसु-रनेद्या अनवद्या अरिष्टाः ॥ २०७ ॥

पुरुः) शरीरसे विस्तीर्ण और गुणोंसे श्रेष्ठ इन्द्र (कर्तुभिः सुकृतः भूत्) अपनी कर्तृत्व शक्तियोंके कारण सत्कारित होता है ॥१॥

१ नृ-वत् चर्षणि-प्राः महान् इन्द्रः भा— जिसके पास नेता सदा उपस्थित रहते हैं जो प्रजाजनोंका रक्षण भरण-पोषण करता है ऐसा महान् सामर्थ्यवान् इन्द्र हमारे पास आय और हमारा रक्षण भरण-पोषण-संवर्धन करे ।

नृ-वत् — वीरोंसे युक्त नेताओंसे युक्त । ' चर्षणि-प्राः ' — प्रजाजनोंका पालन-पोषण करनेवाला उनकी इच्छाओंको परिपूर्ण करनेवाला ।

२ द्वि-बर्हाः सहोभिः अ मितः— दोनों लोकोंमें श्रेष्ठ प्रमुख माननीय अपने अनेक सामर्थ्योंसे अपरिमित रहता है । अपने बलोंके कारण शत्रुका आक्रमण होनेपर भी यह वीर अपराजित रहता है विजयी होता है । कभी पराजित नहीं होता । बर्ह — स्थिति, श्रेष्ठ भाव । द्वि-बर्हाः— दो स्थिति-योंवाला ।

३ अस्मद्र्यक् सहोभिः वीर्याय वावृधे— हमारे पास आकर यह अपने अनेक शक्तियोंके साथ वीरताके कर्म करनेके लिये बढता है । यह अपने सामर्थ्य बढाता है, वीरताके कर्म करता है और इस तरह यह अपने प्रभावको बढाता है ।

४ पुरुः पृथुः कर्तृभिः सुकृतः भूत्— यह शरीरसे बडा और गुणोंसे श्रेष्ठ होकर अपनी कर्तृत्वशक्तिके कारण सत्कार होने योग्य है । यह पुरुषार्थी लोगोंको अपने पास रखता है जो उसका सत्कार करते हैं । इस तरह उसका सामर्थ्य बढता जाता है ।

[२] (२०५) (धिषणा) हमारी बुद्धि (सातये बृहन्तं ऋष्वं) दानके लिये महान् प्रगतिशील (अजरं युवानं) जरा-रहित नित्यतरुण (अषाळ्हेन शवसा शूशुवांसं) अजेय बलसे सामर्थ्यवान् (इन्द्रं एव असामि धात्) इन्द्रको ही पूर्णतासे धारण करती है । (यः सद्यः चित्) जो इन्द्र तत्काल ही बढता है । अपना प्रभावी सामर्थ्य प्रकट करता है ॥ २ ॥

१ सातये बृहन्तं ऋष्वं अजरं युवानं अषाळ्हेन शवसा शूशुवांसं इन्द्रं एव धिषणा असामि धात्— दानके लिये अत्यन्त प्रसिद्ध वृद्धावस्थामें भी तरुण जैसा उत्साही शत्रुके लिये असह्य ऐसे विजयी बलसे युक्त इन्द्रको हमारी बुद्धि विशेष रीतिसे धारण करती है । हमारी बुद्धि ऐसे वीरके गुणोंका वर्णन करती है । वीरके ये गुण हैं जो वीरता का फैलाते हैं ।

[३] (२०६) हे इन्द्र ! (श्रवांसि) यश देनेके लिये (पृथू करस्ना) बडे कर्मोंको करनेमें कुशल (बहुला गभस्ती) बहुत दानशील तेरे हाथ (अस्मद्र्यक् सं मिमीहि) हमारे सामने करो । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (दमूनाः) शान्त मनवाले (पशुपाः पश्वः यूथा इव) पशुपालक जिस प्रकार पशुओंके संचारित करता है, उस प्रकार (आजौ अस्मान्) संग्राममें हमें (अभि आ ववृत्स्व) भी संचारित करो ॥ ३ ॥

१ श्रवांसि पृथू करस्ना गभस्ती— यशस्वी विशेष दान करनेके लिये मनुष्यने हाथ दिये हैं ।

२ पशुपाः पश्वः यूथा इव— पशुरक्षक पशुओंके झुण्डोंको सुरक्षित रखता है । उस तरह राजा प्रजाकी सुरक्षा करे ।

३ आजौ अस्मान् अभि आ ववृत्स्व— युद्धमें हमें सुरक्षित रखो और योग्य मार्गसे चलाओ ।

[४] (२०७) (वाजयन्तः) बल बढानेकी इच्छा करनेवाले हम लोग (नूनं इह) निश्चित यहीं (अस्य शाकैः) इसकी सब शक्तियोंके द्वारा (चतिनं तं इन्द्रं) शत्रुका नाश करनेवाले उस इन्द्रको (वः हुवेम) आपके लिये बुलाते हैं । (यथा चित्) जैसे (पूर्वे) पुरातन (जरितारः) स्तोता

८ आ नो भर वृषणं शुष्ममिन्द्र धनस्पृतं शूशुवांसं सुदक्षम् ।
येन वंसाम पृतनासु शत्रून् तवोतिभिरुत जामींरजामीन् ॥ २११ ॥

९ आ ते शुष्मो वृषभ एतु पश्चा–दोत्तरादधरादा पुरस्तात् ।
आ विश्वतो अभि समेत्वर्वा–ङिन्द्र द्युम्नं स्वर्वद्धेह्यस्मे ॥ २१२ ॥

१० नृवत् इन्द्र नृतमाभिरूती वंसीमहि वामं श्रोमतेभिः ।
ईक्षे हि वस्व उभयस्य राजन् धा रत्नं महि स्थूरं बृहन्तम् ॥ २१३ ॥

करनेवाले हम बान्धवोंकी प्राप्तिसे जो आनन्द होता है वह आनंद प्राप्त करें। त्वोता। (त्वा ऊता)— तेरे द्वारा सुरक्षित।

[८] (२११) हे (इन्द्र) इन्द्र ! (वृषणं धनस्पृतं) बलवर्धक, धनदायक (शूशुवांसं सुदक्षं शुष्मं) बढनेवाला उत्तम दक्षतायुक्त बल (नः) हमें (आ भर) दे। (तव ऊतिभिः) तेरी सुरक्षासे सुरक्षित होकर (पृतनासु) संग्रामोंमें (जेन जामीन् उत अजामीन् शत्रून् वंसाम) जिस बलसे आत्मीय संबंधि और अपरिचित शत्रुओंका नाश करें। वह बल भी हमें दे दो ॥ ८ ॥

१ वृषणं धनस्पृतं शूशुवांसं सुदक्षं शुष्मं नः आ भर— बलवर्धक धनका दान करनेके लिये समर्थ शक्तिको बढानेवाला दक्षतायुक्त बल हमें प्राप्त हो ऐसा कर। बल ऐसा हो कि जिससे बल बढता जाय, धनका दान करनेका उत्साह बढे, सामर्थ्य बढता जाय, कार्य करनेमें जो दक्षता आवश्यक होती है वह मिले, इस तरहका बल हमें चाहिये।

२ ऊतिभिः पृतनासु जामीन् उत अजामीन् शत्रून् वंसाम— संरक्षणके साधनोंसे सुरक्षित होकर हम युद्धोंमें अपने आप्तसंबंधके शत्रुओंको अथवा जिनसे कोई आप्तसंबंध नहीं ऐसे दर्जेके परकीय शत्रुओंको भी पराजित करेंगे। शत्रु दो प्रकारके होते हैं एक आप्तसंबंधके शत्रु जैसे पाण्डवोंके दुर्योधनादि भाई शत्रु बने थे और दूसरे देवोंके असुर। इन सब शत्रुओंका नाश करना चाहिये।

३ सुदक्षं शुष्मम्— दक्षताके साथ रहनेवाला बल चाहिये।

[९] (२१२) हे इन्द्र ! (ते वृषभः शुष्मः) तेरा सामर्थ्य बढानेवाला बल (अर्वाङ्) हमारे पास (पश्चात् आ उत्तरात् आ अधरात् आ पुरस्तात् आ एतु) पश्चिम उत्तर, दक्षिण और पूर्वकी ओरसे आवे। (विश्वतः) चारों ओरसे (अभि आ समेतु) हमारे पास आवे। हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (स्वर्वत् द्युम्नं अस्मे धेहि) सुखयुक्त धन हमको दे ॥ ९ ॥

१ विश्वतः वृषभः शुष्मः अर्वाङ् अभि आ समेतु— चारों ओरसे बल बढानेवाला सामर्थ्य हमारे पास एकत्रित होता रहे।

२ स्वर्वत् द्युम्नं अस्मे धेहि— तेजस्वी धन हमें प्राप्त हो। स्वः-वत् — आत्मप्रकाश बढानेवाला तेज हमें मिले।

[१०] (२१३) हे (इन्द्र) इन्द्र ! (नृवत्) वीरोंसे युक्त (श्रोमतेभिः) तथा यशोंसे युक्त (वामं) प्रशंसनीय धन (ते) तेरी (नृतमाभिः ऊती) अत्यन्त वीरतासे युक्त रक्षासे हम उपभोग करते हैं। हे (राजन्) राजमान् इन्द्र ! तू (उभयस्य) पार्थिव और दिव्य इन दोनों (वस्वः) धनोंका (ईक्षे) स्वामी है। अतः (महि स्थूरं बृहन्तं रत्नं) बडा, विपुल और विशाल धन हमें (धाः) दे ॥ १० ॥

१ ते नृतमाभिः ऊती नृवत् श्रोमतेभिः वामं— तेरी श्रेष्ठ वीरतायुक्त साथ रहनेवाले संरक्षक साधनोंसे संघ वीरोंसे तथा यशोंसे युक्त उत्तम धन हमें प्राप्त हो।

२ उभयस्य वस्वः ईक्षे— दोनों प्रकारके धनोंका तू स्वामी है। तुम्हारे पास दिव्य तथा पार्थिव धन है।

३ महि स्थूरं बृहन्तं रत्नं धाः— बडा महान् विशाल धन हमें दे।

(मं ६ सू २०)

१ द्यौर्न य इन्द्राभि भूमार्य-स्तस्थौ रयिः शवसा पृत्सु जनान्।
तं नः सहस्रभरमुर्वरासां दद्धि सूनो सहसो वृत्रतुरम्॥ २१७॥

२ दिवो न तुभ्यमन्विन्द्र सत्रा ऽसुर्यं देवेभिर्धायि विश्वम्।
अहिं यद्वृत्रमपो वव्रिवांसं हन्नृजीषिन् विष्णुना सचानः॥ २१८॥

३ तूर्वन्नोजीयान् तवसस्तवीयान् कृतब्रह्मेन्द्रो वृद्धमहाः।
राजाभवन्मधुनः सोम्यस्य विश्वासां यत्पुरां दर्त्नुमावत्॥ २१९॥

करते हुए, हम दोनों प्रकारके शत्रुओंका नाश करके, शत्रुओंसे अधिक श्रेष्ठ नि सन्देह हो जायगे। समर्यामि वृत्राणि— एक अन्दरके शत्रु और दूसरे बाहरके शत्रु ऐसे दो प्रकारके शत्रु होते हैं।

१ हे शूर! त्वोताः सुहस्ता रायाः— हे शूर! तेरे द्वारा सुरक्षित होकर हम विशेष श्रेष्ठ धनसे युक्त होकर रहें।

[१] (२१७) हे (सहसः सूनो इन्द्र) बलके लिये प्रसिद्ध इन्द्र! (यः रयिः) जो पुत्र (शवसा पृत्सु) अपने सामर्थ्यके कारण संग्रामोंमें (द्यौः न भूम-) आकाशके समान विशाल होकर शत्रुपर आक्रमण करता है और (अर्यः जनान् अभि तस्थौ) शत्रुजनोंसे सामना करता है (सहस्रभरं) यह सहस्रों प्रकारका धन भर देनेवाला (उर्वरासां) भूमिको उपजाऊ करनेवाला (वृत्रतुर) शत्रुओंका त्वरासे नाश करनेवाला है (तं नः दद्धि) वैसा पुत्र हमें दे दो॥ १॥

पुत्र कैसा हो

१ य शवसा पृत्सु द्यौः न भूम— जो पुत्र अपने सामर्थ्यके कारण युद्धोंमें निःसन्देह विजय प्राप्त करता है। और द्युलोकके समान विशाल सामर्थ्यवाला होता है।

२ य शवसा अर्यः जनान् अभि तस्थौ— जो अपने बलके कारण शत्रुके सैनिकोंपर आक्रमण करता है।

३ त सहस्रभरं उर्वरासां वृत्रतुरं नः दद्धि— उस सहस्रों प्रकारके धन लाकर घरमें भरनेवाले भूमिको उपजाऊ बनानेवाले घेरनेवाले शत्रुको त्वरासे नाश करनेवाले शूरवीर पुत्रको हमें दे दो। ऐसा पुत्र हमें हो।

४ सः रयिः— उस बलवान्‌का पुत्र ही सच्चा धन है, सच्चा ऐश्वर्य और वैभव है।

[२] (२१८) हे (इन्द्र) इन्द्र! (दिवः न) आकाशकी तरह (तुभ्यं सत्रा विश्वं असुर्यं) तुम्हारे पास सब प्रकारका सामर्थ्य रहता है। हे (ऋजीषिन्) शत्रुको पकडनेवाले या सोम पीनेवाले इन्द्र! (विष्णुना सचानः) विष्णुके साथ रहकर (यत्) इसी बलसे (अपः वव्रिवांसं) जलोंको रोकनेवाले (अहिं वृत्रं) घातक और घेरनेवाले शत्रुको तूने (हन्) मारा॥ २॥

१ दिवः न तुभ्यं सत्रा विश्वं असुर्यं— आकाशके समान विशाल अनेक सामर्थ्य प्रभुके पास है। असु-र्य- असु नाम प्राणशक्तिका है उससे जो सामर्थ्य है वह असुर्य कहलाता है। दूसरा पद अ-सुर्य है, उसका अर्थ अ-सुरपी, राक्षसकी शक्ति ऐसा है। यहां इस मंत्रमें वह यह नहीं है। यह असु-र्य है और अ-सुर्य नहीं है।

२ विष्णुना सचानः इन्द्रः अपः वव्रिवांसं अहिं वृत्रं हन्— विष्णुके साथ मिलकर इन्द्र जलोंको रोकनेवाले असुरको मारता है। वध करता है। अ-हि — कम न होनेवाला बढता जानेवाला, अ-हि कहलाता है। घेरनेवाला वृत्र (वृणोति) कहलाता है। अहि और वृत्र एक ही शत्रुका नाम है। अपः वव्रिवांस — जलोंको रोकनेवाला यह वृत्र है। जलोंको रोकनेका अर्थ जलको जमा देना है। जमे जानेसे ही जलका प्रवाह बंद हो जाता है। यह हिम कालमें हिमप्रदेशमें बढता है इसलिये यह अ हि (कम न होनेवाला) है और यह पृथ्वीको (वृणोति) घेरता है इसलिये वृत्र कहलाता है। विष्णु सूर्य है विद्युत् इन्द्र है। ये दोनों आते हैं और बर्फको पिघला देते हैं जिससे वृत्र मरता और जलप्रवाह शुरू होते हैं ऐसा वर्णन होता है।

[३] (२१९) (यत्) जब (इन्द्रः) इन्द्रने (विश्वासां पुरां) शत्रुकी सब पुरियोंको तथा नागरिक स्त्रियोंको (दर्त्नुं) नाश करनेवाला वज्र (आवत्) प्राप्त किया तब (तूर्वन् ओजीयान्) शत्रुओंकी हिंसा करनेवाला अतिशय ओजस्वी

६ प्र श्येनो न मदिरमंशुमस्मै शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन् ।
प्रावन्नमीं साप्यं ससन्तं पृणग्राया समिषा सं स्वस्ति ॥ २२२ ॥

७ वि पिप्रोरहिमायस्य दृळ्हाः पुरो वज्रिञ्छवसा न दर्दः ।
सुदामन्तद्रेक्णो अप्रमृष्य-मृजिश्वने दात्रं दाशुषे दाः ॥ २२३ ॥

८ स वेतसुं दशमायं दशोणिं तूतुजिमिन्द्रः स्वभिष्टिसुम्नः ।
आ तुग्रं शश्वदिभं द्योतनाय मातुर्न सीमुप सृजा इयध्यै ॥ २२४ ॥

---

[६] (२२२) जब इन्द्रने (दासस्य नमुचेः) दुष्ट नमुचिके (शिरः) सिरको (मथायन्) काटा और (ससन्तं साप्यं नमीं) सोनेवाले साप्य नमीकी (प्रावत्) रक्षा की तब उस इन्द्रने (स्वस्ति राया इषा सं पृणक्) कल्याण करनेके लिये उसे धन और अन्न भर दिया तब उसको (श्येनः न) श्येन पक्षीके समान (अस्मै) उस इन्द्रको (मदिरं अंशुं) आनन्द देनेवाले सोमरसको (प्र) प्रदान किया ॥ ६ ॥

१ दासस्य नमुचेः शिरः मथायन्— दासरूपी नमुचिका सिर इन्द्रने काटा। न मुचिः—न छोडनेवाला शत्रु।

२ ससन्तं साप्यं नमीं प्रावत्— सोनेवाले साप्य नमीकी सुरक्षा की। नमी = नम्र स्वभाववाले साप्य (स+आप्य) = प्राप्त करने योग्य। अपना मित्र अपना साथी।

३ स्वस्ति राया इषा सं पृणक्— कल्याण करनेके लिये उसे पर्याप्त धन और अन्न दिया।

४ श्येनः न अस्मै मदिरं अंशुं प्र— श्येन पक्षीके वेगसे इस वीरके लिये उसने आनन्ददायक सोमरस तैयार करके पीनेके लिये दिये।

[७] (२२३) हे (वज्रिन्) वज्र धारण करनेवाले इन्द्र ! तूने (अहिमायस्य पिप्रोः) सर्पतुल्य मायाजाल फैलाने वाले पिप्रु राक्षसके (दृळ्हाः पुरः) बलवान् दुर्गोंको (शवसा) अपने बलसे (वि दर्दः) विदीर्ण किया नष्ट किया तोड दिया। हे (सुदामन्) सुन्दर दान देनेवाले वीर ! तूने ही (दात्रं) दान (दाशुषे ऋजिश्वने) देनेवाले ऋजिश्वाको (अप्रमृष्यं तत् रेक्णः) अविचल वह धन (दाः) दिया ॥ ७ ॥

१ हे वज्रिन् ! अहिमायस्य पिप्रोः दृळ्हाः पुरः शवसा वि दर्दः— हे वज्रधारी वीर ! तूने अपनी बलसे सर्पके समान मायाजाल फैलानेवाले पिप्रु राक्षसके सुदृढ किलोंको बलसे तोड दिया। पिप्रु = अपना पेट भरनेके लिये दूसरोंको कष्ट देनेवाला शत्रु।

२ हे सुदामन् ! दात्रं दाशुषे ऋजिश्वने अप्रमृष्यं तत् रेक्णः दाः— हे दान देनेवाले वीर ! तुमने दान देनेवाले ऋजिश्वा ऋषिको अविचल धन दिया। वह धन शत्रु हर नहीं सकता ऐसा धन तूने दिया था। अर्थात् धन भी दिया और उसके साथ संरक्षणका सामर्थ्य भी दिया। ऋजि-श्वा = सरल मार्गसे जानेवाला। घोडा। अ-प्र-मृष्यं = अविचल।

[८] (२२४) (स्वभिष्टिसुम्नः सः इन्द्रः) इच्छित सुख देनेवाले उस इन्द्रने (दशमायं वेतसुं दशोणिं, तूतुजिं तुग्रं इभं) कपटी वेतसु, दशोणि तूतुजि तुग्र और इभ नामक दुष्टोंको (द्योतनाय) द्योतन नामक वीरके पास (शश्वत्) निरन्तर (इयध्यै) आनेके लिये उस प्रकार (उप आ सृज) वश किया जिस प्रकार (मातुः न) माता पुत्रको वशमें करती है ॥ ८ ॥

१ स्वभिष्टिसुम्नः सः इन्द्रः दशमायं वेतसुं० शश्वत् द्योतनाय इयध्यै उप आसृजत् मातुः न इष्ट सुख देनेवाला वह इन्द्र अनेक कपटजाल फैलानेवाले वेतसु आदि असुरोंको द्योतमान राजाके पास जानेके लिये और उसके आधीन शान्त रहनेके लिये ऐसा वशमें किया जिस तरह माता पुत्रको वशमें करती है।

दश मायाः— दसों कपटजाल फैलानेवाला शत्रु।
वेत-सु- (अन्नके स्थानपर) भाग उत्पन्न करनेवाला
दशोणिः- दसों न्यूनताएं जिसमें होती हैं ऐसा शत्रु
तूतुजि- विनाशकर्ता हिंसक,
इभः- हाथीके समान बलवान् शरीरवाला शत्रु
द्योतमान तेजस्वी।

१२ त्वं धुनिरिन्द्र धुनिमतीर्ऋणोरपः सीरा न स्रवन्तीः ।
प्र यत् समुद्रमति शूर पर्षि पारया तुर्वशं यदुं स्वस्ति ॥ २२८ ॥

१३ तव ह त्यदिन्द्र विश्वमाजौ सस्तो धुनीचुमुरी या ह सिष्वप् ।
दीदयदित् तुभ्यं सोमेभिः सुन्वन् दभीतिरिध्मभृतिः पक्थ्यर्कैः ॥ २२९ ॥

पास (भरा दरात) वापस भेज दिया । ॥ ११ ॥

१ त्वं पूर्व्यः— तू प्राचीन है तू पुरातन हो तू सबका पूर्वज हो ।

२ काव्याय उशने वरिवस्यम् भूयः भूः— उत्तम करनेवाले कवियोंको धन देकर, ऐश्वर्य और वैभव प्रदान करके तू उनका सत्कर्म करनेवाला हुआ है ।

३ अनुदेयं स्वं न पार्तं नववास्त्वं महि पित्रे परा ददाथ— ऐसे बीमत अपने न मिलनेवाले पनके नवीन करके बडे पिता अर्थात् पितामहको दिया । ईश्वर सबका पूर्वज है इस लिये उसको पूर्व्यः कहा है । उसने उशनाको धन दिया और उसका सत्कर्म किया अर्थात् उसका अभ्युदय करनेके लिये जो सहायता चाहिये थी वह दी । नववास्त्वं ' (नव+ वास्त्वं)- जो नया बना है उस बालकको अपने पोत्रके ही- वास्त करना चाहिये था अतः उसको बडे पिता अर्थात् पितामहके पास सुरक्षित पहुँचा दिया । नव-वास्त्वं - नया बनाया हुआ घर, रहनेका स्थान । (सायणाचार्यके मतसे) एक राक्षस जिसको इन्द्रने मारा । न-पार्तं नव-वास्त्वं न मिलनेवाला नया घर, नया बनाया पक्का घर । न-पार्तं नववास्त्वं पोता नववास्त्व । इस मंत्रका अन्तिम भाग अस्पष्ट-सा है अतः अधिक विचार करने योग्य है ।

[१२] (२२८) हे (इन्द्र) इन्द्र ! (धुनिः) शत्रुओंको कँपानेवाला (त्वं) तू (धुनिमतीः अपः) चलनेवाले पानीको (सीरा न स्रवन्तीः ऋणोः) नदीकी तरह बहा दो । हे (शूर) शूरवीर ! (यत्) जब (समुद्रं अति) समुद्रका अतिक्रमण करके तुम (प्र पर्षि) पार होते हो तब (तुर्वशं यदुं) तुर्वश और यदुको (स्वस्ति पारय) कल्याणपूर्वक पार कर दो ॥ १२ ॥

१ त्वं धुनिः— तू शत्रुको हिलाकर नाश करनेवाला है ।

२ धुनिमतीः अपः सीरा न, स्रवन्तीः ऋणोः— चलनेवाली जलधाराको तू, नदियोंकी तरह चलाते, बहाते हो ।

३ हे शूर ! यत् समुद्रं अति प्र पर्षि तुर्वशं यदुं स्वस्ति पारय— हे शूरवीर ! जब तू समुद्रके पार होते हो तब तू इस तुर्वश और इस यदुको कल्याणकारक रीतिसे पार पहुँचाओ ।

तुर्वशः (त्वरा-वश)= शीघ्र वशमें रहनेवाला संयमशील ।

यदुः (यत्-प्रयत्ने)= प्रयत्नशीलः ।

[१३] (२२९) हे (इन्द्र) इन्द्र ! (आजौ) संग्राममें (त्यत् ह) तेरा ही (विश्वं सत्) सब कार्य होता है । (या धुनीचुमुरी) जो धुनी और चुमुरीको (सिष्वप् सस्तः) संग्राममें तूने सुलाया अर्थात् मार डाला । हे इन्द्र ! (तुभ्यं) तेरे लिये (सुन्वन्) सोमरस निकालनेवाले और (पक्थी) अन्नको पकानेवाले (इध्मभृतिः) समिधाओंको लानेवाले (दभीतिः सोमेभिः अर्कैः) दभीतिने सोमरसके और स्तोत्रोंके साथ (दीदयत् इत्) सत्कार किया है । ॥ १३ ॥

१ या धुनी चुमुरी सिष्वप् सस्तः त्यत् आजौ तव ह विश्वं— जो धुनी और चुमुरीको मारकर सुलानेका कर्म है वह युद्धमें तुम्हारा ही सब कार्य है । धुनिः ' हिलानेवाला शत्रु चुमुरिः '— सब ही भक्षण करनेवाला, दान न देनेवाला कृपण शत्रु ।

२ तुभ्यम् पक्थी इध्मभृतिः दभीतिः सोमेभिः अर्कैः दीदयत्— सोमरस निकालनेवाला अन्न पकानेवाला समिधा लानेवाला दभीति सोमरस तैयार करके स्तोत्रोंका गान करके तुम्हारा ही सत्कार करता है ।

दभीतिः — जो नहीं दबता ऐसा उपासक ।

(मं. ६ सू. २१)

१ इमा उ त्वा पुरुतमस्य कारोर्हव्यं वीर हव्या हवन्ते ।
धियो रथेष्ठामजरं नवीयो रयिर्विभूतिरीयते वचस्या ॥ २३० ॥
२ तमु स्तुष इन्द्रं यो विदानो गिर्वाहसं गीर्भिर्यज्ञवृद्धम् ।
यस्य दिवमति मह्ना पृथिव्याः पुरुमायस्य रिरिचे महित्वम् ॥ २३१ ॥
३ स इत् तमोऽवयुनं ततन्वत् सूर्येण वयुनवच्चकार ।
कदा ते मर्ता अमृतस्य धामेयक्षन्तो न मिनन्ति स्वधावः ॥ २३२ ॥

ईश्वरकी महिमा

[१](२३०) हे (वीर) वीर इन्द्र ! (पुरुतमस्य कारोः) बहुत कार्य करनेकी इच्छा करनेवाले पुरुषार्थी प्रयत्न करनेवालेकी (इमाः हव्याः धियः) ये प्रशंसनीय बुद्धियाँ (हव्यं) प्रार्थनाके योग्य (रथे-स्थां अजरं नवीयः) रथपर बैठे हुए, जरारहित अत्यन्त तरुण ऐसे (त्वा हवन्ते) तुझको बुलाती हैं। कारण कि (वचस्या वि-भूतिः रयिः) वर्णनीय विशेष श्रेष्ठ ऐश्वर्य तेरी आज्ञासे ही (ईयते) प्राप्त होता है ॥ १ ॥

१ हे वीर ! पुरुतमस्य कारोः इमाः हव्याः धियः हव्यं रथेष्ठां अजरं नवीयः त्वा हवन्ते— हे महावीर ! बहुत शुभ कर्म करनेकी इच्छा करनेवाले कुशल कर्मचारी-कामकरनेवालेकी- प्रशंसनीय बुद्धियोंसे भक्तिपूर्वक किये ये काव्य वर्णनीय रथमें बैठे हुए जरारहित तुझ तरुण वीरको अपने सहायार्थ अपने पास लानेके लिये पाते जा रहे हैं। इनका श्रवण करके तू यहां आ और हमारा सहायक हो।

२ वचस्याः विभूतिः रयिः ईयते— वर्णनीय वैभव युक्त ऐश्वर्य तेरी प्रेरणासे ही प्राप्त होता है इस लिये सब कवि तेरी प्रार्थना करते हैं।

धन ऐसा मिले कि जो वैभवयुक्त हो और वर्णन करने योग्य हो।

कारुः= कारीगर, कार्यकर्ता पुरुषार्थी, कवि काव्यकर्ता।

विभूतिः= विशेष ऐश्वर्य।

[२] (२३१) (यः विदानः) जो सर्वज्ञ है उस (गिर्वाहसं यज्ञवृद्धं) वाणियों द्वारा वर्णनीय और यज्ञोंसे जिसका यश बढता है (तं उ इन्द्रं) उस इन्द्रकी (स्तुषे) मैं स्तुति करता हूं। (पुरुमायस्य) बहुत बुद्धिमान् (यस्य) इस इन्द्रकी (महित्वं) महिमा (दिवः पृथिव्याः) द्युलोक और पृथिवीके (मह्ना) विस्तारसे (अति रिरिचे) बहुत ही विस्तीर्ण है ॥ २ ॥

१ यः विदानः — जो (प्रभु) सर्वज्ञ है वह सब जानता है। विदान्, सर्वज्ञ विशेष ज्ञानी।

२ गिर्वणसं यज्ञ-प्रवृद्धं तं उ इन्द्रं स्तुषे— अपनी वाणी द्वारा उस प्रभुका ही वर्णन होने योग्य है वह प्रभु प्रशस्त यज्ञकर्म करनेसे प्रसन्न होता है। श्रेष्ठोंका सत्कार, आपसकी संघटना और दीनोंका उद्धार जिससे होता है वह प्रशस्त यज्ञ कर्म है, इससे प्रभुका यश बढता है। जिससे वह प्रसन्न होता है।

३ यस्य पुरुमायस्य महित्वं दिवः पृथिव्या मह्ना अति रिरिचे— इस श्रेष्ठ बुद्धिमान् कर्ममें कुशल प्रभुकी महिमा द्युलोक और भूलोकके विस्तारसे भी बहुत है। बडी विस्तृत है।

गिर्वणस्— वाणीसे जिसकी प्रशंसा की जाती है स्तुतिके योग्य।

यज्ञ प्रवृद्ध— यज्ञ करनेसे महान्, यज्ञ करनेमें प्रवीन शुभ कर्म करनेमें कुशल

पुरु-मायः— विशेष कुशल बहुत कुशल।

[३](२३२) (सः इत्) उस इन्द्रने (अ-वयुनं) अज्ञानमय (ततन्वत् तम) फैले हुए अन्धकारको (सूर्येण) सूर्यके प्रकाशसे (वयुनवत् चकार) प्रकाशमय किया। हे (स्वधावः) अपनी निजधारक शक्तिसे युक्त इन्द्र ! (मर्ताः) मनुष्य (अमृतस्य ते धाम) तेरे अमरस्थानको (इयक्षन्तः कदा न मिनन्ति) यज्ञ करनेकी इच्छा करनेके कारण कभी भी नष्ट नहीं करते हैं। सबसे बढाते रहते हैं ॥ ३ ॥

१ सः इत् अ-वयुनं ततन्वत् तमः सूर्येण वयुन-

७ अभि त्वा पाजो रक्षसो वि तस्थे महि जज्ञानमभि तत् सु तिष्ठ।
तव प्रत्नेन युज्येन सख्या वज्रेण धृष्णो अप ता नुदस्व ॥ २३६ ॥

८ स तु श्रुधीन्द्र नूतनस्य ब्रह्मण्यतो वीर कारुधायः।
त्वं ह्या३पिः प्रदिवि पितॄणां शश्वद् बभूथ सुहव एष्टौ ॥ २३७ ॥

प्रोतये वरुणं मित्रमिन्द्रं मरुतः कृष्वावसे नो अद्य।
प्र पूषणं विष्णुमग्निं पुरंधिं सवितारमोषधीः पर्वतांश्च ॥ २३८ ॥

---

[७] (२३६) हे इन्द्र! (रक्षसः पाजः) राक्षसोंका बल (त्वा अभि वि तस्थे) तेरे सामने चारों ओर बढ रहा है, (महि जज्ञानं तत् अभि सु तिष्ठ) तू भी शत्रुके उस बडे बलको जानकर उसका प्रतिकार कर। हे (धृष्णो) शत्रुओंका धर्षण करनेवाले इन्द्र! (तव प्रत्नेन युज्येन सख्या वज्रेण) तेरे पुराने सुयोग्य मित्रसहायक वज्रसे (ता अप नुदस्व) उस शत्रुसेनाको दूर कर ॥ ७ ॥

१ रक्षसः पाजः त्वा अभि वि तस्थे— शत्रुकी सेना तेरे चारों ओरसे आक्रमण करती हुई आ रही है। चारों ओरसे आनेवाली शत्रुसेनाके बलाबलका विचार करना योग्य है।

२ तत् महि जज्ञानं अभि सुतिष्ठ— उस शत्रुके विशाल बलको जानकर उसका उत्तम रीतिसे प्रतिकार कर। शत्रुका बल ठीक तरह जानकर उसका प्रतिकार करना चाहिये।

३ हे धृष्णो! तव प्रत्नेन युज्येन सख्या वज्रेण ता अप नुदस्व— हे शत्रुका धर्षण करनेवाले वीर! तुम्हारे पुराने सुयोग्य मित्र जैसे उस वज्रसे उन शत्रुके सैनिकोंको भगा दो। अपने शस्त्रके बलसे शत्रुसेनाको भगाना योग्य है।

युद्ध नीति— शत्रु क्या कर रहा है उसको देखना। यदि उसका वैसा आक्रमण हो रहा होगा तो उसी दिशामें उसको उसके बलसे रोकना और उसका पराभव करना योग्य है। शत्रुके विषयमें कदापि उदासीन नहीं रहना चाहिये।

[८] (२३७) हे (कारुधायः वीर इन्द्र) कवियोंको धारण करनेवाले वीर इन्द्र! (सः) वह तू (नूतनस्य ब्रह्मण्यतः) इस नवीन ब्रह्मज्ञान प्राप्त करनेवालेका वचन (तु श्रुधि) श्रवण कर। (त्वं एष्टौ आ सुहवः) तू यज्ञमें सहज ही से बुलाने योग्य है। और (प्रदिवि पितॄणां आपिः) हमारे पूर्व पितरोंका तू बन्धु होकर (शश्वत् बभूथ) चिरकाल तक रहा था। इस लिये तू इन स्तोत्रोंको सुन ॥ ८ ॥

१ कारु-धायः वीर इन्द्र— कवियोंको आश्रय देनेवाला वीर इन्द्र है। जो राजा हो वह कवि कारीगर शिल्पियोंको सहायता देवे। कारु— शिल्पी कवि कारीगर।

२ ब्रह्मण्यतः नूतनस्य श्रुधि— ब्रह्मज्ञान प्राप्त करनेवाले नवीन उपासकका वचन तू श्रवण कर। पूर्वेभिः ऋषिभिः नूतनैः ईड्यः। ऋ० १।१।२ - प्राचीन तथा नवीन ऋषियोंके द्वारा प्रभुकी प्रशंसा की जाती है। इस तरह ऋषि प्राचीन और नवीन भी होते हैं। प्राचीन तथा नवीन ब्रह्मज्ञान प्राप्त करनेवाले हुआ करते हैं।

३ प्रदिवि पितॄणां आपिः शश्वत् बभूथ— विशेष तेजस्वी स्थानमें हमारे पूर्वजोंका मित्र या बन्धु होकर सदाके ही वह प्रभु रहता था।

४ त्वं आ एष्टौ सु हवः — यज्ञके समय प्रार्थना करके सहज ही से बुलाने योग्य था। प्रार्थना सुनकर वह आ जाता था। वैसी प्रार्थना नवीनोंकी की हुई भी तू सुन और उनका सहायक हो जा। यज्ञकर्ममें बुलाने या संमानके योग्य मनुष्य श्रेष्ठ बने।

[९] (२३८) हे मरुतो! (अद्य) आज (वरुणं मित्रं इन्द्रं मरुतः) वरुण मित्र इन्द्र मरुत् (पूषणं विष्णुं, पुरंधिं अग्निं, सवितारं ओषधीः च पर्वतान्) पूषा विष्णु पुरंधी अग्नि सविता औषधियां और पर्वतादि देवोंको (नः ऊतये अवसे) हमारी सुरक्षाके लिये तथा प्रगतिके लिये सहायक (कृष्व) करो ॥ ९ ॥

इन सब देवोंको हमारे सहायक बनाओ।

४ तन्नो वि वोचो यदि ते पुरा चि-ज्जरितार आनशुः सुम्नमिन्द्र ।
कस्ते भाग: किं वयो दुध्र खिद्व: पुरुहूत पुरूवसोऽसुरघ्नः ॥ २४५ ॥

५ तं पृच्छन्ती वज्रहस्तं रथेष्ठा-मिन्द्रं वेपी वक्वरी यस्य नू गीः ।
तुविग्राभं तुविकूर्मिं रभोदां   गातुमिषे नक्षते तुम्रमच्छ ॥ २४६ ॥

अमरः अवीत्) या धन अविनाशी क्षीण न होनेवाला और सुख देने वाला है। (तं मादयध्यै आ भर) वह धन हमें उपभोगके लिये भरपूर भर दे ॥ ३ ॥

१ त इन्द्र पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षोः अस्य रायः ईमहे— उस प्रभुके पास हम ऐसा मांगते हैं कि जिसके साथ बहुत वीर रक्षणके लिये रहते हों जो अनेक सहायकोंको अपने पास रखता है और जिसके साथ पर्याप्त अन्न होता है अर्थात् हमें धन चाहिये अन्न चाहिये सहायक चाहिये और इनके संरक्षणके लिये संरक्षक वीर भी चाहिये।

२ यह धन (अ-क्षयोद्युः) विनाश न होनेवाला (अ-मरः) क्षीण न होनेवाला और (सः-वाम्) सुख बढानेवाला हो। इस धनसे (मादयध्यै) हमारा आनन्द बढता जाय। हमें किसी तरह दुःख न हो। ऐसा धन हमें चाहिये।

[४] (२४५) हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यदि ते जरितार पुरा चित्) जो तेरे स्तोताओंने पहिले समयमें (सुम्नं आनशुः) सुख प्राप्त किया था (तत् नः वि वोचः) तो वह सुखका मार्ग हमें बताओ। हे (दुध्र) दुर्धर (खिद्वः) शत्रुओंका नाश करनेवाले (पुरु हूत) बहुतोंसे बुलाये जानेवाले (पुरु-वसो) बहुत ऐश्वर्यवाले इन्द्र ! (असुर घ्नः ते) असुरोंका नाश करने वाला तेरा (कः भागः वयः किं) कर्तव्यका कौनसा भाग है तथा सामर्थ्यका भाग भी कौन-सा है। वह भी कहो ॥ ४ ॥

१ ते जरितारः सुम्नं आनशुः— तेरे स्तोतागण उत्तम मन प्राप्त करते हैं। प्रभुकी स्तुति करनेसे कोमल विचार वाला मन होता है।

२ दुध्र खिद्-व पुरु-हूत पुरु-वसो ! असुर-घ्नः ते कः भागः ? —शत्रुके लिये असह्य शत्रुनाशक बहुतोंसे प्रशंसित बहुत धनवाले वीर ! तेरे पास जो असुरोंका नाश करनेवाला वीर्यका भाग है वह कौन सा है ? तुम जिस सामर्थ्यसे असुरोंका नाश करते हो वह तुम्हारा सामर्थ्य कौन सा है ?

३ ते वयः किं ? – तेरी आयु क्या थी तेरा सामर्थ्य कौन-सा था जिससे तुम शत्रुका नाश करते हो ?

मनुष्य अपना मन शुभ विचारवाला करे शत्रुका नाश करनेका सामर्थ्य प्राप्त करे बहुत धन कमावे शत्रुओंका नाश करे।

[५] (२४६) (वज्रहस्तं रथेष्ठां तुविग्राभं तुविकूर्मिं रभोदां तं इन्द्रं) हाथमें वज्र धारण करनेवाले रथमें बैठनेवाले शत्रुओंको पकडनेवाले बहुत कर्म करनेवाले बल देनेवाले उस इन्द्रकी (पृच्छन्ती वेपी) अर्चना करनेवाली नानाविध कर्म करनेवाली (वक्वरी गीः) गुणोंका वर्णन करनेवाली इस प्रकार स्तुति (यस्य) जिस यजमानकी होती है। वह (गातुं इषे) सुखको प्राप्त होता है और (तुम्रं अच्छ नक्षते) शत्रुका सामना करता है। ॥ ५ ॥

१ वज्रहस्तं रथेष्ठां तुविग्राभं तुविकूर्मिं रभोदां तं इन्द्रं पृच्छन्ती वेपी वक्वरी गीः यस्य सः गातुं इषे तुम्रं अच्छ नक्षते— वज्र हाथमें धारण करनेवाला रथपर आरूढ होकर लडनेवाला अनेक शत्रुओंको एक ही समय पकडनेवाला अनेक प्रकारके कर्म करनेवाला बल बढानेवाला यह इन्द्र है इस तरह उस इन्द्रकी अर्चना जो करती है, तथा साथ साथ यज्ञ कर्मोंको करती है ऐसी स्तुति जिसकी वाणी करती है वह सुख प्राप्तिके मार्गसे जाता है और सुख प्राप्त करता है, और शत्रुका पराभव करनेका मार्ग भी ठीक तरह जानता है। तथा शत्रुका पराभव भी करता है।

इस प्रकारके गुणोंका ध्यान करनेसे वे गुण अपने अन्दर आते हैं वह उन गुणोंसे युक्त होता है और उनसे वह सुखी होता है और शत्रुको दूर करके निर्भय होता है। ईश्वरके गुणोंसे मनुष्यकी उन्नति इस तरह होती है।

६ अया ह त्य मायया वावृधानं मनोजुवा स्वतवः पर्वतेन ।
अच्युता चिद् वीळिता स्वोजो रुजो वि दृळ्हा धृषता विरप्शिन् ॥ २४७ ॥
७ तं वो धिया नव्यस्या शविष्ठं प्रत्नं प्रत्नवत् परितंसयध्यै ।
स नो वक्षदनिमानः सुवह्मेन्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि ॥ २४८ ॥
८ आ जनाय द्रुह्वणे पार्थिवानि दिव्यानि दीपयोऽन्तरिक्षा ।
तपा वृषन् विश्वतः शोचिषा तान् ब्रह्मद्विषे शोचय क्षामपश्च ॥ २४९ ॥
९ भुवो जनस्य दिव्यस्य राजा पार्थिवस्य जगतस्त्वेषसंदृक् ।
धिष्व वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते विश्वा अजुर्य दयसे वि मायाः ॥ २५० ॥

---

[६] (२४७) हे (स्व तवः) अपने निज बलसे युक्त इन्द्र ! (मनोजुवा पर्वतेन) मनोवेगी अपने आयुध वज्रसे (अया मायया वावृधानं) अपने कपट जालसे बढनेवाले उस शत्रुको तुमने (वि रुजः) विशेष प्रकारसे वध किया। हे (स्वोजः) अच्छी शक्तिसे बलवान् (विरप्शिन्) महान् धाम पर्ववान् इन्द्र ! तूने (अच्युता चित् वीळिता दृळ्हा) न हिलने वाली बलवाली और दृढ शत्रुकी पुरियोंको (धृषता) धर्षक शक्तिसे भग्न किया तोड डाला। ॥ ६ ॥

१ हे स्व-तवः ! मनोजुवा पर्वतेन अया वावृधानं त्यं वि रुजः।— हे निज सामर्थ्यवान् इन्द्र ! मनके समान अत्यन्त वेगसे शत्रुपर प्रहार करनेवाले पर्ववान् वज्रसे अपने कपटके कारण बढनेवाले उस शत्रुका तुमने नाश किया।

स्व तवः अपने निज सामर्थ्यसे युक्त। पर्वत — (पर्ववान्)– जिसमें पर्व हैं ऐसा वज्र जिसमें गाठें, नोकें तथा धारें अनेक होती हैं वह वज्र। धारावाला शस्त्र।

२ हे स्वोजः विरप्शिन् ! अच्युता वीळिता दृळ्हा धृषता विरुजः— हे अपने बलसे बलवान् और महाप्रतापी इन्द्र ! न हिलनेवाले सुस्थिर बलवान् और सुदृढ शत्रुके नागरिक किलोंको अपने धर्षक सामर्थ्यसे तुमने तोड दिये।

इस मन्त्रमें युद्धनीति कही है। शत्रुको अतिवेगवान् वज्रसे मारना योग्य है। तथा शत्रुकी नगरियोंको भी तोडना तथा अपने आधीन करना उचित है। इस मंत्रके पद वीरकी शक्तिका वर्णन करनेवाले हैं।

[७] (२४८) (नव्यस्या धिया) इस अपूर्व बुद्धि पूर्वक की गई स्तुति द्वारा (शविष्ठं प्रत्नं वः तं) अत्यन्त बलवान् पुरातन उस इन्द्रका (प्रत्नवत् परितंसयध्यै) प्राचीन रीतिके अनुसार और यथार्थ विस्तार करनेके लिये मैं प्रयत्न करता हूं, इसको सुन कर (अनिमानः सुवह्मा) अपार महिमावाला सुन्दर वाहनवाला (स इन्द्रः) वह इन्द्र (विश्वानि दुर्गहाणि) समस्त संकटोंसे (नः अति वक्षत्) हमें पार ले जावे। ॥ ७ ॥

१ नव्यसा धिया तं शविष्ठं प्रत्नं प्रत्नवत् परितंसयध्यै— अपूर्व और बुद्धिपूर्वक किये इस स्तोत्रसे उस बलवान् पुरातन इन्द्रका प्राचीनों जैसा यश फैलानेके लिये मैं यशोगान करता हूं।

२ इस स्तोत्रको सुनकर अनिमानः सुवह्मा सः इन्द्रः विश्वानि दुर्गहाणि नः अति वक्षत् - अपार महिमावाला और सुन्दर रथवाला वह इन्द्र सब प्रकारके संकटोंसे हमें बचाकर पार ले जावे।

[८] (२४९) हे इन्द्र ! (द्रुह्वणे जनाय) सज्जनोंका द्रोह करनेवाले दुष्टोंको हटानेके लिये (पार्थिवानि दिव्यानि) पृथिवी और द्युलोक (अन्तरिक्षा) और अन्तरिक्षके स्थानोंको (आ दीपयः) अत्यन्त तप्त करो। हे (वृषन्) बलवान् देव ! (विश्वतः तान्) चारों ओरसे उन दुष्टोंको (शोचिषा तप) अपने तेजसे तपाओ। (ब्रह्मद्विषे क्षां च अपः) ज्ञानके द्वेषियोंको दग्ध करनेके लिये पृथिवी और जलोंको भी तपाओ।

दुष्ट जहाँ होंगे वहांसे उनको हटानेका प्रयत्न करना चाहिये। और उनको संतप्त करना चाहिये जिससे वे वहां न रहें।

[९] (२५०) (त्वेषसंदृक् अ-जुर्य इन्द्र) दीप्तिमान् जरारहित इन्द्र ! (दिव्यस्य जनस्य) दिव्य लोगोंका और (पार्थिवस्य जगतः) पृथ्वीपरके लोगोंका भी (राजा भुवः) तू राजा है। (दक्षिणे हस्ते वज्रं धिष्व) दाहिने हाथमें वज्रको

१० आ संयतमिन्द्र णः स्वस्तिं शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम् ।
यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन् सुतुका नाहुषाणि ॥ २५१० ॥

११ स नो नियुद्भिः पुरुहूत वेधो विश्ववाराभिरा गहि प्रयज्यो ।
न या अदेवो वरते न देव आभिर्याहि तूयमा मद्र्यद्रिक् ॥ २५११ ॥

(म ६, सू. २३)

१ सुत इत् त्वं निमिश्ल इन्द्र सोमे स्तोमे ब्रह्मणि शस्यमान उक्थे ।
यद् वा युक्ताभ्यां मघवन् हरिभ्यां बिभ्रद् वज्रं बाह्वोरिन्द्र यासि ॥ २५१२ ॥

धारण कर । और (विश्वाः मायाः वि दयस्व) सब दुष्टोंके कपटजालोंका नाश कर ॥ ९ ॥

१ त्वेषसंदृक् अजुर्य इन्द्र— तेजःयुक्त दीखनेवाला जरा क्षय आदि रहित इन्द्र है ।

२ विश्वस्य जनस्य पार्थिवस्य जगतः राजा भुवः— द्युलोकमें तथा भूलोकमें रहनेवाले लोगोंका तू ही राजा हुआ है ।

३ दक्षिणे हस्ते वज्रं धीष्व— अपने दाहिने हाथमें वज्र धारण कर और उससे—

४ विश्वाः मायाः वि दयस्व— शत्रुके सब कपट जालोंका नाश कर ।

यह मंत्र राज्यशासनका उपदेश कर रहा है । अपने पास शस्त्रास्त्रोंका सुयोग्य संग्रह करना और शत्रुके कपट प्रयोगोंको दूर करना चाहिये ।

[१०] (२५१०) हे (इन्द्र) इन्द्र ! (शत्रु-तूर्याय) शत्रुओंके नाश करनेके लिये (बृहतीं अ-मृध्रां) बडी अविनाशी (संयतं स्वस्तिं) संयममें रहनेवाली और कल्याण करनेवाली संपत्ति (नः आ भर) हमें दे । हे (वज्रिन्) वज्रधारी इन्द्र ! (यया दासानि आर्याणि करः) जिससे दासोंको आर्य बनाया जाता है और (नाहुषाणि) मनुष्योंके (वृत्रा) घेरनेवाले शत्रुओंको (सुतुका) सहज ही में नाश किया जाता है ॥ १० ॥

१ शत्रुतूर्याय बृहती अमृध्रा संयता स्वस्ति नः आ भर— शत्रुओंका नाश करनेके लिये विशाल अविनाशी नियमित रहनेवाली और कल्याण करनेवाली संपत्ति हमें दे दो ।

२ यया दासानि आर्याणि करः— जिससे दासोंके आर्य किये जाते हैं । दास — दास सेवक दस्यु दुष्ट । इनको श्रेष्ठ आर्य नागरिक बनाया जाता है । राज्यशासन व्यवस्था और समाज व्यवस्था ऐसी चाहिये कि जिससे दुष्ट मनुष्य श्रेष्ठ आर्य नागरिक बन जांय ।

३ नाहुषा वृत्रा सुतुका— मानवोंको घेरनेवाले शत्रु दूर किये जांय । वे फिरसे मनुष्योंको कष्ट न दें ऐसी अवस्थामें वे पहुंचाये जांय ।

दुष्टोंको सज्जन बनानेका भाव यहां है यह मनन करने योग्य है । प्रथम यह प्रयत्न किया जाय । उसमें यश न मिला तो दुष्टोंको दण्ड देना योग्य है ।

[११] (२५११) हे (पुरुहूत) बहुत लोगोंसे बुलाने योग्य (वेधः) विधाता (प्रयज्यो) विशेष पूजनीय इन्द्र ! (सः) तू (विश्ववाराभिः नियुद्भिः) सब लोगोंसे स्वीकार करने योग्य घोडियोंसे (नः आ गहि) हमारे पास आओ । (अदेवः) असुर (याः न वरते) जिन घोडोंको रोक नहीं सकता (देवः न) और देव भी नहीं रोक सकता (आभिः तूयं आ) इन घोडोंसे शीघ्र ही (मद्र्यद्रिक् आ याहि) मेरे पास आओ ॥ ११ ॥

इसके घोडे अच्छे हों । उत्तम शिक्षित हों जिससे उनकी उत्तम प्रशंसा होती रहे ।

[१] (२५१२) हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सोमे सुते इत्) सोमका रस निकालनेपर (ब्रह्मणि स्तोमे) स्तोत्रोंके पढनेके पश्चात् (उक्थे शस्यमाने) उक्थका गान होनेपर (त्वं) तू (निमिश्लः) तल्लीन होता है । और हे (मघवन् इन्द्र) धनवान् इन्द्र ! (बाह्वोः वज्रं बिभ्रत्) हाथमें वज्र धारण करता हुआ (यद् वा युक्ताभ्यां हरिभ्यां यासि) तथा जोते हुए घोडोंके रथसे गमन करता है ॥ १ ॥

इन्द्रके रथको दो घोडे जोते जाते हैं । वैसे रथमें इन्द्र बैठता है और यज्ञ जहां होता है वहां जाता है ।

६ ब्रह्माणि हि चकृषे वर्धनानि तावत् त इन्द्र मतिभिर्विविष्म ।
सुते सोमे सुतपाः शंतमानि रान्द्र्या क्रियास्म वक्षणानि यज्ञैः ॥ २५८ ॥

७ स नो बोधि पुरोळाशं रराणः पिबा तु सोम गोऋजीकमिन्द्र ।
एदं बर्हिर्यजमानस्य सीदो—रुं कृधि त्वायत उ लोकम् ॥ २५९ ॥

८ स मन्दस्वा ह्यनु जोषमुग्र प्र त्वा यज्ञास इमे अश्नुवन्तु ।
प्रेमे हवासः पुरुहूतमस्मे आ त्वेयं धीरवस इन्द्र यम्याः ॥ २६० ॥

९ तं वः सखायः सं यथा सुतेषु सोमेभिरीं पृणता भोजमिन्द्रम् ।
कुवित् तस्मा असति नो भराय न सुष्विमिन्द्रोऽवसे मृधाति ॥ २६१ ॥

१० एवेदिन्द्रः सुते अस्तावि सोमे भरद्वाजेषु क्षयदिन्मघोनः ।
असद् यथा जरित्र उत सूरि—रिन्द्रो रायो विश्ववारस्य दाता ॥ २६२ ॥

---

[६] (२५८) हे (इन्द्र) इन्द्र ! (हि) जिस कारण (ब्रह्माणि वर्धनानि चकृषे) ये स्तोत्र उत्कर्ष बढानेवाले किये गये हैं उस कारण (तावत् ते मतिभिः विविष्म) वे स्तोत्र तुम्हारे लिये हम बुद्धिपूर्वक अर्पण करते हैं। हे (सुतपाः) सोमपान करनेवाले इन्द्र ! (सुते सोमे) सोम तैयार होनेपर (शंतमानि रान्द्र्या) अतिशय सुख देनेवाले रमणीय और (यज्ञैः वक्षणानि) यज्ञोंके साथ गाये जानेवाले स्तोत्र (क्रियास्म) हम करते हैं। हम गाते हैं ॥ ६ ॥

[७] (२५९) हे (इन्द्र) इन्द्र ! (रराणः सः) आनन्दसे युक्त होनेवाला तू (नः पुरोळाशं बोधि) हमारे हविष्यान्नको स्वीकार कर, (गोऋजीकं सोमं तु पिब) गौका दूध दही आदि मिलाया हुआ यह सोमरस पी। (यजमानस्य इदं बर्हिः आ सीद) यजमानके लिये इस आसनपर बैठ। (त्वायतः लोकं उरुं कृधि) तेरे अनुगामी हम लोगोंके लिये विस्तृत स्थान दे। हमारा उत्कर्ष कर ॥ ७ ॥

१ त्वायतः उरु लोकं कृधि— तुम्हारे अनुयायियोंके लिये विस्तृत कार्यक्षेत्र मिले।

[८] (२६०) हे (उग्र) पराक्रमशाली इन्द्र ! (सः अनु जोषं मन्दस्व) तू अपनी इच्छाके अनुसार आनंद कर। (इमे यज्ञासः त्वा प्र अश्नुवन्तु) ये यज्ञ तुझे प्राप्त हों। हे इन्द्र ! (अस्मे इमे हवासः पुरुहूतं) हमारे ये स्तोत्र बहुतोंके द्वारा बुलाये जानेवाले इन्द्रको प्राप्त हों। (इयं धीः) यह स्तुति (त्वा अवसे आ यम्याः) तुझे हमारा रक्षण करनेके लिये हमारे पास ले आवे ॥ ८ ॥

१ इयं धीः अवसे त्वा आ यम्याः— यह बुद्धि हम सबके लिये तुझे यहां ले आवे। वीर रक्षणके लिये आवे। पीछे न रहे।

[९] (२६१) हे (सखायः) मित्रों ! (वः सुतेषु) तुम्हारा सोमरस तैयार होनेपर (भोजं तं ईं इन्द्रं) उस भोजन देनेवाले उस इन्द्रको (सोमेभिः सं पृणत) सोमरससे तृप्त करो। (तस्मै कुवित् असति) उस इन्द्रके लिये यह हमारी तृप्तता करनेके लिये बहुत उत्तम साधन होगा। हे इन्द्र (नः भराय) हमारे पोषणके लिये प्रयत्नशील हो। (इन्द्रः सुष्विं अवसे न मृधाति) इन्द्र सोमरस अर्पण करनेवालेकी सुरक्षा करनेसे पीछे नहीं हटता ॥ ९ ॥

१ भोजं तं इन्द्रं संपृणत— भोजन देनेवाले उस इन्द्रको तृप्त करो।

२ नः भराय— हमारे भरण पोषणके लिये यत्न हो।

३ इन्द्रः अवसे न मृधाति— इन्द्र रक्षण करनेके लिये पीछे नहीं हटता। इसीतरह संरक्षण करनेके लिये कोई वीर पीछे न हटे।

[१०] (२६२) (मघोनः क्षयत्) धनवाले यजमानका प्रभु (इन्द्रः) इन्द्र है वह (सोमे सुते) सोमरस तैयार होनेपर (जरित्रे सूरिः यथा असत्) स्तोताको ज्ञानी बनाता है (उत विश्ववारस्य रायः दाता) और सबसे अधिक वरणीय धन देता है उस इन्द्रकी (भरद्वाजेषु एव अस्तावि) भरद्वाजोंमें स्तुति हुई है ॥ १० ॥

१ विश्ववारस्य रायः दाता— सब प्रकारके धनका दाता है।

२ आभिः स्पृधो मिथतीररिषण्यन्नमित्रस्य व्यथया मन्युमिन्द्र ।
आभिर्विश्वा अभियुजो विषूचीरार्याय विशोऽव तारीर्दासीः ॥ २७४ ॥

३ इन्द्र जामय उत येऽजामयोऽर्वाचीनासो वनुषो युयुज्रे ।
त्वमेषां विथुरा शवांसि जहि वृष्ण्यानि कृणुही पराचः ॥ २७५ ॥

४ शूरो वा शूरं वनते शरीरैस्तनूरुचा तरुषि यत् कृण्वैते ।
तोके वा गोषु तनये यदप्सु वि क्रन्दसी उर्वरासु ब्रवैते ॥ २७६ ॥

सु अवीः) हमारी उत्तम प्रकारसे रक्षा कर। हे (उग्र) उग्र इन्द्र ! (महान्) तू महान् है। (द्युमिः वाजैः) इन अन्नोंसे (नः) हमें युक्त कर ॥ १ ॥

संरक्षणके साधन उत्तम मध्यम और कनिष्ठ होते हैं। उनसे प्रजाकी सुरक्षा करनी चाहिये। प्रजाका युद्धोंमें संरक्षण करना और उनको पर्याप्त अन्न भोग मिलना ये कार्य राज्य शासन द्वारा होने चाहिये

१ ते या अवमा ऊतिः या मध्यमा या अवमा तामिः वृत्रहत्ये नः सु अवीः— जो तुम्हारे निकृष्ट मध्यम और उत्तम संरक्षणके साधन हैं उनसे युद्धमें हम सबका उत्तम संरक्षण कर

[२] (२७४) हे (इन्द्र) इन्द्र ! (आभिः) इनसे (मिथतीः स्पृधः अरिषण्यन्) शत्रुसेनाका नाश करनेवाली हमारी सेनाकी रक्षा करते हुए (अमित्रस्य मन्युं व्यथय) शत्रुके क्रोधका नाश कर। (आभिः) इनसे ही (अभियुजः विषूचीः दासीः विश्वाः विशः) हमला करनेवाली सब तरह विद्यमान शत्रुकी सब दास होने योग्य प्रजाओंका (आर्याय अव तारीः) आर्योंके हित करनेके लिये नाश कर ॥ २ ॥

१ मिथतीः स्पृधः अरिषण्यन् अमित्रस्य मन्युं व्यथय— हिंसक शत्रुसे युद्ध करनेवाली हमारी सेनाका संरक्षण करके शत्रुके क्रोधको कम पहुंचाओ। शत्रुका नाश कर।

२ अभियुजः विषूचीः दासीः विश्वाः विशः आर्याय अव तारीः— युद्ध करनेवाली चारों ओर फैली शत्रुकी सब दास करनेवाली सेना या प्रजाको आर्योंका हित करनेके लिये दूर कर, नाश कर पराभूत कर।

आर्य — श्रेष्ठ सज्जन आस्तिक धार्मिक। दास दस्यु घोर टटेरे घातपात करनेवाले शत्रु। आर्योंका रक्षण और दुष्टोंका निर्दालन करना चाहिये यह राज्यशासनका तत्त्व है।

[३] (२७५) हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ये जामयः उत अजामयः) जो हमारे संबंधी हों अथवा बाहरके दूसरे शत्रु हों (अर्वाचीनासः वनुषः) जो हमारे सम्मुख आकर हमारा नाश करनेके उद्यत होते हैं। (एषां शवांसि त्वं विथुरा) इन दोनों प्रकारके शत्रुओंके बलोंको तू नष्ट कर। तथा (वृष्ण्यानि जहि) उनके बलोंको पराभूत कर। (पराचः कृणुहि) दोनों प्रकारके शत्रुओंको भगा दो।

१ जामयः अजामयः अर्वाचीनासः वनुषः एषां शवांसि विथुरा— अपने जातिवाले अथवा पराये जो भी शत्रु हमारे ऊपर हमला करके हमारा नाश करनेके इच्छुक हैं, उनके बलोंको सत्वहीन निष्फल कर उनका नाश कर, उनको परास्त कर।

१ वृष्ण्यानि जहि— बलवती शत्रुसेनाका पराभव कर।

१ पराचः कृणुहि — शत्रुसेनाको दूर भगा दो।

यह युद्धनीति है।

[४] (२७६) (तनूरुचा तरुषि) जब शरीरसे तेजस्वी और परस्पर विरोधी होकर संग्राममें (यत् कृण्वैते) युद्ध करते हैं। (शूरः शरीरैः शूरं वा वनते) तब वीर अपने शरीरके अवयवोंके बलसे शत्रुके वीरका नाश करता है। (यत् तोके तनये वा गोषु अप्सु उर्वरासु) जब पुत्र पौत्र गौ पानी तथा उपजाऊ भूमिके लिये (क्रन्दसी) परस्पर विवाद करते हुए (वि ब्रवैते) झगडा करते हैं, तब युद्ध होते हैं। ॥ ४ ॥

१ तनूरुचा तरुषि यत् कृण्वैते शूरः शरीरैः शूरं वनते— शरीरसे तेजस्वी वीर जब युद्ध करते हैं तब एक वीर अपने शरीरके अवयवोंके सामर्थ्योंसे दूसरे शत्रुके वीरका नाश करता है।

५ नहि त्वा शूरो न तुरो न धृष्णु— र्न त्वा योधो मन्यमानो युयोध ।
इन्द्र नकिष्ट्वा प्रत्यस्त्येषां विश्वा जातान्यभ्यसि तानि ॥ २७७ ॥

६ स पत्यत उभयोर्नृम्णमयो— र्यदी वेधसः समिथे हवन्ते ।
वृत्रे वा महो नृवति क्षये वा व्यचस्वन्ता यदि वितन्तसैते ॥ २७८ ॥

७ अध स्मा ते चर्षणयो यदेजा— निन्द्र त्रातोत भवा वरूता ।
अस्माकासो ये नृतमासो अर्य इन्द्र सूरयो दधिरे पुरो न ॥ २७९ ॥

---

१ तोके तनये गोषु अप्सु उर्वरासु क्रन्दसी विह्वयेते— बालबच्चों गौवों जलप्रवाहों और उर्वरा भूमिके लिये विवाद बढता है तब झगडे होते हैं।

विवादके ये कारण हैं। यहांसे विवाद शुरू होता है। ऐसा शुरू हुआ विवाद आखिर युद्धसे समाप्त होता है। इसलिये प्रथम आपसिक विवाद न हो इसलिये प्रयत्न करना चाहिये।

[५] (२७७) हे इन्द्र! (त्वा शूरः नहि युयोध) तेरे साथ शूरवीर युद्ध नहीं करता। (तुरः न) त्वरासे आक्रमण करनेवाला भी तेरे साथ नहीं लडता। (धृष्णुः न) शत्रुका धर्षण करनेवाला वीर भी तुमसे नहीं युद्ध करता (मन्यमानः योधः त्वा न) युद्धमें घमंडी योद्धा भी तेरे साथ नहीं लडता। हे (इन्द्र) इन्द्र! (एषां त्वा नकिः प्रत्यस्ति) इन योद्धाओंमें कोई भी तेरा प्रतिस्पर्धी नहीं है। (विश्वा जातानि अभ्यसि) इन उत्पन्न हुए सामर्थ्योंका तू पराभव करता है। सबसे अधिक सामर्थ्य तुझमें ही है ॥ ५ ॥

कितना भी कोई शूर क्यों न हो वह तुम्हारे साथ लड नहीं सकता। जो तुम्हारे साथ लडेगा उसका पराभव होगा।

ऐसा तू सबसे अधिक समर्थ है इसलिये तू सबका प्रभु है।

१ त्वा शूरः न युयोध— शूर तुमसे युद्ध नहीं कर सकता।

२ त्वा तुरः न युयोध— त्वरासे आक्रमण करनेवाला तुमसे युद्ध नहीं कर सकता।

३ धृष्णुः त्वा न युयोध— शत्रुका धर्षण करनेवाला तुमसे युद्ध नहीं कर सकता।

४ मन्यमानः योधः त्वा न युयोध— घमंडी योद्धा भी तुमसे युद्ध नहीं कर सकता।

५ एषां नकिः त्वा प्रत्यस्ति— इनमेंसे कोई भी तेरे साथ प्रतिस्पर्धी नहीं है।

६ विश्वा जातानि अभ्यसि— सब शत्रुके सामर्थ्योंका तू पराभव कर सकता है।

शूरवीर ऐसे होने चाहिये तब राष्ट्र उन्नतिको प्राप्त होता है।

[६] (२७८) (महः वृत्रे वा नृवति क्षये वा) महान् शत्रुको रोकनेके युद्धमें अथवा नेता लोगोंके सुख घरमें रहने वालोंमें (यदि वितन्तसैते) जो दो मनुष्य अपना करते हैं (उभयोः सः नृम्णं पत्यते) उनके बीच वह मनुष्य बल प्राप्त करता है। (यदि समिथे वेधसः हवन्ते) कि जो यज्ञमें ज्ञानियोंको बुलाते हैं। या हवन करते हैं ॥ ६ ॥

अर्थात मनुष्य घरमें रहें या युद्धमें रहें जो उनमें परमेश्वरकी भक्ति करेगा वही विजयी होगा। अन्तिम विजय भक्त करेगा श्रेष्ठ होगा। अन्तिम विजय ईश्वरके भक्तका होगा।

[७] (२७९) (अध स्म) और भी हे (इन्द्र) इन्द्र! (ते चर्षणयः) जो तेरी प्रजा (यत् एजान् त्राता भव) जो डरसे कांपती है उनकी रक्षा कर। (उत वरूता) और उनका तारक हो। (अस्माकासः नृतमासः ये अर्यः) हमारे जो अतिशय श्रेष्ठ नेता मनुष्य हैं उनका तू संरक्षण कर। हे (इन्द्र) इन्द्र! (सूरयः नः पुरः दधिरे) जो ज्ञानी हमको आगे धारण करते हैं उनका भी रक्षण कर। जो हमें नेता करते हैं उनका भी रक्षण कर ॥ ७ ॥

जो भयभीत हुए हैं जो श्रेष्ठ नेता हैं जो विद्वान् हमारे अनुयायी हैं उन सबका संरक्षण कर।

१ ते चर्षणयः एजान् त्राता उत वरूता भव— जो डरसे कांपनेवाली प्रजा है उनका रक्षक और उद्धारक बन।

२ ये अस्माकासः नृतमासः अर्यः सूरयः नः पुरः दधिरे त्राता भव— जो हमारे श्रेष्ठ मनुष्य हैं जो ज्ञानी हमें नेता करते हैं उनका रक्षक तू बन।

इन सबका संरक्षण राज्यशासन द्वारा होना चाहिये।

८ अनु ते दायि मह इन्द्रियाय सत्रा ते विश्वमनु वृत्रहत्ये ।
अनु क्षत्रमनु सहो यजत्रे न्द्र देवेभिरनु ते नृषह्ये ॥ २८० ॥

९ एवा न स्पृधः समजा समत्स्विन्द्र रारन्धि मिथतीरदेवीः ।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो भरद्वाजा उत त इन्द्र नूनम् ॥ २८१ ॥

(मं. ६ सू. २६)

१ श्रुधी न इन्द्र ह्वयामसि त्वा महो वाजस्य सातौ वावृषाणाः ।
स यद् विशोऽयन्त शूरसाता उग्रं नोऽवः पार्ये अहन् दाः ॥ २८२ ॥

२ त्वां वाजी हवते वाजिनेयो महो वाजस्य गध्यस्य सातौ ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं तरुत्रं त्वां चष्टे मुष्टिहा गोषु युध्यन् ॥ २८३ ॥

[८] (२८०) (महे ते इन्द्रियाय अनु दायि) तुझ महान् वीरके पास प्रमुखशक्ति दी है। (वृत्रहत्ये ते विश्वं सत्रा अनु दायि) युद्धमें वृत्रासुरादि शत्रुओंको मारनेके लिये तुझे सब प्रकारसे संरक्षण दिया है। (क्षत्रं अनु दायि) तुझे क्षात्र बल दिया (सहः अनु दायि) शत्रुओंका पराभव करनेका बल तुझे दिया। हे (यजत्र) पूजनीय (इन्द्र) इन्द्र! (ते नृषह्ये देवेभिः अनु दायि) तुझे युद्धमें देवताओंने यह बल दिया ॥ ८ ॥

इन्द्रके पास यह सब बल इसलिये दिया है कि इससे वह जनताकी रक्षा करे सब शत्रुओंको दूर करे और जनताका सुयोग्य योगक्षेम चलावे। प्रजाका उत्तम रीतिसे रक्षण हो।

[९] (२८१) हे (इन्द्र) इन्द्र! (एवा नः स्पृधः) इस प्रकार तू हमारी सेनाको शत्रुसेनाका वध करनेके लिये (समत्सु समज) संग्रामोंमें प्रेरित कर। (मिथतीः अदेवीः रारन्धि) हिंसा करनेवाली राक्षसी शत्रुसेनाको हमारे लिये विनष्ट कर। (उत) और हे (इन्द्र) इन्द्र! (ते गृणन्तः भरद्वाजाः) तेरी स्तुति करनेवाले हम भरद्वाज (अवसा वस्तोः नूनं विद्याम) संरक्षणयुक्त घर अवश्य प्राप्त करें ॥ ९ ॥

हमारी सेना शत्रुकी सेनाके साथ युद्ध करे और शत्रुका पराभव करे, सब संग्रामोंमें हमारा विजय हो। राक्षसी सेनाका नाश हो। हम भरद्वाज लोग तेरे भक्त हैं इसलिये पर्याप्त धन जिसमें भरा रहता है ऐसा घर हमें प्राप्त हो।

यह संपूर्ण सूक्त शत्रुका पराभव करके अपना विजय हो और सब प्रकारकी निर्भयता हो जाय। इस विषयके निर्देश देता है। पाठक इसका इस दृष्टिसे विचार और मनन करें।

१ नः स्पृधः समत्सु समज— हमारी सेनाको सारे शत्रुओंपर युद्धोंमें हमला करनेके लिये प्रेरित कर।

२ अवसा वस्तो नूनं विद्याम— संरक्षणशक्तियुक्त घर हमें प्राप्त हो। घर सुरक्षित हों। उनपर शत्रुका आक्रमण न हो सके।

[१] (२८२) हे (इन्द्र) इन्द्र! (वावृषाणाः) बलवान होनेवाले हम (महः वाजस्य सातौ) बहुत अन्नकी प्राप्तिके लिये (त्वा ह्वयामसि) तुझे बुलाते हैं। (नः श्रुधि) हमारी इस प्रार्थनाको सुन (यद् विशः शूरसाता) जब प्रजाजन युद्धमें (सं अयन्त) जाते हैं, तब (पार्ये अहन्) कठिन दिनमें (नः उग्रं अवः दाः) हमें ऐसा उग्र संरक्षण दे कि जो शत्रुके लिये भयंकर प्रतीत हो ॥ १ ॥

१ पार्ये अहन्— संकटके पार होनेका दिन अंतिम, दिन जिस दिन युद्धका अन्तिम निर्णय होनेवाला है।

२ विशः शूरसाती सं अयन्त— जब सब प्रजाजन लोग जब युद्धमें जाते हैं तब हमें विशेष संरक्षण आवश्यक है।

[२] (२८३) (वाजी वाजिनेयः) बलवान वीर (गध्यस्य महः वाजस्य सातौ) ग्रहण करने योग्य अन्नकी प्राप्तिके लिये (त्वा हवते) तेरी प्रार्थना करता है। हे (इन्द्र) इन्द्र! (सत्पतिं तरुत्रं त्वां) सज्जनोंके पालक और दुर्जनोंका नाश करनेवाले ऐसे तेरी (वृत्रेषु) शत्रुका आक्रमण होनेपर सब प्रार्थना करता है। (मुष्टिहा) मुष्टिसे शत्रुका नाश करनेवाला (गोषु युध्यन् त्वां चष्टे) गौके लिये युद्ध करते हुए तेरी ओर ही देखता है ॥ २ ॥

३ त्वं कविं चोदयोऽर्कसातौ त्वं कुत्साय शुष्णं दाशुषे वर्क् ।
त्वं शिरो अमर्मणः पराहन्नतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन् ॥ २८४ ॥

४ त्वं रथं प्र भरो योधमृष्वमावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम् ।
त्वं तुग्रं वेतसवे सचाहन् त्वं तुजिं गृणन्तमिन्द्र तूतोः ॥ २८५ ॥

५ त्वं तदुक्थमिन्द्र बर्हणा कः प्र यच्छता सहस्रा शूर दर्षि ।
अव गिरेर्दासं शम्बरं हन् प्रावो दिवोदासं चित्राभिरूती ॥ २८६ ॥

६ त्वं श्रद्धाभिर्मन्दसानः सोमैर्दभीतये चुमुरिमिन्द्र सिष्वप् ।
त्वं रजिं पिठीनसे दशस्यन् षष्टिं सहस्रा शच्या सचाहन् ॥ २८७ ॥

७ अहं चन तत् सूरिभिरानश्यां तव ज्याय इन्द्र सुम्नमोजः ।
त्वया यत् स्तवन्ते सधवीर वीरास्त्रिवरूथेन नहुषा शविष्ठ ॥ २८८ ॥

वाजी वाजिनेयः— बलवान् वीर, वाजी- बलवान् वीर, वाजिनेयः— बलवान् धुरवीर, (वाजि-नी) सेनाका संचालन करनेवाला (वाजिनेय) सेना संचालन करता है, वह बड़ा (वाजी) बलवान् और अन्नवान् होता है। (युधि-दा) युद्धसे युद्ध करनेवाला। (गोषु युध्यन्) गौओंकी प्राप्तिके लिये वह शत्रुसे युद्ध करता है। सत्पतिः तरुत्रः ये दो आदर्श इसके सम्मुख हैं सज्जनोंका पालन और दुष्टोंका संहार करनेका आदर्श इसके सामने है।

गौके लिये युद्ध

गौके लिये युद्ध करनेका उल्लेख वारवार वेदमन्त्रोंमें आता है। गौओंकी चोरी कुछ शत्रु करते थे। उनको ढूंढना और उनसे गौवें वापस लाना यह एक बड़ा भारी कार्य रक्षकोंके लिये रहता था।

[३] (२८४) हे इन्द्र! (त्वं) तू (अर्क-सातौ) अन्न प्राप्तिके युद्धके लिये (कविं चोदयः) बुद्धिमान् कविको प्रेरित कर। (त्वं दाशुषे कुत्साय) तूने दाता कुत्सके लिये (शुष्णं वर्क्) शुष्ण असुरका वध किया। (त्वं अतिथिग्वाय) तूने अतिथिग्वके लिये (शंस्यं करिष्यन्) सुख देनेकी इच्छासे (अमर्मणः शिरः पराहन्) मर्महीन असुरका सिर काटा ॥३॥

[४] (२८५) हे इन्द्र! (तं योधं ऋष्वं रथं प्र भरः) उस युद्धसाधनरूप महान् रथको प्राप्त किया और (दशद्युं युध्यन्तं वृषभं) दस दिन युद्ध करनेवाले बलवान् वीरकी (आवः) रक्षा कर। (त्वं वेतसवे सचा तुग्रं अहन्) तूने वेतसुकी सहायता करनेके लिये तुग्र असुरको मारा। हे (इन्द्र) इन्द्र! (त्वं गृणन्तं तुजिं तूतोः) तूने स्तुति करनेवाले तुजिको बढाया ॥४॥

[५] (२८६) हे (इन्द्र) इन्द्र! (बर्हणा त्वं तत् उक्थं कः) शत्रुओंके हिंसक ऐसे तूने प्रशंसनीय कार्य किये। हे (शूर) वीर! (शता सहस्रा प्र दर्षि) सैकड़ों और हजारों शत्रुके वीरोंका नाश किया। (दासं गिरेः शम्बरं अव हन्) दस्यु अर्थात् हिंसक और पर्वतके किलेमें रहनेवाले शम्बरासुरका वध किया। (चित्राभिः ऊती दिवोदासं प्रावः) विलक्षण संरक्षणके साधनोंसे दिवोदासकी अच्छी तरह रक्षा की ॥५॥

[६] (२८७) हे (इन्द्र) इन्द्र! (श्रद्धाभिः सोमैः मन्दसानः) श्रद्धायुक्त कर्मोंसे और सोमरसोंसे आनन्दित हुए (त्वं दभीतये चुमुरिं सिष्वप्) तूने दभीतिके संरक्षण करनेके लिये चुमुरि असुरको सुला दिया अर्थात् मार डाला। (त्वं पिठीनसे रजिं दशस्यन्) तूने पिठीनसको राज्य देते हुए (शच्या षष्टिं सहस्रा सचा अहन्) अपनी शक्तिसे शत्रुके साठ हजार वीरोंको एक साथ मार डाला ॥६॥

[७] (२८८) हे (सधवीर) वीरोंसहित रहनेवाले (शविष्ठ) अतिशय बलवान् इन्द्र! (वीराः त्रिवरूथेन नहुषा त्वया) वीर और लोग तीनों लोकोंका रक्षण करनेवाले तेरसे दिये (यत् सुम्नं ओजः स्तवन्ते) सुख और बलकी प्रशंसा करते हैं। हे (इन्द्र) इन्द्र! (तव ज्यायः तत्) तेरा दिया वह श्रेष्ठ सुख और बलको (अहं च न सूरिभिः आनश्यां) मैं और सब ज्ञानी लोग भी प्राप्त करें ॥७॥

८ वयं ते अस्यामिन्द्र द्युम्नहूतौ सखायः स्याम महिन प्रेष्ठाः ।
प्रातर्दनिः क्षत्रश्रीरस्तु श्रेष्ठो घने वृत्राणां सनये धनानाम् ॥ २८९ ॥

(मं ६ सू २७)

१ किमस्य मदे किम्वस्य पीता—विन्द्रः किमस्य सख्ये चकार ।
रणा वा ये निषदि किं ते अस्य पुरा विविद्रे किमु नूतनासः ॥ २९० ॥

२ सदस्य मदे सद्वस्य पीता—विन्द्रः सदस्य सख्ये चकार ।
रणा वा ये निषदि सत् ते अस्य पुरा विविद्रे सदु नूतनासः ॥ २९१ ॥

३ नहि नु ते महिमनः समस्य न मघवन् मघवत्त्वस्य विद्म ।
न राधसोराधसो नूतनस्ये—न्द्र नकिर्ददृश इन्द्रियं ते ॥ २९२ ॥

४ एतत् त्यत् त इन्द्रियमचेति येनावधीर्वरशिखस्य शेषः ।
वज्रस्य यत् ते निहतस्य शुष्मात् स्वनाच्चिदिन्द्र परमो ददार ॥ २९३ ॥

---

[८] (२८९) हे (महिन) पूजनीय (इन्द्र) इन्द्र! (ते सखायः वयं) तेरे मित्र हम (अस्यां द्युम्नहूतौ) इस यज्ञके निमित्त किये स्तवनसे तुझे (प्रेष्ठाः स्याम) अत्यन्त प्रिय होवें। (प्रातर्दनिः) प्रतर्दनका पुत्र (क्षत्रश्रीः श्रेष्ठः अस्तु) क्षत्रश्री सबसे श्रेष्ठ हो। (वृत्राणां घने) शत्रुओंका वध करनेके लिये और (धनानां सनये) धनकी प्राप्तिके लिये वह श्रेष्ठ कर्म करे ॥ ८ ॥

इस सूक्तके आठों मंत्र अतिस्पष्ट हैं। वीरताको श्रेष्ठत्व देनेवाले वाक्य इनमें पाठक देख सकते हैं और वे शुभगुण अपनेमें धारण करके श्रेष्ठ बन सकते हैं।

[१] (२९०) (अस्य मदे इन्द्रः किं चकार) इसके हर्षमें इन्द्रने क्या किया? (किमु अस्य पीतौ) और इसके पीनेपर क्या किया? (अस्य सख्ये किं) इसके साथ मित्रता करनेपर इसने क्या किया? (अस्य निषदि रणाः वा ये पुरा) इसके पास जो लोग रहते हैं (ते किं विविद्रे) उन्होंने क्या प्राप्त किया। (नूतनासः किमु) इन नवीन मनुष्योंको भी क्या प्राप्त हुआ? ॥ १ ॥

[२] (२९१) (इन्द्रः अस्य मदे सत् चकार) इन्द्रने इसके आनन्दमें उत्तम कर्म किया (अस्य पीतौ सत्) इसके पान कर लेने पर भी उसने सत् कार्य किया (अस्य सख्ये सत्) इसके साथ मैत्री करनेपर भी उसने सत्कर्म ही किया (ये रणाः निषदि) जो इसके समाचारमें रहते हैं (पुरा ते सत् विविद्रे) उन्होंने पहिले भी सत्कर्म किये (नूतनासः सत् उ) इस प्रकार नवीन भी सत्कर्म ही करते हैं ॥ २ ॥

इन्द्र जैसा सत्कर्म करता है उस तरह सब मनुष्योंको सत्कर्म ही करने चाहिये।

[३] (२९२) हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र! (ते समस्य महिमनः नहि विद्म) तेरे समान दूसरे किसीकी महिमा हम नहीं जानते (नूतनस्य राधसोराधसः) तेरे संपूर्ण नवीन सिद्धिको और (इन्द्र) इन्द्र! (ते इन्द्रियं नकिः) तेरे सामर्थ्यको भी हममेंसे कोई जानता नहीं ॥ ३ ॥

इस तरह इन्द्र सबसे श्रेष्ठ है और महा सामर्थ्यवान् है। इसके संपूर्ण सामर्थ्यको कोई नहीं जान सकता।

[४] (२९३) हे इन्द्र! (वरशिखस्य शेषः अवधीः) जिस पराक्रम द्वारा तूने वरशिख नामक असुरके पुत्रोंका वध किया (ते एतत् त्यत् इन्द्रियं अचेति) तेरा वह पराक्रम प्रसिद्ध है। हे (इन्द्र) इन्द्र! (यत् शुष्मात्) जिस पराक्रमसे (निहतस्य वज्रस्य) प्रेरित वज्रके (स्वनात् चित् परमः ददार) आवाजसे ही बडा शत्रु विदीर्ण हुआ था ॥ ४ ॥

इन्द्रियं— इन्द्रकी शक्ति। इन्द्रकी शक्ति ऐसी बडी है।

५ वचीदिन्द्रो वरशिखस्य शेषो ऽभ्यावर्तिने चायमानाय शिक्षन्।
वृचीवतो यद्धरियूपीयायां हन् पूर्वे अर्धे भियसापरो दर्त् ॥ २९४ ॥
६ त्रिंशच्छतं वर्मिण इन्द्र साकं यव्यावत्यां पुरुहूत श्रवस्या।
वृचीवन्तः शरवे पत्यमानाः पात्रा भिन्दाना न्यर्थान्यायन् ॥ २९५ ॥
७ यस्य गावावरुषा सूयवस्यू अन्तरू षु चरतो रेरिहाणा।
स सृञ्जयाय तुर्वशं परादाद् वृचीवतो दैववाताय शिक्षन् ॥ २९६ ॥
८ द्वयाँ अग्ने रथिनो विंशतिं गा वधूमतो मघवा मह्यं सम्राट्।
अभ्यावर्ती चायमानो ददाति दूणाशेयं दक्षिणा पार्थवानाम् ॥ २९७ ॥
(मं. ६ सू. २८)
१ आ गावो अग्मन्नुत भद्रमक्रन् त्सीदन्तु गोष्ठे रणयन्त्वस्मे।
प्रजावतीः पुरुरूपा इह स्युरिन्द्राय पूर्वीरुषसो दुहानाः ॥ २९८ ॥

---

[५] (२९४) (इन्द्रः चायमानाय अभ्यावर्तिने शिक्षन्) इन्द्रने चयमानके पुत्र अभ्यावर्तीको ईप्सित धन देकर (वरशिखस्य शेषः अवधीत्) वरशिख असुरके पुत्रोंको मारा। (यत् हरियूपीयायां) जब इन्द्रने हरियूपीया नगरीके (पूर्वे अर्धे वृचीवतः हन्) पूर्व भागमें वृचीवान्को मारा। (अपरः भियसा दर्त्) तब दूसरा पुत्र तो डरसे ही विदीर्ण हुआ ॥ ५ ॥

ये सब नाम दुष्ट शत्रुओंके हैं। इन शत्रुओंका नाश करना और भद्र पुरुषोंको सुख बढ़ाना यह भाव यहां मुख्य है।

[६] (२९५) हे (पुरुहूत) बहुतों द्वारा प्रार्थित इन्द्र! (श्रवस्या शरवे पत्यमानाः) यशकी इच्छासे तेरी हिंसा करनेके उद्देश्यसे तेरे ऊपर हमला करनेवाले (वर्मिणः त्रिंशत् शतं वृचीवन्तः) कवचधारी तीन हजार वृचीवान्के समितियोंके (साकं यव्यावत्यां) एक साथ यव्यावतीमें (पात्रा भिन्दानाः न्यर्थानि आयन्) जिसकि पात्र जैसे तोडे जाते हैं वैसे उन सबको तुमने तोड दिया ॥ ६ ॥

[७] (२९६) (यस्य सूयवस्यू रेरिहाणा) कान्तिमान् सुन्दर तृणादिकी इच्छावाले पुनः पुनः चाटनेकी चाहते हुए (गावौ अन्तः चरतः) जिस इन्द्रके दो बैल क्षेत्रमें घूमते हैं। (स) वह इन्द्रने (वृचीवतः दैववाताय शिक्षन्) वृचीवान्के पुत्र दैववातको सुखी करते हुए (सृञ्जयाय तुर्वशं परादात्) सृञ्जयके आधीन तुर्वशको दे दिया ॥ ७ ॥

[८] (२९७) हे (अग्ने) अग्नि! (मघवा सम्राट् चायमानः अभ्यावर्ती) धनवान् सम्राट् चयमानके पुत्र अभ्यावर्तीने राजाने (रथिनः वधूमतः द्वयान् विंशतिं गाः) स्त्रियों सहित रथ और बीस गायें (मह्यं ददाति) मुझे दी। (पार्थवानां इयं दक्षिणा दूणाशा) राजाओंकी इस दक्षिणाको कोई नाश नहीं कर सकता ॥ ८ ॥

इस सूक्तमें कई नाम आये हैं और कई बातें वर्णन की हैं। इन सबका संदर्भ और संबंध देखकर मन्त्रोंका आशय निश्चित करना चाहिये। इन सबका आशय यही है कि शत्रुका नाश करना और अपना विजय हो ऐसा करना। मुख्यतः इसका आशय यह है।

गौओंका महत्त्व

[१] (२९८) (गावः आ अग्मन्) गायें हमारे घर आयें (उत भद्रं अक्रन्) और वे हमारा कल्याण करें। (गोष्ठे सीदन्तु) वे गोशालामें बैठें। (अस्मे रणयन्तु) और हमें आनन्दित करें, (इह पुरुरूपा प्रजावतीः पूर्वीः) इन गौओंमें अनेक रूप तथा अनेक बछडेवाली बहुतसी गायें (इन्द्राय उषसः दुहानाः स्युः) इन्द्रके लिये प्रातःकालमें दूध देनेवाली हों ॥ १ ॥

घरमें बहुतसी गौवें होनी चाहिये और दूध देनेवाली गौवें होनी चाहिये। सबेरे शीघ्र दूध दुहना चाहिये।

७ प्रजावतीः सूयवसं रिशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः।
मा वः स्तेन ईशत माघशंसः परि वो हेती रुद्रस्य वृज्याः ॥ ३०४ ॥

८ उपेदमुपपर्चन—मासु गोषूप पृच्यताम्।
उप ऋषभस्य रेत—स्युपेन्द्र तव वीर्ये ॥ ३०५ ॥

(म ६ सू. २१)

१ इन्द्रं वो नरः सख्याय सेपु—र्महो यन्तः सुमतये चकानाः।
महो हि दाता वज्रहस्तो अस्ति महामु रण्वमवसे यजध्वम् ॥ ३०६ ॥

दीर्घ कृणुथ) कृश और निस्तेजको हृष्टपुष्ट और सुंदर तेजस्वी रूपवाला बनाओ। हे (भद्रवाचः) कल्याणकारी वाणीयुक्त गौओं! (गृहं भद्रं कृणुथ) घरको कल्याणमय बनाओ। (सभासु बृहत् वयः उच्यते) सभाओंमें तुम्हारा महान् अन्न सबसे बड़ा माना जाता है ॥ ६ ॥

गायें अपने दूधसे मनुष्यको पुष्ट बनाती हैं। कृशको बलवान् बनाती हैं। निस्तेजको तेजस्वी बनाती हैं। घरको आनंद युक्त बनाती हैं। इसलिये सभाओंमें गौओंका अन्न सबसे उत्तम अन्न है ऐसा वर्णन किया जाता है।

[७] (१ ४) हे गौओ! तुम (प्रजावतीः सुयवसं रिशन्तीः) बछडोंसे युक्त होती सुन्दर घास भक्षण करो (सुप्रपाणे शुद्धाः अपः पिबन्तीः) सुखसे पीने योग्य जलस्थानमें निर्मल पानी पीनेवाली हो, (वः स्तेन मा ईशत) तुम चोरके आधीन न हो (अघशंसः मा) तुम पापीके आधीन न हो (वः रुद्रस्य हेतिः परि वृज्याः) तुम्हारेसे रुद्रका शस्त्र दूर रहे अर्थात् रुद्रका शस्त्र तुम्हें न काटे ॥ ७ ॥

गौवें बछडोंवाली हों सुन्दर घास खाती रहें, उत्तम जलाशयमें निर्मल पानी पीती रहें। उनको चोर चोरी न कर सके ऐसे सुरक्षित स्थानमें गौवें रहें। पापीके आधीन गौवें न हों। किसी निरंतर गौवोंकी मृत्यु न हो। सदा गायें आनंद प्रसन्न और सुरक्षित हों।

[८] (१ ५) (आसु गोषु) इन गौओंके दूधमें (इदं ऋषभस्य रेतः उप पृच्यताम्) यह बलवर्धक मसाला मिलाओ। हे इन्द्र! (तव वीर्ये उप) तेरे बलके बढानेके लिये सोमके रसमें यह दूध मिला दो ॥ ८ ॥

इन गौओंको यह बलवर्धक पदार्थ दो। इन गौओंके दूधमें यह मसाला बलवर्धनके लिये मिला दो। यह दूध सोमरसमें मिला दो और ऐसा तैयार किया हुआ सोमरस इन्द्रको अर्पण करो। उस रसको इन्द्र पीवे और उसमें इन्द्रका पराक्रम बढता जाय।

जो मनुष्य इस तरह दुग्धमिश्रित सोमरस पीयेगा उसके शरीरमें भी वीर्य बढेगा और वह बलवान् बनेगा।

[१] (१ १) (वः नरः) तुम्हारे नेता उस इन्द्रकी (सख्याय) मैत्रीके लिये (इन्द्रं महयन्तः सेपु) उस इन्द्रका यश गाते हुए उसकी सेवा करते हैं। (सुमतये) अच्छी बुद्धिकी (चकानाः) इच्छा करते हुए (वज्रहस्तः) वज्र धारण करनेवाला इन्द्र (महः दाता अस्ति) बड़ा धन देता है। इसलिये (रण्वं महां च अवसे यजध्वं) रमणीय और महान् ऐसे इन्द्रका अपनी रक्षाके लिये यजन करो ॥ १ ॥

१ सुमतये चकानाः नरः सख्याय इन्द्रं महयन्तः सेपुः— उत्तम बुद्धिकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले नेता वीर इन्द्रके साथ मित्रता करनेके लिये इन्द्रके गुणोंका वर्णन करते हैं और उसकी सेवा करते हैं। इन्द्रके गुणोंका वर्णन करनेसे सुमति प्राप्त होती है। किस समय क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये इसका ज्ञान होता है। अब इन्द्रकी सेवा करनेसे उसका कार्य करनेसे उसके मित्रता होती है।

२ वज्रहस्तः महः दाता असि— वज्रधारी वीर बड़ा धन देता है। वीर बड़ा दान करता है।

३ महां रण्वं अवसे यजध्वम्— उस बड़े रमणीय इन्द्रका यजन अपनी सुरक्षाके लिये करो। उसका यजन करनेसे यह यजनकर्ताओंकी सुरक्षा करता है।

५ न ते अन्तः शवसो धाय्यस्य वि तु बाबधे रोदसी महित्वा।
आ ता सूरिः पृणति तूतुजानो यूथेवाप्सु समीजमान ऊती ॥ ३१० ॥
६ एवेदिन्द्रः सुहव ऋष्वो अस्तूती अनूती हिरिशिप्रः सत्वा।
एवा हि जातो असमात्योजाः पुरू च वृत्रा हनति नि दस्यून् ॥ ३११ ॥

(मं. ६ सू. ३०)

१ भूय इद् वावृधे वीर्याय एको अजुर्यो दयते वसूनि।
प्र रिरिचे दिव इन्द्रः पृथिव्या अर्धमिदस्य प्रति रोदसी उभे ॥ ३१२ ॥
२ अधा मन्ये बृहदसुर्यमस्य यानि दाधार नकिरा मिनाति।
दिवेदिवे सूर्यो दर्शतो भूद् वि सद्मान्युर्विया सुक्रतुर्धात् ॥ ३१३ ॥

---

[५] (३१०) (ते अस्य शवसः अन्तः) तेरे इस बलका अन्त (न आपि) नहीं है। (रोदसी महित्वा) द्यावापृथिवी भी उस बलसे (तु वि बबाधे) कांपती है डरती है। (ता सूरिः तूतुजानः) उस बलसे ज्ञानी लोग सत्वर (ऊती समीजमान) संरक्षण प्राप्त करके यजन करते हुए (यूथा इव अप्सु) जिस प्रकार गौओंके समूह जलस्थानमें तृप्ती प्राप्त करते हैं। उस प्रकार (आ पृणति) तृप्त होता है ॥ ५ ॥

१ ते शवसः अन्तः न आपि— तेरे सामर्थ्यका अन्त नहीं है।

२ महित्वा रोदसी वि बबाधे— तेरे महत्वसे द्यावापृथिवी भी डरती है। द्यावापृथिवीको बाधा पहुंचती है।

३ तूतुजानः सूरिः ता ऊती समीजमानः आ पृणाति— सत्वर कार्य करनेवाला विद्वान् उन संरक्षणोंको सम्यक्तया प्राप्त होकर संतुष्ट होता है।

४ यूथा अप्सु इव— जिस तरह पशुओंका झुण्ड जलस्थानको प्राप्त करके तृप्त होता है।

[६] (३११) (एव अस्मा इन्द्रः सुहवः अस्तु) इस प्रकार महान् इन्द्र सुखसे बुलाने योग्य हो। (हरिशिप्रः) सुवर्णमय शिरस्त्राण धारण करनेवाला वीर (ऊती अनूती) संरक्षण करनेके अथवा संरक्षण न करनेकी अवस्थामें (सत्वा) वह बलवान् ही है। (एवा हि जातः) इस प्रकार प्रसिद्ध वह इन्द्र (असमाति ओजा) अनुपम तेज धारण करके (पुरु च वृत्रा हनति) बहुतसे शत्रुसैन्यका नाश करता है (दस्यून नि) और शत्रुओंका भी नाश करता है ॥ ६ ॥

१ अस्मा इन्द्रः सुहवः अस्तु— बलवान् इन्द्र सदा कार्य बुलानेपर सहज ही से आ जावे।

२ हरिशिप्रः ऊती अनूती सत्वा जातः— सुवर्णमय शिरस्त्राण धारण करनेवाला वह वीर हमारा संरक्षण करने या न करनेपर भी स्वयं निःसंदेह बलवान् ही है।

३ असमाति-ओजाः पुरु वृत्रा दस्यून् नि हनति— वह अप्रतिम बलवान् वीर बहुत शत्रुओं और दुष्टोंको नष्ट कर देता है।

[१] (३१२) (भूयः इत् वीर्याय वावृधे) बहुत बार पराक्रम करनेके लिये वह वीर बडा हो गया था। (एकः अजुर्यः इन्द्रः) वह एक ही अपराजित इन्द्र (वसूनि दयते) धनोंका देता है। और (दिवः पृथिव्याः प्र रिरिचे) द्युलोक और पृथ्वीसे भी बडा है (उभे रोदसी अस्य अर्धं इत् प्रति) दोनों द्यावापृथिवी इस इन्द्रका आधा भाग हैं ॥ १ ॥

१ वीर्याय-भूयः इत् वावृधे— पराक्रम करनेके लिए निःसंदेह वह वीर बारंबार उत्साहसे बढ जाता है।

२ एकः अजुर्यः इन्द्रः वसूनि दयते— वह एक ही तरुण इन्द्र धनोंको देता है।

३ दिवः पृथिव्याः प्र रिरिचे— वह इन्द्र द्युलोक और पृथिवीसे बहुत ही बडा है।

४ उभे रोदसी अस्य अर्धं इत् प्रति— दोनों द्युलोक और पृथिवी मिलकर इसके आधे भागके बराबर है।

[२] (३१३) (अध अस्य बृहत् असुर्यं मन्ये) इस समय इस इन्द्रके बडे बलको मैं मानता हूं। (यानि दाधार

> ३ अधा चिन्नू चिद् तदपो नदीनां यदाभ्यो अरदो गातुमिन्द्र ।
> नि पर्वता अद्मसदो न सेदु स्त्वया दृळ्हानि सुक्रतो रजांसि ॥ ११४ ॥
> ४ सत्यमित् तन्न त्वावाँ अन्यो अस्ती न्द्र देवो न मर्त्यो ज्यायान् ।
> अहन्नहिं परिशयानमर्णो ऽवासृजो अपो अच्छा समुद्रम् ॥ ११५ ॥

नकिः आ मिनाति) जिन कर्मोंको इन्द्र धारण करता है उनका कोई भी नाश नहीं कर सकता । (दिवेदिवे सूर्यः दर्शत भूत्) प्रतिदिन सूर्य दर्शनीय होता है । (सुकृतु सपांसि दर्सिष्ठा वि धात्) शोभन कर्म करनेवाले इन्द्रने भुवनोंको निर्माण किया है ॥ २ ॥

१ अस्य सुकृत् महतुर्य मन्ये— इस वीरका बडा काम यही है ऐसा मैं मानता हूँ ।

२ यानि दाधार नकिः आ मिनाति— जिन कर्मोंको यह वीर धारण करता है उनका नाश कोई कर नहीं सकता ।

३ दिवेदिवे सूर्यः दर्शतः भूत्— प्रतिदिन सूर्य दर्शनीय होकर उदित होता है । यह सब इन्द्रका ही प्रभाव है ।

४ सुकृतुः सपांसि दर्सिष्ठा वि धात्— उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्रने इस विश्वमें बडे बडे स्थानोंको भुवनोंका- निर्माण किया है । उसीका बनाया यह सब विश्व है ।

[३] (११४) हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अधा चित् नु चित्) आज भी और पहिले भी (नदीनां तत् अपः) नदियोंके जल- प्रवाहोंको (आभ्यः गातुं अरदः यत्) मार्ग खोदकर बना दिया । (अद्मसदः न) भोजनके लिये बैठनेवाले पुरुषोंकी तरह (पर्वताः निषेदुः) पर्वतोंको सुस्थिर किया । हे (सुक्रतो) शोभनकर्मकर्ता ! (त्वया रजांसि दृळ्हानि) तूने सब लोक सुदृढ किये हैं ॥ ३ ॥

१ नदीनां अपः आभ्यः गातुं यत् अरदः— नदियोंके जलप्रवाहोंको प्रवाहित होनेके लिये खोदकर मार्ग कर दिया । खोदकर नदीका मार्ग उत्तम बना दिया । नदी इस मार्गसे ही बहती रहे इसलिये खोदकर नदीके मार्गको ठीक करना चाहिये । नदीके मार्ग खोदकर ठीक करनेका काम यहाँ है ।

२ अद्मसदः न पर्वताः निषेदुः —भोजनके लिये जैसे बैठते हैं वैसे पर्वत अपने स्थानपर बैठे हैं । भोजनके लिये बैठे हुवे मनुष्य भोजन समाप्तितक उठते नहीं वैसे ये पर्वत स्थिर बैठे हैं ।

३ रजांसि त्वया दृळ्हानि— सब लोकोंको तूने सुदृढ बनाया है । ईश्वरने सब लोकलोकान्तर ठीक सुदृढ बनाये हैं ।

[४] (११५) हे (इन्द्र) इन्द्र ! (तत् सत्यं इत्) यह सब सत्य ही है कि (त्वावान् अन्यः देवः न अस्ति) तेरे समान दूसरा कोई देव नहीं है । (मर्त्यः न) और कोई मनुष्य भी नहीं है । (ज्यायान्) तुमसे अधिक भी कोई नहीं है । तूने (अर्णः परिशयानं अहिं अहन्) पानीपर सोनेवाले शत्रुको मार दिया । और (समुद्रं अच्छ अपः अवासृजः) समुद्रकी ओर पानीके प्रवाहोंको प्रवाहित किया ॥ ४ ॥

१ त्वावान् अन्यः देवः न अस्ति न मर्त्यः— ईश्वरके समान अथवा उससे अधिक न कोई देव है और न कोई मनुष्य है । तत् सत्यं— यह सिद्धान्त सत्य है ।

२ अर्णः परिशयानं अहिं अहन् समुद्रं अच्छ अपः अवासृजः — जलपर सोनेवाले अहि- कम न होने वाले शत्रुको तुमने मारा और समुद्रतक जलोंके प्रवाहोंको छोड दिया ।

यहां जलपर (अर्णः परिशयानं अहिं) सोनेवाले अहिको मारा ऐसा कहा है अहि का अर्थ कम न होनेवाला । निरुक्तकार अहि का अर्थ मेघ ' देते हैं । निघण्टुमें भी मेघ ही अर्थ है । पर मेघ जलपर सोता नहीं । जलपर सोनेवाला बर्फ है जो हिम देशोंमें हिमकालमें पानीका बर्फ बनकर एक स्तर जैसा पानीपर रहता है । इस कारण जलका प्रवाहित होना बंद होता है । सूर्य आनेपर उसकी उष्णतासे यह बर्फ पिघल जाता है और जलके प्रवाह (समुद्रं अच्छ अपः अव- सृजः) समुद्रतक वेगसे जाने लगे । उत्तरप्रदेशमें और उत्तरीय ध्रुवमें यह दृश्य दीखता है । अर्थात् पानीपर सोनेवाले बर्फके कारण होना और फिर पिघल जाना यह हिम प्रदेशमें होता है । हिमालयमें भी शीत ऋतुमें यह दृश्य कई स्थानोंपर दीखता है ।

५ त्वमपो वि दुरो विषूची— रिन्द्र दृळ्हमरुजः पर्वतस्य ।
राजाभवो जगतश्चर्षणीनां साकं सूर्यं जनयन् द्यामुषासम् ॥ ११६ ॥

(म ६, सू. ३१)

१ अभूरेको रयिपते रयीणा— मा हस्तयोरधिथा इन्द्र कृष्टीः ।
वि तोके अप्सु तनये च सूरे ऽवोचन्त चर्षणयो विवाचः ॥ ११७ ॥

२ त्वद् भियेन्द्र पार्थिवानि विश्वा ऽच्युता चिच्च्यावयन्ते रजांसि ।
द्यावाक्षामा पर्वतासो वनानि विश्वं दृळ्हं भयते अज्मन्ना ते ॥ ११८ ॥

३ त्वं कुत्सेनाभि शुष्णमिन्द्रा— ऽशुषं युध्य कुयवं गविष्टौ ।
दश प्रपित्वे अध सूर्यस्य मुषायश्चक्रमविवे रपांसि ॥ ११९ ॥

---

[५] (११६) हे (इन्द्र) इन्द्र! (त्वं अपः दुरः विषूचीः वि) तूने जलोंके द्वारोंको खोलकर चारों ओर जलप्रवाहोंको बहा दिया। (पर्वतस्य दृळ्हं अरुजः) पर्वतके दृढ भागको तोड दिया (जगतः चर्षणीनां) संसारकी प्रजाओंका (सूर्यं द्यां उषसं साकं जनयन्) सूर्यको द्युलोकको और उषाको एक साथ प्रकाशित किया और उनका (राजा अभवः) राजा हुआ ॥५॥

१ त्वं अपः दुरः विषूचीः वि— तूने जलोंके प्रवाहोंको चारों ओर बहाया। जलप्रवाहोंके द्वार बंद थे वे तूने खोल दिये और जलको बहाया। यह बर्फके पिघलनेसे हुआ है।

२ पर्वतस्य दृळ्हं अरुजः— पर्वतके सुदृढ भागको भी तोड दिया। पर्वत पर पडे बर्फकी तोडा अथवा उसको पिघलाया।

३ जगतः चर्षणीनां सूर्यं द्यां उषसं साकं जनयन् राजा अभवः— सब जगतके मनुष्योंके हितार्थ द्यु उषा और सूर्यको प्रकट किया और तू इस सबका राजा हुआ है। द्युलोक प्रकाशित किया उषाको निर्माण किया और सूर्यको जगा दिया। यह सूर्य उदित होनेपर बर्फ पिघली और जल प्रवाह बहने लगे और पर्वतपर पडे बर्फ भी पिघल गये। और पर्वत बर्फहीन हुए।

यह वर्णन हिम प्रदेशका है।

[१] (११७) हे (रयिपते) धनके स्वामी (इन्द्र) इन्द्र! (रयीणां एकः अभूः) तू सब धनोंका एक ही स्वामी है। (हस्तयोः कृष्टीः आ अधिथाः) तू अपने हाथोंमें सब प्रजाजनोंको रखता है। (विवाचः चर्षणयः अप्सु सूरे तोके तनये) विविध भाषा बोलनेवाले मनुष्य जलप्रवाहों तथा ज्ञानी पुत्रपौत्रके उत्कर्षके लिये (वि अवोचन्त) विशेष प्रकारसे चर्चा करते हैं ॥ १ ॥

१ त्वं रयीणां एकः अभूः— तू धनोंका एक ही स्वामी है।

२ हस्तयोः कृष्टीः आ अधिथाः— अपने हाथोंमें सब प्रजाजनोंको रखा है।

३ विवाचः चर्षणयः अप्सु सूरे तोके तनये वि अवोचन्त— विविध भाषा बोलनेवाले प्रजाजन जलप्रवाहों तथा ज्ञानी पुत्र पौत्रोंके उत्कर्ष करनेकी विशेष चर्चा करते हैं।

[२] (११८) हे इन्द्र! (त्वत् भिया) तेरे भयसे (अच्युता चित्) न हिलनेवाले (विश्वा पार्थिवानि रजांसि) सब पृथिवी स्थानीय और अन्तरिक्ष स्थानीय पदार्थ (च्यावयन्ते) कांपने लगते हैं। (ते आ-अज्मन्) तेरे आगमन होनेसे (द्यावा क्षामा पर्वतासः वनानि) द्युलोक पृथिवी पर्वत और वन तथा (विश्वं दृळ्हं) सब स्थिर वस्तुमात्र (भयते) भयभीत होता है ॥ २ ॥

[३] (११९) हे (इन्द्र) इन्द्र! (त्वं कुत्सेन अशुषं शुष्णं) तूने कुत्सके द्वारा शोषण न होनेवाले प्रबल शुष्ण असुरसे (अभि युध्य) युद्ध किया। (गविष्टौ कुयवं दश) गायोंके लिये किये संग्राममें कुयव नामक असुरका नाश किया। (अध प्रपित्वे) और युद्धमें तूने (सूर्यस्य चक्रं मुषायः) सूर्यके रथचक्रका हरण किया और (रपांसि अविवेः) दुष्टोंका वध किया ॥ ३ ॥

७ स सर्गेण शवसा तक्तो अत्यै—रप इन्द्रो दक्षिणतस्तुराषाट् ।
इत्था सृजाना अनपावृदर्थं दिवेदिवे विविषुरप्रमृष्यम् ॥ १२६ ॥

(म १ सू. ११)

१ य ओजिष्ठ इन्द्र तं सु नो दा मदो वृषन् स्वभिष्टिर्दास्वान् ।
सौवश्व्यं यो वनवत् स्वश्वो वृत्रा समत्सु सासहदमित्रान् ॥ १२७ ॥

२ त्वां ह्ती३न्द्रावसे विवाचो हवन्ते चर्षणयः शूरसातौ ।
त्वं विप्रेभिर्वि पणीँरशाय—स्त्वोत इत् सनिता वाजमर्वा ॥ १२८ ॥

३ त्वं ताँ इन्द्रोभयाँ अमित्रान् दासा वृत्राण्यार्या च शूर ।
वधीर्वनेव सुधितेभिरत्कै—रा पृत्सु दर्षि नृणां नृतम ॥ १२९ ॥

अनन्त अन्न और वीरता बढानेवालोंके साथ (सुविताय) सुख प्राप्तिके लिये (प्र याहि) आओ ॥ ४ ॥

[५] (१२६) (तुराषाट् सः इन्द्रः) हिंसकोंका पराभव करनेवाला यह इन्द्र (सर्गेण शवसा) सर्वदा उद्युक्त बलसे (अत्यैः तक्तः) सततगामी तेजस्वी अश्वोंसे युक्त हुआ (दक्षिणतः अपः इत्था सृजानाः) दक्षिण दिशामें पानीको इस प्रकार छोडनेवाला (अर्थं अनपावृत्) यन्तव्य स्थानरहित समुद्रको (दिवेदिवे अनपावृत विविषुः) प्रतिदिन पुनः आगमन न हो उस प्रकार व्याप्त करता है ॥ ५ ॥

[१] (१२७) हे (वृषन्) बलवान् (इन्द्र) इन्द्र! (यः ओजिष्ठः मदः स्वभिष्टिः दास्वान्) जो पुत्र अतिशय बलवान् स्तुति करनेवाला सुन्दर यज्ञ करनेवाला और इष्टदान देनेवाला हो ऐसा (तं नः सुदाः) वह पुत्र हमें अच्छी प्रकार देओ। (यः स्वश्वः समत्सु) जो घोडेपर सवार होकर संग्राममें (सौवश्व्यं वनवत्) शोभन अश्वोंके शत्रु समूहका नाश करे। और (वृत्रा अमित्रान् सासहत्) इन शत्रुओंका अतिशय पराभव करे ॥ १ ॥

१ यः ओजिष्ठः मदः दास्वान् तं नः सुदाः—जो बलवान् आनंद बढानेवाला उत्तम यज्ञ करनेवाला दाता पुत्र हो वैसा हमें पुत्र दे दो। हमारा पुत्र ऐसा हो।

२ यः स्वश्वः समत्सु सौवश्व्यं वनवत्—जो उत्तम घोडोंको पास रखता है और समरमें उत्तम घोडोंवाले शत्रुके वीरोंका पराभूत करता है तथा—

३ अमित्रान् वृत्रा सासहत्—शत्रुओंको तथा दुष्टोंको पराभूत करता है ऐसा पुत्र हमें प्राप्त हो।

[२] (१२८) हे (इन्द्र) इन्द्र! (त्वां हि विवाचः चर्षणयः) तुझे ही अनेक प्रकारकी स्तुति करनेवाले प्रजाजन (शूरसातौ अवसे हवन्ते) युद्धमें रक्षणके लिये बुलाते हैं। (त्वं विप्रेभिः) तूने मेधावी विप्रोंके साथ (पणीन् वि अशायः) पणियोंका वध किया। (त्वा ऊतः इत् सनिता वाजं अर्वा) तेरे द्वारा रक्षित ही भक्तिमान् पुरुष अन्न प्राप्त करता है ॥ २ ॥

[३] (१२९) हे (इन्द्र) इन्द्र! (त्वं) तूने (तान् उभयान् अमित्रान् वधीः) उन दोनों प्रकारके शत्रुओंका नाश किया। (दासा आर्या वृत्राणि च) अनार्य असुरोंका और धर्मोपासनधारी किन्तु आवरक ऐसे दोनों प्रकारके शत्रुओंको हे (शूर) शूरवीर! मारा। (नृणां नृतम पृत्सु) नेताओंमें अतिशय श्रेष्ठ नेता हे इन्द्र! संग्रामोंमें (वना इव) जिस प्रकार कुठार वृक्षोंको काटकर गिरा देता है उस प्रकार तूने (सुधितेभिः अत्कैः आ दर्षि) अच्छी तरह प्रयुक्त अपने आयुधोंसे शत्रुओंको काटा ॥ ३ ॥

१ त्वं दासा आर्या तान् उभयान् अमित्रान् वृत्राणि च वधीः—तुमने दास और आर्य इन दोनोंमें जो शत्रु थे, उन घातक शत्रुओंका वध किया।

२ नृणां नृतम! पृत्सु वना इव सुधितेभिः अत्कैः आ दर्षि—हे वीरोंमें श्रेष्ठ वीर! वनके वृक्षोंको काटने के समान तरह युद्धोंमें तीक्ष्ण शस्त्रोंसे तूने शत्रुओंको काटा।

४ स त्वं न इन्द्राकवाभिरूती सखा विश्वायुरविता वृधे भूः ।
स्वर्षाता यद्ध्वयामसि त्वा युध्यन्तो नेमधिता पृत्सु शूर ॥ १२० ॥

५ नूनं न इन्द्रापराय च स्या भवा मृळीक उत नो अभिष्टौ ।
इत्था गृणन्तो महिनस्य शर्मन् दिवि ष्याम पार्ये गोषतमाः ॥ १२१ ॥

(मं. ६ सू. ३४)

१ सं च त्वे जग्मुर्गिर इन्द्र पूर्वी—र्वि च त्वद् यन्ति विभ्वो मनीषाः ।
पुरा नूनं च स्तुतय ऋषीणां पस्पृध्र इन्द्रे अध्युक्थार्का ॥ १२२ ॥

२ पुरुहूतो यः पुरुगूर्त ऋभ्वाँ एकः पुरुप्रशस्तो अस्ति यज्ञैः ।
रथो न महे शवसे युजानो३ ऽस्माभिरिन्द्रो अनुमाद्यो भूत् ॥ १२३ ॥

३ न यं हिंसन्ति धीतयो न वाणी—रिन्द्रं नक्षन्तीदभि वर्धयन्तीः ।
यदि स्तोतारः शतं यत् सहस्रं गृणन्ति गिर्वणसं शं तदस्मै ॥ १२४ ॥

---

[४] (१२०) हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सः त्वं अकवाभिः ऊती) उस प्रकार तू प्रशंसनीय रक्षाओंसे (नः वृधे अविता भू) हमें वर्धमान होनेके लिये रक्षक हो। (विश्वायुः सखा) सर्वत्रगामी तू हमारा मित्र हो। (नेमधिता पृत्सु) पुरुषोंसे युक्त संग्राममें (युध्यन्तः स्वर्षाता) युद्ध करते हुए अपने रक्षणीय धनके लिये हे (शूर) पराक्रमवाले ! (यत् ह्वयामसि) जब हम बुलावें तब हमारा रक्षक हो ॥ ४ ॥

१ स त्वं अकवाभिः ऊती नः वृधे अविता भूः— वह तू और प्रशंसनीय रक्षणोंसे हमारे बढनेके लिये हमारा रक्षक हो।

२ विश्वायुः सखा— सर्व आयुतक हमारा मित्र हो।

३ पृत्सु नेमधिता युध्यन्तः स्वर्षाता— युद्धोंमें शत्रुका पराभव करनेवाला और युद्ध करनेवाले वीरोंके धनोंका रक्षक हो।

४ शूर ! यत् ह्वयामसि— हे वीर जब हम बुलावें तब तू हमारी सुरक्षाके लिये आ और हमारी रक्षा कर।

[५] (१२१) हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (नूनं नः स्या) आज हमारा ही हो (च अपराय) और अन्य समयमें भी हमारा ही हो। (उत न अभिष्टौ मृळीकः भव) और भी हमारे आगमन आनेपर तू सुख देनेवाला हो। (इत्था गृणन्तः) इस प्रकार स्तुति करते हुए (गोषतमाः महिनस्य) गौओंकी सेवा करनेवाले होकर महान् तेरे सम्बन्धी (दिवि पार्ये शर्मन्) प्रकाशमान दुःख और दुःखमें वर्तमान रहें ॥ ५ ॥

[१] (१२२) हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वे पूर्वीः गिरः सं जग्मुः) तुझे पहिलेसे बहुतसी स्तुतियाँ प्राप्त होती हैं। (त्वत् विभ्वः मनीषाः वि यन्ति) तेरे पास वैभवयुक्त स्तोताओंकी प्रार्थनायें जाती हैं। (पुरा नूनं च ऋषीणां स्तुतयः) पहले और इस समय भी ऋषियोंकी स्तुतियां (इन्द्रे अधि पस्पृध्रे) इन्द्रमें अधिक स्पर्धा करती हुई जाती हैं। (उक्थ अर्का) उसी प्रकार मन्त्र और पूजायें आदि भी उनके ही पास जाते हैं ॥ १ ॥

[२] (१२३) (पुरुहूतः पुरुगूर्तः ऋभ्वा एकः यः) बहुतोंसे बुलाया जानेवाला बहुतोंसे प्रशंसित महान्, प्रधानभूत इन्द्र (यज्ञैः पुरुप्रशस्तः अस्ति) यजनीय स्तोत्रों द्वारा बहुत प्रशंसनीय है। (इन्द्रः रथो न) इन्द्र रथकी तरह (महे शवसे युजानः) महान् बलके लिये स्तुतियोंसे युक्त होता हुआ (अस्माभिः अनुमाद्यः भूत्) हमारेसे सदा स्तवनीय है ॥ २ ॥

[३] (१२४) (यं इन्द्रं धीतयः न हिंसन्ति) जिस इन्द्रको यज्ञ आदि कर्म बाधा नहीं देते। (वाणीः न) स्तुतियां भी बाधाकारक नहीं होती। किन्तु (वर्धयन्तीः अभि नक्षन्ति) उस इन्द्रको बढाती हुई प्राप्त होती हैं। (गिर्वणसं यदि स्तोतारः गृणन्ति) स्तुतिसे सेवनीय उस इन्द्रकी सैकडों स्तोतागण स्तुति करते हैं। (यत् सहस्रं शतं अस्मै शं) यदि हजारों स्तुति करते हैं तो वे स्तोत्र इन्द्रको सुखकर होते हैं ॥ ३ ॥

४ अस्मा एतद् दिव्य१र्चेव मासा मिमिक्ष इन्द्रे न्ययामि सोमः ।
जनं न धन्वन्नभि सं यदापः सत्रा वावृधुर्हवनानि यज्ञैः ॥ २२५ ॥

५ अस्मा एतन्मह्याङ्गूषमस्मा इन्द्राय स्तोत्रं मतिभिरवाचि ।
असद् यथा महति वृत्रतूर्य इन्द्रो विश्वायुरविता वृधश्च ॥ २२६ ॥

(म० ६ सू० ३५)

१ कदा भुवन् रथक्षयाणि ब्रह्म कदा स्तोत्रे सहस्रपोष्यं दाः ।
कदा स्तोमं वासयोऽस्य राया कदा धियः करसि वाजरत्नाः ॥ २२७ ॥

२ कर्हि स्वित् तदिन्द्र यन्नृभिर्नॄन् वीरैर्वीरान् नीळयासे जयाजीन् ।
त्रिधातु गा अधि जयासि गोष्विन्द्र द्युम्नं स्वर्वद् धेह्यस्मे ॥ २२८ ॥

३ कर्हि स्वित् तदिन्द्र यज्जरित्रे विश्वप्सु ब्रह्म कृणवः शविष्ठ ।
कदा धियो न नियुतो युवासे कदा गोमघा हवनानि गच्छाः ॥ २२९ ॥

४ स गोमघा जरित्रे अश्वश्चन्द्रा वाजश्रवसो अधि धेहि पृक्षः ।
पीपिहीषः सुदुघामिन्द्र धेनुं भरद्वाजेषु सुरुचो रुरुच्याः ॥ २४० ॥

---

[४] (२२५) (एतत् दिवि) इस यज्ञके दिन (अर्चा इव मासा मिमिक्ष) अर्चनके साथ रहनेवाला मिश्रित (सोमः अस्मै इन्द्रे न्ययामि) सोमरस इस इन्द्रके लिये प्रस्तुत हुआ है। (धन्वन् अभि सं यत् आपः जनं) मरुस्थलमें जिस प्रकार अभिगमन करनेवाला पानी मनुष्योंको आनंदित करता है। उस प्रकार (यज्ञैः सत्रा हवनानि वावृधुः) यज्ञमें किये हवन भी उसको आनंदित करें ॥ ४ ॥

[५] (२२६) (अस्मै महि एतत् आङ्गूषं) इन्द्रके लिये महान् स्तोत्र (मतिभिः अवाचि) स्तोताओंने कहा। (विश्वायुः इन्द्रः महति वृत्रतूर्ये) सर्वत्रगामी यह इन्द्र महान् युद्धमें (यथा अविता वृधः च असत्) जिस प्रकार रक्षक और हमको वर्धित करनेवाला हो उस प्रकार (अस्मा इन्द्राय स्तोत्रं) इस इन्द्रके लिये स्तोत्र पढा गया है ॥ ५ ॥

[१] (२२७) हे इन्द्र ! (ब्रह्म रथक्षयाणि कदा भुवत्) हमारे स्तोत्र रथभिलाषक हेतु कब होवें। (कदा स्तोत्रे सहस्रपोष्यं दाः) कब स्तुति करनेवालेके हमें हजारों पुरुषोंका पोषक पुत्र या धन देंगे। (कदा अस्य स्तोमं राया वासयाः) और कब मेरे स्तोताके स्तोत्रको धनसे युक्त करोगे। (धियः वाजरत्नाः कदा करसि) हमारे बुद्धियुक्त कर्मोंको अन्नोंसे रमणीय कब करोगे ॥ १ ॥

[२] (२२८) हे (इन्द्र) इन्द्र ! (कर्हि स्वित् तत्) वह दिन कब होगा (नृभिः नॄन्) हमारे वीर पुरुषोंसे शत्रुके वीर पुरुषोंको (वीरैः वीरान्) हमारे वीर पुत्रोंसे शत्रुपुत्रोंको (यत् नीळयासे) कब संयुक्त करोगे। और (आजीन् जय) हम संग्रामोंमें हमारी जीत हो। (गोषु त्रिधातु गा अधि जयासि) गमनशील शत्रुओंमेंसे दूध दही और घी वाली गौओंको जीत लो। हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (स्वर्वत् द्युम्नं अस्मे धेहि) तेजस्वी धन हमें दे दो ॥ २ ॥

[३] (२२९) हे (इन्द्र) इन्द्र ! (कर्हि स्वित् तत्) वह कब होगा हे (शविष्ठ) अतिशय बलवान् इन्द्र ! (जरित्रे विश्वप्सु ब्रह्म कृणवः यत्) स्तोताके लिये बहुत अन्न दोगे और ज्ञान दोगे वह कब होगा ? (कदा धियः न नियुतः युवासे) कब हमारे कर्मों और स्तुतियोंको अपनेमें संयुक्त करोगे। (कदा गोमघा हवनानि गच्छाः) और कब गौओंके युक्त हवन करोगे ॥ ३ ॥

[४] (२३०) हे इन्द्र ! (सः जरित्रे गोमघा अश्वश्चन्द्राः वाजश्रवसः पृक्षः) तू स्तोताको गौरायक, अश्वोंसे आनन्द दाता कर्मोंसे गौरव अन्न (भरद्वाजेषु अधि धेहि) भरद्वाज करनेवालेको दे दो। (इन सुदुघां धेनुं) वे अब सुन्दर दूध देनेवाली गौको दे (इन्द्र) इन्द्र ! (पीपिहि) परिपुष्ट करें।

५ समा नून वृजनमन्यथा चि—च्छूरो यच्छक्र वि दुरो गृणीषे।
मा निरं शुक्रदुघस्य धेनो—राङ्गिरसान् ब्रह्मणा विप्र जिन्व ॥ १४१ ॥

(म० ६ सू० ३६)

१ सत्रा मदासस्तव विश्वजन्याः सत्रा रायोऽध ये पार्थिवासः।
सत्रा वाजानामभवो विभक्ता यद् देवेषु धारयथा असुर्यम् ॥ १४२ ॥

२ अनु प्र येजे जन ओजो अस्य सत्रा दधिरे अनु वीर्याय।
स्यूमगृभे दुधयेऽर्वते च क्रतुं वृञ्जन्त्यपि वृत्रहत्ये ॥ १४३ ॥

३ तं सध्रीचीरूतयो वृष्ण्यानि पौंस्यानि नियुतः सश्चुरिन्द्रम्।
समुद्रं न सिन्धव उक्थशुष्मा उरुव्यचसं गिर आ विशन्ति ॥ १४४ ॥

और (सुरथाः स्याम) सुन्दर रथवाले हों इस प्रकार आशिषसे युक्त हों ॥ ४ ॥

[५](१४१)(नून इमं अन्यथा चित्) इस समयके हमारे बाधक शत्रुका अन्य प्रकारसे भोजनादि ही नाश कर। हे (शक्र) शक्तिमान् इन्द्र! (शूरः वि दुरः) शौर्यसे युक्त तू शत्रु निरन्तर है। (यत् गृणीषे) जब हम श्रेष्ठ तेरा स्तवन करते हैं, (शुक्रदुघस्य धेनोः मा निरं) उस शुद्ध दूध देनेवाली गौके समान हम तुमसे दूर न हों। हे (विप्र) बुद्धिमान्! (आङ्गिरसान् ब्रह्मणा जिन्व) आंगिरसोंको ज्ञानसे प्रसन्न कर ॥ ५ ॥

आंगिरसः— अंगरस विद्याके जाननेवाला।

[१](१४२) हे इन्द्र! (तव मदासः सत्रा विश्वजन्याः) तेरे आनन्द सचमुच सब मनुष्योंके हितके लिये ही होते हैं। (अध पार्थिवासः ये रायः सत्रा) और पृथ्वीपरके सब धन समूह भी सच ही मनुष्योंके हितके लिये होते हैं। (वाजानां सत्रा विभक्ता अभवः) सच ही तू अन्नोंका दाता है। (यत् देवेषु असुर्यं धारयथाः) जिससे तू देवोंमें बीज बलको धारण करता है ॥ १ ॥

१ तव मदासः सत्रा विश्वजन्याः— तेरे आनन्द सब जनोंके हित करनेवाले हैं।

२ अध पार्थिवासः रायः सत्रा— और तेरे पृथ्वीपरके धन सचमुच आनन्द देनेवाले होते हैं।

३ वाजानां सत्रा विभक्ता अभवः— तू सब अन्नोंका दाता हुआ है। तू अन्न देता है।

४ देवेषु असुर्यं धारयथाः— तू देवोंमें बल रखता है।

[२](१४३)(अस्य ओजः जनाः अनु प्र येजे) इस इन्द्रके सामर्थ्यको मनुष्य हमेशा पूजता है। (वीर्याय सत्रा अनु दधिरे) वीर कर्म करनेके लिये ही मनुष्य वीर आगे करता है। (स्यूमगृभे दुधये) शत्रुओंको पकडकर हिंसा करनेके लिये (अर्वते च क्रतुं वृत्रहत्ये वृञ्जन्ति) शत्रुपर आक्रमण करनेवाले और शत्रुका नाश करनेवालेके लिये मनुष्य शुभ कर्म करते हैं ॥ २ ॥

१ अस्य ओजः जनाः अनु प्र येजे— इस वीरके सामर्थ्यका लोग सत्कार करते हैं।

२ वीर्याय सत्रा अनु दधिरे— इस वीरको वीरताके काम करनेके लिये आगे रखते हैं।

३ स्यूमगृभे दुधये अर्वते च वृत्रहत्ये क्रतुं वृञ्जन्ति— शत्रुको पकडकर उसका नाश करनेके लिये घोडेको युद्धभूमिमें लगानेके लिये मनुष्य शुभकर्मोंको करते हैं।

[३](१४४)(तं ऊतयः सध्रीचीः सश्चुः) उस इन्द्रके साथ संरक्षण शक्तियां रहती हैं। (वृष्ण्यानि पौंस्यानि नियुतः इन्द्रं) वीर कर्म बल और रथमें जोडे जाने घोडे भी उस इन्द्रके साथ रहते हैं। (समुद्रं न सिन्धवः) जिस तरह समुद्रमें नदियां प्राप्त होती हैं उस प्रकार (उक्थशुष्माः गिरः उरुव्यचसं आ विशन्ति) बलवाली स्तुतियां विस्तीर्ण व्यापक इन्द्रको प्राप्त होती हैं ॥ ३ ॥

१ तं ऊतयः सध्रीचीः सश्चुः— उस वीरके साथ संरक्षक सामर्थ्य रहते हैं।

२ वृष्ण्यानि पौंस्यानि नियुतः इन्द्रं— वीरतासे कर्म बल तथा रथके घोडे उस वीर इन्द्रके पास रहते हैं।

४ स रायस्खामुप सृजा गृणानः पुरुश्चन्द्रस्य त्वमिन्द्र वस्वः ।
पतिर्बभूथासमो जनाना—मेको विश्वस्य भुवनस्य राजा ॥ ३४५ ॥

५ स तु श्रुधि श्रुत्या यो दुवोयु—र्द्यौर्न भूमाभि रायो अर्यः ।
असो यथा नः शवसा चकानो युगेयुगे वयसा चेकितानः ॥ ३४६ ॥

(म ६ सू ३७)

१ अर्वाग्रथं विश्ववारं त उग्रे—न्द्र युक्तासो हरयो वहन्तु ।
कीरिश्चिद्धि त्वा हवते स्वर्वा—नृधीमहि सधमादस्ते अद्य ॥ ३४७ ॥

२ प्रो द्रोणे हरयः कर्माग्मन् पुनानास ऋज्यन्तो अभूवन् ।
इन्द्रो नो अस्य पूर्व्यः पपीयाद् द्युक्षो मदस्य सोम्यस्य राजा ॥ ३४८ ॥

३ आसस्राणासः शवसानमच्छे—न्द्रं सुचक्रे रथ्यासो अश्वाः ।
अभि श्रव ऋज्यन्तो वहेयु—र्नू चिन्नु वायोरमृतं वि दस्येत् ॥ ३४९ ॥

---

[४] (३४५) हे (इन्द्र) इन्द्र ! (गृणानः सः त्वं) स्तुत्यमान तू (पुरुश्चन्द्रस्य वस्वः रायः) बहुतोंको आनन्द देनेवाले निवासक धनको (नः उप सृज) हमारे लिये छोडो। (जनानां असमः पतिः बभूथ) तू अनुपम सर्वोत्कृष्ट सब प्राणियोंका स्वामी हुआ। (विश्वस्य भुवनस्य एकः राजा) संपूर्ण भुवनोंका तू एक ही अधिपति है ॥ ४ ॥

१ त्वं पुरुश्चन्द्रस्य वस्वः रायः नः उप सृज— तू तेजस्वी धनको पर्याप्त हमारे पास भेज दो।

२ जनानां असमः पतिः बभूथ— लोगोंका अनुपम स्वामी हो।

३ विश्वस्य भुवनस्य एकः राजा— सब भुवनोंका एक राजा तू ही हो।

[५] (३४६) हे इन्द्र ! (श्रुध्या तु भुवः) हमारे प्रार्थना सुननेवाले हुए। (यः दुवोयुः अस्य भूम रायः) जो तू हमारेसे सेवा करानेकी इच्छावाला ऋभुओंके अतिशय धनका (द्यौः न अभि) सूर्यकी तरह देते हो। (शवसा चकानः) बलसे चाहते हुए (युगे युगे) समय समयपर (वयसा चेकितानः यथा नः असः) जिस प्रकार पहिले हमारे लिये था वैसा ही अब भी हो ॥ ५ ॥

[१] (३) हे (उग्र) बलवान् वीर (इन्द्र) इन्द्र ! (युक्तासः हरयः) रथमें जोते हुए अश्व (ते विश्ववारं रथं अर्वाक् वहन्तु) तेरे सबके द्वारा प्रशंसनीय रथको हमारे समीप ले आवें। (हि स्वर्वान् कीरिः चित् त्वा हवते) क्योंकि आत्मज्ञानी भक्त तेरी स्तुति करता है और (अद्य ते सधमादः ऋधीमहि) हम आज तेरे साथ आनन्द अनुभवते हुए हम सिद्धिको प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

[२] (३४८) (हरयः नः कर्म प्रो अग्मन्) तेरे हरित वर्णवाले घोडे हमारे यज्ञके पास आते हैं और वे (पुनानासः द्रोणे ऋज्यन्तः अभूवन्) पवित्र करनेवाले सोमकलशोंमें रख जाते हैं। (पूर्व्यः इन्द्रः) पुरातन पूजे गये रहनेवाला (मदस्य सोम्यस्य राजा इन्द्रः) आनंददायक सोमका स्वामी इन्द्र (अस्य पपीयात्) इस सोमका पान करे ॥ २ ॥

[३] (३४९) (आसस्राणासः रथ्यासः अश्वाः ऋज्यन्तः) सर्वत्र गमन करनेवाले रथमें जोते हुए घोडे सुखपूर्वक जानेवाले होते हैं (सुचक्रे शवसानं इन्द्रं) और उत्तम चक्रवाले सुन्दर रथमें बैठे हुए बलवान् इन्द्रको (अभि श्रव वहेयुः) यज्ञके समीप ले आवें। (वायोः अमृतं चित् नु वि दस्येत्) अमरत्व देनेवाले सोमको वायुके बाद नाश न हो। अर्थात् इसके पीछे ही इन्द्र सोमका पान करे ॥ ३ ॥

४ वरिष्ठो अस्य दक्षिणामियर्ती—न्द्रो मघोनां तुविकूर्मितमः ।
यया वज्रिवः परियास्यंहो मघा च धृष्णो दयसे वि सूरीन् ॥ १५० ॥

५ इन्द्रो वाजस्य स्थविरस्य दाते—न्द्रो गीर्भिर्वर्धतां वृद्धमहाः ।
इन्द्रो वृत्रं हनिष्ठो अस्तु सत्वा ऽऽ ता सूरिः पृणति तूतुजानः ॥ १५१ ॥

(म १ सू. १८)

१ अपाश्चित उग्र नश्चित्रतमो महीं भर्षद् द्युमतीमिन्द्रहूतिम् ।
पन्यसीं धीतिं दैव्यस्य याम—ञ्जनस्य रातिं वनते सुदानुः ॥ १५२ ॥

२ दूराच्चिदा वसतो अस्य कर्णा घोषादिन्द्रस्य तन्यति ब्रुवाणः ।
एयमेनं देवहूतिर्ववृत्या—न्मद्र्य१गिन्द्रमियमृच्यमाना ॥ १५३ ॥

३ तं वो धिया परमया पुराजा—मजरमिन्द्रमभ्यनूष्यर्कैः ।
ब्रह्मा च गिरो दधिरे समस्मिन् महाँश्च स्तोमो अधि वर्धदिन्द्रे ॥ १५४ ॥

---

[४] (१५०) (वरिष्ठ तुविकूर्मितमः इन्द्रः) अत्यन्त श्रेष्ठ तथा अनेक कर्म करनेवाला इन्द्र (मघोनां अस्य दक्षिणां इयर्ति) धनवानोंके बीचमें भक्तको दक्षिणा देता है। हे (वज्रिवः) वज्रवान् इन्द्र! (यया अंहः परियासि) जिससे पाप दूर होते जाते हैं। हे (धृष्णो) धर्षक इन्द्र! (मघा सूरीन् वि दयसे) यह धन ज्ञानियोंको विशेष रूपसे आनन्दकारी हो ॥ ४ ॥

[५] (१५१) (इन्द्रः) इन्द्र (स्थविरस्य वाजस्य दाता) श्रेष्ठ अन्न तथा बलका देनेवाला है। (इन्द्रः वृद्धमहाः गीर्भिः वर्धतां) इन्द्र महान् तथा तेजवाला होता हुआ हमारी स्तुतियोंसे वर्धमान हो। (सत्वा इन्द्रः वृत्रं हनिष्ठः अस्तु) सत्वा‑वान् इन्द्र आवरक शत्रुका नाश करनेवाला हो। (सूरिः तूतुजानः ता आ पृणति) विद्वान् इन्द्र शीघ्रतासे धन भक्तोंको देते हैं ॥ ५ ॥

[१] (१५२) (चित्रतमः नः उग्रः अपात्) अत्यन्त आश्चर्यकारक इन्द्र हमारे इस पात्रसे पान करे। (महीं द्युमतीं इन्द्रहूतिं भर्षत्) विशेष तेजस्वी प्रार्थनाको वही इन्द्र प्राप्त करे। (दैव्यस्य जनस्य यामन्) दिव्य मनुष्यकी भी हुई (पन्यसीं धीतिं रातिं) स्तुत्य बुद्धिको तथा दानको (सुदानुः वनते) उत्तम दाता इन्द्र स्वीकार करें तथा सेवन करे ॥ १ ॥

१ चित्रतमः महीं द्युमतीं भर्षत्— आश्चर्यकारक कर्म करनेवाला वीर विशेष तेज धारण करता है।

२ सुदानुः दैव्यस्य जनस्य यामन् पन्यसीं धीतिं रातिं वनते— उत्तम दाता दिव्य मानवके प्रगतिमें स्तुत्य बुद्धि और दानकी भावनाको अनुभव करता है।

[२] (१५३) (अस्य कर्णा) इस प्रभुके कान (दूरात् चित् आ वसतः) दूरदेशसे भी सुनते हैं। (इन्द्रस्य ब्रुवाणः घोषात् तन्यति) इन्द्रकी स्तुति बोलता उच्च स्वरसे करता है। (देवहूतिः इयं ऋच्यमाना) देवकी यह स्तुति प्रेरणा करती हुई (एनं इन्द्रं) इस इन्द्रको (मद्र्यक् आ ववृत्यात्) हमारे समीप लाती है ॥ २ ॥

१ अस्य कर्णा दूरात् चित् आवसतः— इस प्रभुके कान दूरसे भी सुनते हैं।

२ इन्द्रस्य ब्रुवाणः घोषात् तन्यति— इन्द्रकी स्तुति ऊंचे स्वरसे की जाती है। प्रभुकी स्तुति उच्च स्वरसे गावो।

३ इयं देवहूतिः ऋच्यमाना एनं इन्द्रं मद्र्यक् आ ववृत्यात्— यह देवकी प्रार्थना शुभ प्रेरणा करती हुई इस इन्द्रको हमारे पास लाती है। प्रभुकी स्तुति प्रार्थना करनेवालेको शुभ प्रेरणा करती है और प्रभुको प्रार्थना करनेवालेके समीप लाती है।

प्रभुकी स्तुति उपासना करनेसे प्रभुकी समीपता अनुभवमें आती है।

[३] (१५४) हे इन्द्र! (पुराजां अजरं तं इन्द्रं) पुरातन परंतु जरारहित उस इन्द्रकी (वः परमया धिया अर्कैः) अत्यन्त उत्कृष्ट बुद्धिसे और अर्चनाओंसे मैं (अभ्य

४ वर्धाद् य यज्ञ उत सोम इन्द्र वर्धाद् ब्रह्म गिर उक्था च मन्म ।
वर्धाहैनमुषसो यामन्नक्तो–र्वर्धान् मासाः शरदो द्याव इन्द्रम् ॥ ३५५ ॥

५ एवा जज्ञान सहसे असामि वावृधान राधसे च श्रुताय ।
महामुग्रमवसे विप्र नून–मा विवासेम वृत्रतूर्येषु ॥ ३५६ ॥

(मं १ सू. १९)

१ मन्द्रस्य कवेर्दिव्यस्य वह्ने–र्विप्रमन्मनो वचनस्य मध्व॰ ।
अपा नस्तस्य सचनस्य देवे–षो युवस्व गृणते गोअग्रा ॥ ३५७ ॥

नूपि) उपासना करता हूं । (अस्मिन् इन्द्रे) इस इन्द्रमें (ब्रह्म गिरः सं दधिरे) श्रेष्ठ ज्ञान और वाणियां रहती हैं । (महान् सोमः च अपि वर्धत्) महान् यज्ञ भी उसीसे बढता है ॥ ३ ॥

१ पुराणी अजरं त इन्द्रं यः परमया धिया अर्कैः मम्यनूपि— पुरातन परंतु जरारहित उस इन्द्रकी आपकी श्रेष्ठ बुद्धि और अपने अर्चनाके साधनोंसे मैं उपासना करता हूं । ईश्वर पुरातन है, परंतु वह जरारहित अर्थात् सदा तरुण है । उसकी उपासना उत्तम बुद्धि तथा सब साधनोंसे करनी चाहिये ।

धी– बुद्धि कर्म । अर्क– अर्चनाका साधन ।

२ अस्मिन् इन्द्रे ब्रह्म गिरः सं दधिरे— इस इन्द्रमें ज्ञान और वाणियां मिलती हैं । प्रभुमें ज्ञान है और वाणी भी है । प्रभुमें हमारा ज्ञान और हमारी वाणियां मिलकर पहुंचती हैं । उपासनाके समय जो प्रभुकी प्रार्थना की जाती है उस समय अपना ज्ञान और अपनी वाणी उसमें समर्पित होती है ।

[४] (३५५) (यं इन्द्रं यज्ञः वर्धात्) जिस इन्द्रको यज्ञ बढाता है । (उत सोमः) और सोम भी बढाता है । (ब्रह्म वर्धात्) ज्ञान भी उसको बढाता है । (गिरः मन्म उक्था च) स्तोत्र और मननीय गान भी बढाते हैं । (एनं उषसः अक्तोः यामन् वर्धं) इस इन्द्रको उषा, रात्रि और प्रहर बढाते हैं । (मासाः शरदः द्यावः इन्द्रं वर्धान्) मास संवत्सर और दिन भी इन्द्रको बढाते हैं ॥ ४ ॥

प्रभुकी स्तुति गानेसे प्रभुकी महिमा बढती है । प्रभुकी स्तुतिसे ज्ञान बढता है हमारी वाणियां हमारे मननीय गान भी उसकी महिमाको बढाते हैं । इस प्रभुकी महिमाको प्रहर, रात्री तथा दिन महिने और वर्ष भी बढाते हैं ।

१ यज्ञः इन्द्रं वर्धात्— यज्ञ प्रभुकी महिमाको बढाते हैं ।

२ ब्रह्म इन्द्रं वर्धात्– ज्ञान प्रभुकी महिमाको बढाता है ।

३ गिरः मन्म उक्था च वर्धात्— हमारी वाणियां, हमारी मननशक्ति और हमारे स्तोत्र प्रभुकी महिमा बढाते हैं ।

४ एनं यामन्, उषसः अक्तोः, द्यावः मासाः शरदः वर्धान्— इस प्रभुकी महिमाको प्रहर, उषाकाल, रात्री दिन महिने वर्ष बढाते रहते हैं ।

अपनी वाणीसे प्रभुके गुणगान करो । और उसकी महिमाका गान करो ।

[५] (३५६) हे (विप्र) बुद्धिमान् (एव जज्ञान सहसे) इस प्रकार ज्ञात शत्रुओंको पराजित करनेके लिये (असामि वावृधानं महां उग्रं) बहुत बढे हुए महान् बलवान् (अद्य वृत्रतूर्येषु) आज युद्धोंमें (श्रुताय राधसे च अवसे) कीर्ति धन और रक्षणके लिये (आ विवासेम) हम आश्रय करते हैं ॥ ५ ॥

१ जज्ञानं सहसे, श्रुताय राधसे अवसे असामि वावृधानं महां उग्रं आ विवासेम— ज्ञात शत्रुको पराजित करनेके लिये तथा कीर्ति सिद्धि धन और सुरक्षाके लिये अद्वितीय बढे हुए महान् उग्र प्रचंड सामर्थ्यका हम आश्रय करते हैं ।

वीर अपने पास बडा सामर्थ्य रखे और अपने शत्रुओंका पराभव करे ।

[१] (३५७) (मन्द्रस्य कवेः दिव्यस्य) आनंद देने वाले दिव्य ज्ञान बढानेवाले (वह्नेः विप्रमन्मनः वचनस्य) श्रेष्ठ बुद्धि बढानेवाले प्रशंसनीय (तस्य सचनस्य) उस सेवनीय (मध्वः अपाः) हमारे मधुररसका पिओ । हे (देव) कान्तिमान् ! (गृणते गोअग्रा इषः युवस्व) स्तुति करनेवालेको गोयुक्त अन्नोंसे युक्त करो ॥ १ ॥

४ आ याहि शश्वदुशता ययाथे-न्द्र मह्ना मनसा सोमपेयम्।
उप ब्रह्माणि शृणव इमा नो ऽथा ते यज्ञस्तन्वे३ वयो धात् ॥ १६५॥

५ यदिन्द्र दिवि पार्ये यदृधग् यद्वा स्वे सदने यत्र वासि।
अतो नो यज्ञमवसे नियुत्वान् त्सजोषाः पाहि गिर्वणो मरुद्भिः ॥ १६६॥

(म ६ सू ४१)

१ अहेळमान उप याहि यज्ञं तुभ्यं पवन्त इन्दवः सुतासः।
गावो न वज्रिन् त्स्वमोको अच्छे-न्द्रा गहि प्रथमो यज्ञियानाम् ॥१६७॥

२ या ते काकुत् सुकृता या वरिष्ठा यया शश्वत् पिबसि मध्व ऊर्मिम्।
तया पाहि प्र ते अध्वर्युरस्थात् सं ते वज्रो वर्ततामिन्द्र गव्युः ॥ १६८॥

(त्वायता मनसा जोहवीमि) तेरी ओर मन लगानेवाले इस मनसे तुझे वारंवार बुलाते हैं। हे (इन्द्र) इन्द्र! (नः महे सुविताय आ याहि) हमारे विशेष कल्याणके लिये तू यहां आ ॥ ३ ॥

१ त्वायता मनसा जोहवीमि— तेरे ऊपर मन लगाकर तुम्हें वारंवार बुलाते हैं।

२ नः महे सुविताय आ याहि— हमारे विशेष कल्याण करनेके लिये तू हमारे समीप आ।

[४] (१६५) हे (इन्द्र) इन्द्र! (शश्वत् ययाथ) वारंवार तू यज्ञमें जाता है इसलिये (उशता मह्ना मनसा) इच्छा करता हुआ प्रबल मनसे (सोमपेयं आ याहि) सोम पानके स्थानपर आ जा। और (इमा नः ब्रह्माणि) हमारे इन स्तोत्रोंको (उप शृणव) पाससे सुन। (अथ यज्ञः) उसके बाद [illegible] (ते तन्वे वयः धात) तेरे शरीरके लिये सोम रस रूप अन्न देता ॥ ४ ॥

[५] (१६६) हे (इन्द्र) इन्द्र! (पार्ये दिवि यत्) दूर देश द्युलोकमें यदि तू रहता है (यद्वा स्वे सदने यत्र असि) अथवा यदि अपने घरमें अथवा जहाँ कहीं भी रहता है (अतः) वहाँसे आकर हे (गिर्वणः) स्तुतिके योग्य इन्द्र! (नियुत्वान् मरुद्भिः सजोषाः) अश्वोंके स्वामी और मरुतोंके साथ आनन्दसे रहनेवाला तू (नः अवसे यज्ञं पाहि) हमारी रक्षाके लिये यज्ञकी रक्षा कर ॥ ५ ॥

[१] (१६७) (अहेळमानः यज्ञं उप याहि) क्रोधरहित होकर हमारे यज्ञमें आओ (तुभ्यं सुतासः इन्दवः पवन्ते) तेरे लिये ये सोमरस शुद्ध हो रहे हैं। हे (वज्रिन्) वज्रधारी इन्द्र! (गावः न स्वं ओकः अच्छ) गौओंके समान तू सोम अपने स्थानमें जल्दीसे जाता है हे (इन्द्र) इन्द्र! (यज्ञियानां प्रथमः आ गहि) यजनीय देवोंमें मुख्य तू यहां आ ॥ १ ॥

१ अहेळमानः यज्ञं उप याहि— क्रोधरहित, शान्त चित्तसे यज्ञमें आ। यज्ञमें आनंदप्रसन्न होकर आना चाहिये। आनन्दप्रसन्न रहना योग्य है।

२ तुभ्यं सुतासः इन्दवः पवन्ते— तुम्हारे लिये— ये सोमरस छाने जा रहे हैं। रस छान कर ही योग्य है।

३ गावः स्वं ओकः न— गौवें जैसी अपने स्थानपर जाती हैं, इधर उधर नहीं भटकती उस तरह अपने स्थानपर जाना हरएकको योग्य है। अपने घरमें ही रहना योग्य है। दूसरेके घर रहना योग्य नहीं।

४ सोम रस भी उस तरह अपने पात्रमें रखे रहते हैं।

५ यज्ञियानां प्रथमः आ याहि— पूजनीयोंमें प्रथम स्थानमें पूजनीय होकर यहां आ। अधिक पूजनीय होकर सभामें सम्मानसे रहना योग्य है।

[२] (१६८) (या ते काकुत् सुकृता) जो तेरी जिह्वा है वह अच्छी बनी हुई है, (या वरिष्ठा) जो अत्यन्त श्रेष्ठ है। (यया मध्वः ऊर्मिं) जिससे मधुर रसकी ऊर्मियोंको तू (शश्वत् पिबसि तया पाहि) हमेशा पीता है, उससे सोमपान कर। (अध्वर्युः प्र अस्थात्) यज्ञका नेता अध्वर्यु खडा है। हे (इन्द्र) इन्द्र! (गव्युः ते वज्रः सं वर्तताम्) गौओंकी प्राप्ति करनेवाला तेरा वज्र शत्रुओंका नाश करे ॥ २ ॥

३ एष द्रप्सो वृषभो विश्वरूप इन्द्राय वृष्णे समकारि सोमः ।
एतं पिब हरिवः स्थातरुग्र यस्येशिषे प्रदिवि यस्ते अन्नम् ॥ ३६९ ॥
४ सुतः सोमो असुतादिन्द्र वस्या—नयं श्रेयाञ्चिकितुषे रणाय ।
एतं तितिर्व उप याहि यज्ञं तेन विश्वास्तविषीरा पृणस्व ॥ ३७० ॥
५ ह्वयामसि त्वेन्द्र याह्यर्वा—ङरं ते सोमस्तन्वे भवाति ।
शतक्रतो मादयस्वा सुतेषु प्रास्माँ अव पृतनासु प्र विक्षु ॥ ३७१ ॥

---

१ या ते सुकृता काकुत्, या वरिष्ठा यया मध्वः ऊर्मिं शश्वत् पिबसि तया पाहि— जो तेरी उत्तम बनी जिह्वा है जो श्रेष्ठ है जिससे तू मधुर रसकी लहरें पीता है, उससे हमारा रक्षण कर। जिह्वासे मधुर रस पीया जाय और उत्तम भाषणसे लोगोंका संरक्षण भी किया जावे। जिह्वाके दो कार्य हैं एक पीनेका कर्म है। जिह्वासे पौष्टिक मिष्ट रस पीये जाय। जिह्वाका दूसरा कार्य बोलनेका है। ऐसा बोला जाय कि जिस भाषणसे सज्जनोंका रक्षण होता रहे।

२ अध्वर्युः प्र अस्थात्— अध्वर्यु आगे बढ रहा है। (अध्वर इति यज्ञनाम ध्वरति हिंसाकर्मा तत्प्रतिषेधः) अध्वरका अर्थ हिंसा। जिसमें हिंसा नहीं है वह कर्म अध्वर कहलाता है। हिंसारहित कर्म जो करता है वह अध्वर्यु है। वह हिंसारहित कार्य करनेवाला प्रगति करता है। आगे बढता है।

३ ते गव्युः यज्ञः सं वर्ततां— तेरा गौओंका रक्षण करनेवाला यज्ञ सम्यक् रीतिसे रहो। यज्ञ गौओंका उत्तम संरक्षण करे। गौओंका संरक्षण करनेके लिये सब यज्ञ तैयार रखे जांय।

[३] (३६९) (द्रप्सः वृषभः विश्वरूपः एषः सोमः) रसवाला बलवान् और अनेक रूपोंवाला यह सोमरस (वृष्णे इन्द्राय) बलशाली इन्द्रके लिये (समकारि) अच्छी प्रकार तैयार किया है, हे (हरिवः) अश्ववान् (स्थातः) युद्धमें स्थिर रहनेवाले (उग्र) उग्र बलवान् इन्द्र ! (एतं पिब) इसको पी। (यस्य प्रदिवि ईशिषे) जिसका तू बहुत दिनोंसे स्वामी है। (यः ते अन्नं) जो तेरा अन्न ही है ॥ ३ ॥

१ एषः सोमः द्रप्सः वृषभः विश्वरूपः— यह सोम रस प्रवाही बलवर्धक और अनेक प्रकारके रूपोंवाला है।

२ यः सोमः अन्नं— जो सोम अन्न है। यह सोम बलवर्धक, उत्साहवर्धक पुष्टिदायक अन्न है।

३ वृष्णे इन्द्राय सं अकारि— बलवान् शत्रुनाशक वीर इन्द्रके पीनेके लिए यह उत्तम अन्न तैयार किया है। वीर यह पौष्टिक अन्न सेवन करें।

४ यस्य प्रदिवि ईशिषे, एतं पिब— जिस अन्नपर प्राचीन कालसे वीरका स्वामित्व है, वह अन्न रस वीर पीवे।

५ हरि-वः स्थातः उग्रः इन्द्रः— घोडोंको पास रखनेवाला युद्धमें स्थिर रहनेवाला उग्र वीर इन्द्र है। वीरमें ये लक्षण हों।

[४] (३७०) हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सुतः अयं सोमः) रस निकाला हुआ यह सोम (असुतात् वस्यान्) रस न निकाले हुए सोमसे श्रेष्ठ है (चिकितुषे रणाय श्रेयान्) तुम जैसे विद्वान्के लिये यह रस आनन्द देनेवाला और श्रेयस्कर है। हे (तितिर्वः) शत्रु विनाशक वीर ! (एतं यज्ञं उप याहि) इस यज्ञके पास आ। (तेन विश्वाः तविषीः आ पृणस्व) उससे संपूर्ण प्रकारके बलोंको पूर्ण रीतिसे प्रकट कर ॥ ४ ॥

१ अयं सुतः सोमः अ-सुतात् वस्यान्— यह सोम-रस रस न निकाले सोमसे अधिक श्रेष्ठ है।

२ चिकितुषे रणाय श्रेयान्— ज्ञानीको आनन्द देनेके लिये यह श्रेयस्कर है। ज्ञानी वीरको युद्ध करनेके समय यह रस पीना हितकर है।

३ हे तितिर्वः ! एतं यज्ञं उप याहि— हे शत्रुनाशक वीर ! तू यज्ञके पास आ। और इस यज्ञका संरक्षण कर।

४ तेन विश्वाः तविषीः आ पृणस्व— सब प्रकारके बलोंकी वृद्धि कर। अपनेमें सब प्रकारके बल बढाने चाहिये।

[५] (३७१) हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वा ह्वयामसि) तुझे हम बुलाते हैं (अर्वाङ् आ याहि) हमारे सामने आ (सोमः ते तन्वे) सोम तेरी शरीर पुष्टिके लिये (अरं भवाति) पर्याप्त है। हे (शतक्रतो) बहुत कर्म करनेवाले इन्द्र ! (सुतेषु मादयस्व)

(मं० ६, सू० ४२)

१ प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर।
अरंगमाय जग्मये ऽपश्चादघ्वने नरे ॥ ३७२ ॥

२ एमेनं प्रत्येतन सोमेभिः सोमपातमम्।
अमत्रेभिर्ऋजीषिण--मिन्द्रं सुतेभिरिन्दुभिः ॥ ३७३ ॥

३ यदी सुतेभिरिन्दुभिः सोमेभिः प्रतिभूषथ।
वेदा विश्वस्य मेधिरो धृषत् तंतमिदेषते ॥ ३७४ ॥

सोमरसका पान करके आनंदित हो। (पृतनासु अस्मान्) संग्राममें हमारी (प्र अव) रक्षा कर और (विक्षु प्र) सब प्रजाओंमें भी हमारी रक्षा कर ॥ ५ ॥

१ हे इन्द्र! त्वा हवामहे अर्वाङ् आयाहि— हे इन्द्र वीर! तुझे हम बुलाते हैं हमारे पास आ जाओ।

२ ते तन्वे सोमः अरं मवाति— तेरे शरीरके लिये सोम पर्याप्त है। सोमरससे शरीरकी पुष्टि और बल बढता है।

३ हे शतक्रतो! सुतेषु मादयस्व— हे सैकडों प्रशस्त कर्म करनेवाले वीर! सोमरससे आनन्द प्राप्त कर।

४ पृतनासु अस्मान् प्र अव— युद्धोंमें हमारी सुरक्षा कर। वीर सबकी सुरक्षा युद्धके समय करें।

५ विक्षु प्र अव— प्रजाजनोंका संरक्षण कर। प्रजामें किसी पर कोई आक्रमण कर रहा हो तो उस दुःखी प्रजाजनका रक्षण वीर करे।

सोमरस शरीरके लिये उत्तम अन्न है। यह शरीरका बल उत्साह और स्फूर्ति बढाता है। वीर इस रसको पीवें और अपना बल और उत्साह तथा स्फूर्ति बढावें और प्रजाजनोंका संरक्षण करें।

[१] (३७२) (पिपीषते विश्वानि विदुषे) रस पीनेकी इच्छावाले संपूर्ण ज्ञानी (अरंगमाय जग्मये) अन्ततक कार्यको पहुंचानेवाले गमनशील (अपश्चात् दघ्वने नरे) अग्रेसर नेता ऐसे (अस्मै) इस इन्द्रको (प्रति भर) भरपूर सोमरस अर्पण कर ॥ १ ॥

१ विश्वानि विदुषे अरंगमाय जग्मये अपश्चात् दघ्वने नरे अस्मै पिपीषते प्रति भर— सब प्रकारके ज्ञानी, कार्यके अन्ततक पहुंचनेवाले शत्रुपर आक्रमण करनेवाले पीछे न रहनेवाले अग्रेसर नेता ऐसे इस पीनेकी इच्छा करनेवाले वीरके लिये भरपूर रस दो।

वीर ऐसे हों कि जो ज्ञानी हों कार्यको पूर्ण रीतिसे समाप्त करनेवाले शत्रुपर विचारपूर्वक आक्रमण करनेवाले कभी पीछे न रहनेवाले, अग्रेसर और जनताको शुभ मार्गपर चलानेवाले हों।

अरंगमः— अन्ततक कार्यको पहुंचानेवाला। जग्मिः— शत्रुपर आक्रमण करनेवाला। अ-पश्चात्- पीछे न रहनेवाला।

[२] (३७३) हे ऋत्विजो! (सोमेभिः सोमपातमं एनं) सोमरसोंके साथ अतिशय सोम पीनेवाले इसके (आ प्रति एतन) पास जाओ। (सुतेभिः इन्दुभिः अमत्रेभिः) अभिषुत सोमरससे भरे हुए पात्रोंके साथ (ऋजीषिणं) बलशाली इसके समीप गमन करो ॥ २ ॥

इन्द्रके पास सोमरसके पात्रोंके साथ जाओ और उसको यथेच्छ सोमरस अर्पण करो। जिससे वह तृप्त होकर तुम्हारा संरक्षण करेगा।

[३] (३७४) (सुतेभिः इन्दुभिः सोमेभिः) रस निकाले तेजस्वी सोमरसोंसे (यदि प्रति भूषथ) जब तुम इसको तृप्त करते हैं, उस समय (मेधिरः विश्वस्य वेद) बुद्धिमान् वह इन्द्र तुम्हारी उन कामनाओंको जानता है और जानकर (धृषत् तं तं इत् एषते) शत्रुओंका धर्षण वह वीर उन उन कामनाओंको पूर्ण कराता है ॥ ३ ॥

१ मेधिरः विश्वस्य वेद धृषत् तं तं इत् एषते— बुद्धिमान सब जाननेवाला शत्रुका धर्षण करनेवाला उन उन इच्छाओंको पूर्ण करता है।

बुद्धिसे अनुयायियोंकी आकांक्षाएं जानना और शत्रुका नाश करके अनुयायियोंकी आकांक्षाएं पूर्ण करना वीरका कर्तव्य है।

४ अस्माअस्मा इदन्धसो ऽध्वर्यो प्र भरा सुतम् ।
कुवित् समस्य जेन्यस्य शर्धतो ऽभिशस्तेरवस्परत् ॥ १७५ ॥

(म ६ सू ४३)

१ यस्य त्यच्छम्बरं मदे दिवोदासाय रन्धयः । अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ १७६ ॥
२ यस्य तीव्रसुतं मदं मध्यमन्तं च रक्षसे । अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ १७७ ॥
३ यस्य गा अन्तरश्मनो मदे दृळ्हा अवासृजः । अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ १७८ ॥
४ यस्य मन्दानो अन्धसो माघोनं दधिषे शवः । अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ १७९ ॥

---

[४] (१७५) (अस्मा अस्मा इत्) इस इन्द्रके लिये ही हे (अध्वर्यो) ऋत्विक ! (अन्धस सुत प्रभर) अन्नरूप सोमरस भरपूर दे । (समस्य जेन्यस्य शर्धत) सब जीतने योग्य स्पर्धा करनेवाले शत्रुके (अभिशस्तेः) हिंसाकर्मसे (कुवित् अवस्परत्) अनेक बार हमारी रक्षा कर, हमारा पालन कर ॥ ४ ॥

१ समस्य जेन्यस्य शर्धतः अभिशस्तेः कुवित् अवस्परत्— सब पराजित करने योग्य स्पर्धा करनेवाले शत्रुके हिंसात्मक कर्मसे हमारी सुरक्षा अनेक बार करो ।

वीरोंका यही कर्तव्य है कि वे प्रजाकी सुरक्षा शत्रुओंसे करते रहें ।

[१] (१७६) हे इन्द्र ! तूने (यस्य मदे शम्बरं) जिसके पीनेसे उत्साह उत्पन्न होनेपर शम्बरासुरको (दिवोदासाय) दिवोदासका हित करनेके लिये (रन्धयः) विनष्ट किया । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्यत् सः अयं सोमः) वही यह सोम (ते सुतः पिब) तेरे लिये रस निकालकर रखा है यह पी ॥ १ ॥

१ यस्य मदे दिवोदासाय शंबरं रन्धयः— जिस सोमरसके पीनेसे उत्साह बढ गया और तूने दिवोदासका हित करनेके लिये शंबर असुरको मारा । वही यह सोम है ।

दिवोदासको शंबर असुर कष्ट दे रहा था । अतः दिवो राजकी सुरक्षा करनेके लिये इन्द्रने शंबर असुरका नाश किया । अपनी प्रजाकी सुरक्षा करनेके लिये राजाको ऐसा करना चाहिये यह उपदेश यहां है ।

शं-बर — (श) जलको (बरं) ऊपर ले जानेवाला मेघ । दिवो-दास — दिनका प्रकाशक इन्द्र । प्रकाश देनेवाले सूर्यको मेघ प्रतिबन्ध करता है । मेघको हटाकर सूर्य प्रकाश देने लगता है । निरुक्तकारका पक्ष यह इतिहासका करता है । दिवोदास नामक राजाका संरक्षण करनेके लिये शंबर नामक असुरका नाश इन्द्रने किया यह इतिहास पक्षका कथन है ।

बोध यह है कि शत्रुओंका नाश करके सज्जनोंका संरक्षण करना शासकका कर्तव्य है ।

[२] (१७७) हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यस्य तीव्रसुतं मदं) जिसका रस तीक्ष्ण है और उत्साहवर्धक है उस सोम रसका प्रातः (मध्यं च अन्तं) मध्याह्न और सायंकालमें (रक्षसे) तू संरक्षण करता है । यह सोमरस तेरे लिये तैयार किया है, उसका पान कर ॥ २ ॥

सोमरसका पान प्रातः, मध्यदिन और सायंकालमें किया जाता है ।

[३] (१७८) (यस्य मदे) जिस उत्साहवर्धक सोम रसका पान करनेपर (अश्मनः अन्तः) पत्थरके अन्दर रखी हुई (दृळ्हाः गाः) दृढ बन्धनसे बंधी हुई गौओंको (अव असृजः) तूने मुक्त किया । वह सोम तैयार करके तेरे लिये रखा है उसको तू पी ॥ ३ ॥

शत्रुने गौवें चुराकर कीलेमें बांधकर रखी थीं । इन्द्रने सोम रस पीकर शत्रुको परास्त करके उसके कीलेके द्वार खोले और गौवें मुक्त कर दीं । शासकको प्रजाजनोंके गौ आदि धन इसी तरह शत्रुओंको प्रतिबंध करके प्रजाजनोंको वापस मिलें ऐसा करना चाहिये ।

[४] (१७९) हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यस्य अन्धसः मन्दानः) जिस सोमरूपी अन्नके पीनेसे उत्साहित होता हुआ (माघोनं शवः दधिषे) बड़ा बल धारण करता है । वह सोम रस तुम्हारे लिये तैयार रखा है उसे पी । ॥ ४ ॥

सोमरस उत्तम बलवर्धक अन्न है । उसका सेवन करनेसे बल बढ़ता है और पान करनेसे उत्साह उत्पन्न होता है ।

(मं ६ सू. ४४) शंयुर्बार्हस्पत्यः

१ यो रयिवो रयिंतमो यो द्युम्नैर्द्युम्नवत्तम ।
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥ १८० ॥

२ यः शग्मस्तुविशग्म ते रायो दामा मतीनाम् ।
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥ १८१ ॥

३ येन वृद्धो न शवसा तुरो न स्वाभिरूतिभिः ।
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥ १८२ ॥

४ त्यमु वो अप्रहणं गृणीषे शवसस्पतिम् ।
इन्द्रं विश्वासाहं नरं मंहिष्ठं विश्वचर्षणिम् ॥ १८३ ॥

५ यं वर्धयन्तीद् गिरः पतिं तुरस्य राधसः ।
तमिन्न्वस्य रोदसी देवी शुष्मं सपर्यतः ॥ १८४ ॥

---

[१] (१८०) हे (रयिवः) धनवान् इन्द्र ! (यः रयिं-तमः) जो सोम अत्यंत शोभादायक है और (यः द्युम्नैः द्युम्नवत्तम) जो कान्तीसे अतिशय तेजस्वी है हे (स्वधापते) अपनी धारणाशक्तिके पालक ! (इन्द्र) इन्द्र ! (सः सोमः ते मदः अस्ति) वह सोम तेरे लिये आनंददायक है ॥ १ ॥

[२] (१८१) हे (तुविशग्म) बहुत आनंदी इन्द्र ! (यः शग्म) जो सुखदायी सोम (ते मतीनां रायः दामा) तेरी मतियोंको ऐश्वर्य देनेवाला है। हे (स्वधापते) अपनी धारणशक्तिके पालक ! (इन्द्र) इन्द्र ! (सः सोमः ते मदः अस्ति) वह सोम तेरे लिये आनंदकारक हो ॥ २ ॥

[३] (१८२) (येन वृद्धः न) जिससे बडा वीर होकर (स्वाभिः ऊतिभिः) अपनी संरक्षण शक्तियोंसे और (शवसा तुरः) अपने सामर्थ्यसे शत्रुओंका नाश शीघ्र करता है (सः सोमः ते मदः अस्ति) वह सोम तेरे लिये आनंदकारक हो ॥ ३ ॥

स्वाभिः ऊतिभिः शवसा तुरः— अपनी शक्तियोंसे और अपने बलसे वीर त्वरासे शत्रुका नाश करता है।

ऐसे वीर अपने राष्ट्रमें हों।

[४] (१८३) (वः) तुम्हारे लिये (अप्रहणं शवसः पतिं) सज्जनोंपर प्रहार न करनेवाले बलके पालक (विश्वा-साहं नरं) सब शत्रुओंका पराभव करनेवाले नेता (मंहिष्ठं विश्वचर्षणिं) अतिशय दाता सर्वज्ञ (त्यं उ इन्द्रं) उस इन्द्रकी (गृणीषे) स्तुति करो ॥ ४ ॥

१ अप्रहण्य (अ-प्र-हन) — किसीपर विना कारण प्रहार न करनेवाला

२ शवसः पतिं— बलके संरक्षक, बल बढानेवाले

३ विश्वासाहं— (विश्व-साहं) सब शत्रुओंका पराभव करनेवाले,

४ नरं— नेता, चालक, अग्रेसर, अग्रणी

५ मंहिष्ठ— बडा श्रेष्ठ, महान, दाता

६ विश्वचर्षणि— सबका उत्तम निरीक्षण करनेवाला, सब लोगोंका हित करनेवाला।

ऐसा जो वीर हो उसकी प्रशंसा करो। इस स्तुतिसे ये गुण तुम्हारे अंदर सुस्थिर होंगे।

[५] (१८४) (गिरः) ये स्तोत्र (तुरस्य राधसः पतिं) त्वरासे कार्य सिद्ध करनेवालोंके स्वामीको (यं इत्) जिस इन्द्रको बढाते हैं। (अस्य) इस इन्द्रके (तं इत् शुष्मं) उसी बलकी (देवी रोदसी नु सपर्यतः) द्युलोक और पृथ्वी सेवा करते हैं ॥ ५ ॥

१ गिरः तुरस्य राधसः पतिं यं इत्— स्तुति जोग त्वरासे कार्य सिद्ध करनेवालेका प्रभुत्व जो होता है, उसका उत्साह बढाते हैं। जो वीर त्वरासे उत्तम कार्य सिद्ध करता है उसकी प्रशंसा करनी योग्य है।

२ अस्य तं इत् शुष्मं देवी रोदसी सपर्यतः नु— इसके उस बलकी सेवा द्युलोक और पृथ्वी विनयसे करते हैं। वीरके पराक्रमकी प्रशंसा सब विश्व करता है।

६ तद् व उक्थस्य बर्हणेन्द्रायोपस्तृणीषणि ।
विपो न यस्योतयो वि यद् रोहन्ति सक्षित ॥ ३८५ ॥
७ अविदद् दक्षं मित्रो नवीयान् पपानो देवेभ्यो वस्यो अचैत् ।
ससवान् स्तौलाभिर्धौतरीभि-रुरुष्या पायुरभवत् सखिभ्यः ॥ ३८६ ॥
८ ऋतस्य पथि वेधा अपायि श्रिये मनांसि देवासो अक्रन् ।
दधानो नाम महो वचोभि-र्वपुर्दृशये वेन्यो व्यावः ॥ ३८७ ॥
९ द्युमत्तमं दक्षं धेह्यस्मे सेधा जनानां पूर्वीररातीः ।
वर्षीयो वयः कृणुहि शचीभि-र्धनस्य सातावस्माँ अविड्ढि ॥ ३८८ ॥

---

[६](३८५)(वः उक्थस्य तत् बर्हणा) तुम्हारे स्तोत्रोंकी यह विस्तृत महिमा है कि जो (इन्द्राय) इन्द्रके बल (उप स्तृणीषणि) बढाते हैं। (यस्य ऊतयः विपः न) जिसकी रक्षायें बुद्धिमानोंकी तरह श्रेष्ठ होती हैं। (यत् सक्षितः वि रोहन्ति) जिसमें एकत्र रहनेवाली रक्षायें बढती रहती हैं ॥ ६ ॥

१ वः उक्थस्य तत् बर्हणा इन्द्राय उपस्तृणीषणि— तुम्हारे स्तोत्रोंकी महिमा ऐसी है कि वे स्तोत्र इन्द्रका सामर्थ्य बढाते हैं। स्तोत्रोंसे वीरके सामर्थ्यका पता सबको लगता है।

२ यस्य ऊतयः विपः न— जिस वीरके संरक्षण सामर्थ्य ज्ञानी मनुष्यके समान कल्याण करनेवाले होते हैं।

३ यत् सक्षितः वि रोहन्ति— जो एकत्र रहनेवाले सुरक्षाके साधन बढते रहते हैं। जिसके पास सुरक्षाके साधन बढते रहते हैं वह वीर राष्ट्रकी सुरक्षा कर सकता है।

[७](३८६)(दक्षं अविदत्) बलवान् वीरको वह जानता है। (मित्रः नवीयान्) मित्र अत्यन्त नवीन तरुण (पपानः देवेभ्यः वस्यः अचैत्) रसपान करनेवाला विबुधोंको उत्तम धन देता है। (ससवान्) वीर्यवान् पुरुष (स्तौलाभिः धौतरीभिः) स्थूल समर्थ शत्रुको कंपानेवाला (सखिभ्यः) मित्रोंका (उरुष्या पायुः अभवत्) विशेष रक्षक होता है ॥ ७ ॥

१ दक्षं अविदत्— जो दक्ष रहता है उसको वह जानता है। दक्षतासे कार्य करनेवाला यह मनुष्य है यह परीक्षा करके जानना योग्य है।

२ नवीयान् मित्रः पपानः देवेभ्यः वस्यः अचैत्— नवीन मित्र रसपान करके विबुधोंको धन देता है। विबुधोंको धन देना चाहिये।

३ ससवान् धौतरीभिः स्तौलाभिः सखिभ्यः उरुष्या पायुः अभवत्— वीर्यवान् वीर शत्रुको कंपानेवाले विशाल साधनोंसे मित्रोंके लिये विशेष संरक्षक होता है। अपने पास बल विपुल हो तथा शत्रुका नाश करनेके साधन भी प्रमाणवाले हों उनसे सज्जनोंका उत्तम संरक्षण होता रहे।

दक्ष— समय योग्य प्रवीण चतुर कुशल सिद्ध दस तरह काम करनेवाला सत्वर उत्तम कार्य करनेवाला प्रामाणिक, सीधा।

उरुष्या— रक्षण करनेकी इच्छा। ससवान् वीर्यवान्।

[८](३८७)(ऋतस्य पथि वेधाः अपायि) सत्यके मार्गमें रहकर ज्ञानीने रक्षण किया है। (मनांसि श्रिये देवासः अक्रन्) मनोंको प्रसन्न रखनेके लिये विबुध यत्न करते हैं। (नाम महः वपुः दधानः) वह प्रसिद्ध वीर बडा शरीर धारण करके (वचोभिः वेन्यः) प्रशंसाओंसे प्रशंसित होकर (दृशये व्यावः) दर्शनार्थ प्रकट होवे।

१ ऋतस्य पथि वेधाः अपायि— सत्यके मार्गमें रह कर ज्ञानी मनुष्य अन्न प्राप्त करता है संरक्षण करता है। असत्य मार्गसे कभी नहीं जाता।

२ देवासः मनांसि श्रिये अक्रन्— विबुध लोग अपने मनोंको आनंदप्रसन्न करनेके लिये शुभ कर्म करते हैं।

३ महः वपुः दधानः वचोभिः वेन्यः दृशये व्यावः— बडा शरीर धारण करके प्रशंसाओंसे प्रशंसित होकर दर्शनके लिये प्रकट होता है। अपना शरीर व्यायामादिसे बडा करे, जिससे [illegible] पश्चात् दिखानेके लिये प्रकट होवे।

[९](३८८)(द्युमत्तमं दक्षं अस्मे धेहि) तेजस्वी बल हमारेमें स्थापित कर। (जनानां पूर्वीः अरातीः सेध)

*

२४ अयं द्यावापृथिवी वि ष्कभायदयं रथमयुनक् सप्तरश्मिम् ।
अयं गोषु शच्या पक्वमन्तः सोमो दाधार दशयन्त्रमुत्सम् ॥ ४०३ ॥

(म ६ सू ४५)

१ य आनयत् परावतः सुनीती तुर्वशं यदुम् । इन्द्रः स नो युवा सखा ॥ ४०४ ॥
२ अविप्रे चिद् वयो दधदनाशुना चिदर्वता । इन्द्रो जेता हितं धनम् ॥ ४०५ ॥
३ महीरस्य प्रणीतयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः । नास्य क्षीयन्त ऊतयः ॥ ४०६ ॥
४ सखायो ब्रह्मवाहसेऽर्चत प्र च गायत । स हि नः प्रमतिर्मही ॥ ४०७ ॥

[२४] (४०३) (अयं द्यावापृथिवी विष्कभायत्) इसने द्यावापृथिवीको स्थिर किया है। (अयं रथं सप्तरश्मिं अयुनक्) इसीने सूर्यके रथको सात किरणोंसे युक्त किया। (अयं सोमः गोषु अन्तः) इस सोमने ही गौओंके अन्दर (पक्वं शच्या दशयन्त्रं उत्सं दाधार) पक्व दूधको शक्तिसे परिपूर्ण करके स्थापित किया। जो दस इंद्रियोंसे सुशोभित शरीरको पुष्ट करता है ॥ २४ ॥

१ अयं द्यावापृथिवी विष्कभायत्— इसने द्युलोक और पृथिवीलोकको स्थिर किया।

२ अयं सप्तरश्मिं रथं अयुनक्— इसने सात किरणोंवाले रथको जोडा। सूर्यके किरणोंमें सात रंगके किरणोंको रखा।

३ अयं सोमः गोषु अन्तः पक्वं शच्या उत्सं दशयन्त्रं दाधार— इस सोमने गौओंके अन्दर पक्व दूध शक्तिसे युक्त होकर जैसा रखा वह दस इंद्रियोंवाले शरीरको परिपुष्ट करता है।

गौओंको खानेके लिये सोम नामकी घास और उनका दूध पीना चाहिये जिससे शरीर अच्छी तरह पुष्ट होता है।

[१] (४०४) (यः तुर्वशं यदुं) जो इन्द्र तुर्वश और यदु राजाओंको (सुनीती परावतः आनयत्) सुगमतासे दूर देशसे ले आया (युवा सः इन्द्रः नः सखा) वह तरुण इन्द्र हमारा मित्र हो ॥ १ ॥

सुनीति— उत्तम मार्गसे सुगमतासे।

[२] (४०५) (अविप्रे चित्) अज्ञानी पुरुषको भी वह इन्द्र (वयः दधत्) अन्न देता है। (इन्द्रः अनाशुना चित् अर्वता) इन्द्र जल्दी न चलनेवाले घोडे द्वारा भी (हितं धनं जेता) शत्रुओंका धन जीतता है ॥ २ ॥

ईश्वर ज्ञानी और अज्ञानी दोनोंको खानेके लिये अन्न देता है और जल्दी न दौडनेवाले घोडेसे भी शत्रुको परास्त करके उन शत्रुओंका धन जीतकर लाता है।

अविप्रः— अज्ञानी नास्तिक बुद्धिहीन।

अनाशु— शीघ्रतासे न दौडनेवाला सुस्त।

[३] (४०६) (अस्य प्रणीतयः महीः) इस इन्द्रकी प्रकृष्ट नीतियाँ महान् होती हैं (उत प्रशस्तयः पूर्वीः) और अतिशय प्रशस्त स्तुतियां भी बहुत हैं। (अस्य ऊतयः न क्षीयन्ते) इसकी रक्षायें भी कभी क्षीण नहीं होतीं ॥ ३ ॥

ईश्वरकी संचालक शक्तियां विशाल हैं। उसकी प्रशंसाएं भी अपूर्व होती हैं, प्राचीनकालसे उसकी प्रशंसाएं चली आती हैं। उसकी रक्षक शक्तियां भी कभी कम नहीं होतीं।

१ अस्य प्रणीतयः महीः— इसकी संचालक शक्तियां विशाल होती हैं।

२ अस्य प्रशस्तयः पूर्वीः— इसकी प्रशंसाएं प्राचीन कालसे चली आती हैं।

३ अस्य ऊतयः न क्षीयन्ते— उसकी रक्षा करनेकी कभी कम नहीं होती।

राजा अपनी प्रजाकी उन्नतिके लिये बडी बडी उत्तम योजनाएं प्रयोगमें लावे। और प्रजाके सुरक्षाके अनेक साधन तैयार रखे। उनमें कभी कमी होने न दे। ऐसे राजाकी सदा प्रशंसा होती रहेगी।

प्रणीतयः— प्रणीतिः-विशेष नीति, विशेष योजना।

[४] (४०७) हे (सखायः) मित्रो! (ब्रह्मवाहसे अर्चत प्र च गायत) मन्त्रोंसे स्तवनीय इन्द्रके लिये प्रशंसा करो और उसके स्तोत्रोंको गाओ। (सः हि नः मही प्रमतिः) वह इन्द्र हमें बडी बुद्धि प्रदान करनेवाला है ॥ ४ ॥

ब्रह्मवाहस् — मन्त्रसे जिसकी प्रशंसा होती है। ज्ञानपूर्वक जिसकी प्रशंसा करते हैं।

प्रमतिः— विशेष बुद्धिदाता।

ज्ञानसे जो प्रशंसा पाने योग्य होता है उसीका सत्कार करो और उसीके स्तुतिस्तोत्र गाओ। वही उत्तम संमति देता है।

५ त्वमेकस्य वृत्रहन्नविता द्वयोरसि । उतेदृशे यथा वयम् ॥ ४०८ ॥
६ नयसीद्वति द्विषः कृणोष्युक्थशंसिनः । नृभिः सुवीर उच्यसे ॥ ४०९ ॥
७ ब्रह्माणं ब्रह्मवाहसं गीर्भिः सखायमृग्मियम् । गां न दोहसे हुवे ॥ ४१० ॥
८ यस्य विश्वानि हस्तयोरूचुर्वसूनि नि द्विता । वीरस्य पृतनाषहः ॥ ४११ ॥
९ वि दृळ्हानि चिदद्रिवो जनानां शचीपते । वृह माया अनानत ॥ ४१२ ॥

---

[५] (४०८) हे (वृत्रहन्) शत्रुओंका नाश करनेवाले इन्द्र ! (त्वं एकस्य द्वयोः अविता असि) तू एक अथवा दोनों-का ही रक्षण करनेवाला है। ऐसा नहीं पर (उत ईदृशे यथा वयं) और भी अनेक मनुष्योंका तू ही रक्षक है और हम भी तेरेसे ही सुरक्षित हुए हैं ॥ ५ ॥

ईश्वर एक दोका ही रक्षक नहीं है परंतु सब मानवोंका वह रक्षक है और हम सबका संरक्षक है।

[६] (४०९) हे इन्द्र ! (इत् द्विषः अति नयसि) तू ही शत्रुओंको हमसे दूर करता है। अर्थात् उनका नाश करता है। (उक्थशंसिनः कृणोषि) अतः हमें तू प्रशंसा करनेवाले बनाता है। (नृभिः सुवीरः उच्यसे) अतः मनुष्योंद्वारा तुम उत्तम वीर कहा जाता है। अथवा तुम्हारे पास उत्तम वीर रहते हैं ॥ ६ ॥

१ द्विषः अति नयसि— तू शत्रुओंको दूर भगा देता है। शत्रुओंको भगा देना योग्य है। शत्रुओंका नाश करना योग्य है।

२ उक्थशंसिनः कृणोषि— तू भक्तोंको प्रशंसक बनाता है। तू ऐसा कर्म कर कि जिससे भक्त तुम्हारी प्रशंसा करें।

३ नृभिः सुवीर उच्यसे— तुमको मनुष्य उत्तम वीरोंसे युक्त महावीर कहें। तू ऐसा कर कि जिससे मनुष्य तुम्हें उत्तम वीर कहें।

[७] (४१०) (ब्रह्माणं ब्रह्मवाहसं सखायं ऋग्मियं) ज्ञानी ज्ञानपूर्वक स्तवनीय मित्रभूत प्रशंसनीय इन्द्रको (दोहसे गां न गीर्भिः हुवे) दुहनेके लिये गौकी तरह स्तुतियोंसे बुलाता हूँ ॥ ७ ॥

इन्द्र-प्रभु-ज्ञानी है ज्ञानपूर्वक उसकी स्तुति की जाती है, वह सबका सखा है सबसे प्रशंसनीय है। इस प्रभुकी ही सबको स्तुति करना उचित है। दोहनके समय गौको बुलाते हैं वैसा हम उस प्रभुको अपने पास बुलाते हैं।

दोहसे गां न'— दोहन करनेके समय गायको बुलाते हैं। प्रथम नाम लेते हैं और पश्चात् बुलाते हैं इस तरह प्रभु ज्ञानी है ज्ञानपूर्वक बुलाने योग्य है, वह सबका मित्र है प्रशंस-नीय है। इस रीतिसे उसकी स्तुति करके प्रभुको अपने पास हम बुलाते हैं। दोनोंका बुलाना समान रीतिसे होता है।

गौके दोहन कार्यमें भी गौके गुणोंका गायन करके उसके नामसे उसको बुलाते हैं। और बुलानेके समय भी मधुर भाषा-पसे बुलाते हैं। इससे दूध अधिक मिलता है।

परमेश्वरके गुणगानसे भी अपनेमें शुभगुणोंका संवर्धन होता है।

[८] (४११) (वीरस्य पृतनाषहः यस्य) वीर्यवान् शत्रुसेनाको पराजित करनेवाले उस इन्द्रके (हस्तयोः) हाथोंमें (विश्वानि द्विता वसूनि) सब दोनों प्रकारके धन हैं ऐसा (नि ऊचुः) कहते हैं ॥ ८ ॥

वह प्रभु वीर है, वह शत्रुको दूर करता है वह पृतना-षाहः है अर्थात् शत्रुकी सेनाका पूर्ण पराभव करनेवाला है। इस कारण इसके हाथमें सब प्रकारके गुप्त और प्रकट धन हैं ऐसा सब ज्ञानी कहते हैं।

१ वीरस्य पृतनाषाहः हस्तयोः विश्वानि वसूनि— वीर शत्रुसैनिकोंका पराभव करनेवालेके हाथोंमें सब प्रकारके धन रहते हैं।

२ द्विता वसूनि— धन दो प्रकारके होते हैं। एक वैयक्तिक धन और दूसरा सामूहिक धन। धन गुप्त और प्रकट ऐसे दो प्रकारके हैं।

[९] (४१२) हे (अद्रिवः) वज्रधारक इन्द्र ! (शचीपते) शक्तिमान् इन्द्र ! (जनानां दृळ्हानि चित् वि वृह) शत्रुओंके दृढ मजबूत पुरियोंको और बलोंका नाश कर। हे (अनानत) शत्रुओंसे अनम्र इन्द्र ! (मायाः) और उनकी कुटिलताओंका भी नाश कर ॥ ९ ॥

१६ इदं त्यत् पात्रमिन्द्रपान—मिन्द्रस्य प्रियममृतमपायि ।
मत्सद् यथा सौमनसाय देवं व्य१स्मद् द्वेषो युयवद् व्यंहः ॥ ३९५ ॥

१७ एना मन्दानो जहि शूर शत्रू—ञ्जामिमजामिं मघवन्नमित्रान् ।
अभिषेणाँ अभ्या१देदिशानान् पराच इन्द्र प्र मृणा जही च ॥ ३९६ ॥

१८ आसु ष्मा णो मघवन्निन्द्र पृ—त्स्व१स्मभ्यं महि वरिवः सुगं कः ।
अपां तोकस्य तनयस्य जेष इन्द्र सूरीन् कृणुहि स्मा नो अर्धम् ॥ ३९७ ॥

१९ आ त्वा हरयो वृषणो युजाना वृषरथासो वृषरश्मयोऽत्याः ।
अस्मत्राञ्चो वृषणो वज्रवाहो वृष्णे मदाय सुयुजो वहन्तु ॥ ३९८ ॥

---

[१६] (३९५) (इन्द्रपानं पात्रं) इन्द्रके पीने योग्य पात्रसे (इन्द्रस्य प्रियं त्यत् इदं अमृतं) इन्द्रको प्रिय यह अमृतरस (अपायि) इन्द्र पीये। (यथा सौमनसाय देवं मत्सत्) जिस प्रकार मनकी प्रसन्नताके लिये देव इन्द्रको आनन्द प्राप्त हो उस प्रकार यह पान करे। (द्वेषः अस्मत् अंहः वि युयवत्) द्वेष और पाप भी हमारेसे दूर हो जाय।

१ द्वेषः अंहः अस्मत् वि युयवत्— द्वेषभाव और पाप हमसे दूर हो।

[१७] (३९६) हे (मघवन्) धनवान् (शूर) शूरवीर! (एना मन्दानः) इससे आनन्दित होकर (जामिं अजामिं) ज्ञातिके और अज्ञातिके दोनों प्रकारके (अमित्रान् शत्रून्) अमित्र शत्रुओंको (जहि) मार। (अभिषेणान् आदेदिशानान्) हमारे सामने आये हुए आयुधोंको हमारे सामने फेंकनेवाले शत्रुओंको हे (इन्द्र) इन्द्र! (पराच प्र मृण च जहि) दूरसे ही मार और उनका पराभव कर ॥ १७ ॥

१ हे शूर मघवन्! एना मन्दानः जामिं अजामिं अमित्रान् शत्रून् जहि— इससे आनन्दित होकर स्वजातीके अथवा परजातिके आदत करनेवाले शत्रुओंको तू मार। शत्रु स्वजातीके हों अथवा परजातीके ही उनको मारना चाहिये। किसी भी शत्रुको जीवित रखना नहीं चाहिये।

२ अभि-षेणान् आदेदिशानान् पराचः प्रमृण जहि च— हमारे ऊपर सेना भेजनेवाले और हमारे नाशका आदेश देनेवाले शत्रुओंका दूरसे ही मार डाल और उनका पराभव करके उनको दूर कर।

इस प्रकार शत्रुओंका मारना और दूर करना राजाका कर्तव्य है

[१८] (३९७) हे (मघवन्) धनवान् (इन्द्र) इन्द्र! (नः आसु पृत्सु) हमें इन संग्रामोंमें (अस्मभ्यं महि सुगं वरिवः कः) हमको बडे सुखसे प्राप्त होनेवाले धनको दे। हे (इन्द्र) इन्द्र! (अपां तोकस्य तनयस्य) पुत्रोंको पुत्र और पौत्रोंके (जेषे सूरीन् नः अर्धं कृणुहि) हमारे लिये हमें विद्वान् और समृद्ध बनाओ। ॥ १८ ॥

१ नः आसु पृत्सु अस्मभ्यं महि सुगं वरिवः कः— हमें इन संग्रामोंमें सुखसे प्राप्त होनेवाला बडा धन प्राप्त हो ऐसा करो। संग्राममें हम विजयी हों और हमें सुखसे धन प्राप्त हो।

२ अपां तोकस्य तनयस्य जेषे नः सूरीन् अर्धं कृणुहि— हमें धन मिले बालबच्चोंका जय हो और हम विद्वान् हों और हमें समृद्धि प्राप्त हो।

मनुष्योंको यह इच्छा धारण करनी चाहिये।

[१९] (३९८) (त्वा) तुझे (वृषणः युजानाः) बलवान् स्वयं ही रथके साथ जुडनेवाले (वृषरथासः वृषरश्मयः) बलवान् रथके साथ रहनेवाले बलवान् रश्मिवाले (अस्मत्राञ्चः) सतत चलनेवाले हमारे समीप आनेवाले (वृषणः वज्रवाहः सुयुजः) वीर्यवान्, वज्रके समान तीक्ष्ण उत्तर जुडे हुए (हरयः) घोडे (वृष्णे मदाय आ वहन्तु) बलवर्धक आनंद प्राप्त करनेके लिये ले चलें ॥ १९ ॥

घोडे कैसे हों? घोडे (वृषणः) बलवान् हों (युजानाः) रथके साथ स्वयं जुड जानेवाले हों (वृष-रथासः) बलवान् रथके साथ रहनेवाले (वृष-रश्मयः) जिनकी रश्मियां भी मजबूत हैं, (अत्याः) वेगसे चलनेवाले (वज्रवाहः) वज्रको

२० आ ते वृषन् वृषणो द्रोणमस्थु- र्घृतप्रुषो नोर्मयो मदन्तः ।
इन्द्र प्र तुभ्यं वृषभिः सुतानां वृष्णे भरन्ति वृषभाय सोमम् ॥ ३९९ ॥

२१ वृषासि दिवो वृषभः पृथिव्या वृषा सिन्धूनां वृषभः स्तियानाम् ।
वृष्णे त इन्दुर्वृषभ पीपाय स्वादू रसो मधुपेयो वराय ॥ ४०० ॥

२२ अयं देवः सहसा जायमान इन्द्रेण युजा पणिमस्तभायत् ।
अयं स्वस्य पितुरायुधानी- न्दुरमुष्णादशिवस्य मायाः ॥ ४०१ ॥

२३ अयमकृणोदुषसः सुपत्नी- रयं सूर्ये अदधाज्ज्योतिरन्तः ।
अयं त्रिधातु दिवि रोचनेषु त्रितेषु विन्ददमृतं निगूळ्हम् ॥ ४०२ ॥

समान तीक्ष्ण (प्रु-प्रुषः) प्रगमतासे प्रुत जानेवाले (हरयः) घोडे हों। इन्द्रके घोडे ऐसे थे। घोडे पास रखनेवाले इस धर्मनसे घोड प्राप्त करें और अपने घोडोंको इस तरह सिखावें और रखें।

[२०] (३९९) हे (वृषन्) सामर्थ्यवान् वीर ! (वृषणः घृतप्रुषः ऊर्मयः न मदन्तः) बलवान् जलसे मिश्रित मधुर तरंगोंकी तरह आनन्दित ये रस (ते द्रोणे आ अस्थुः) तेरे पात्रमें रहे हैं। हे (इन्द्र) इन्द्र ! (वृष्णे वृषभाय तुभ्यं) समर्थ बलवान् वीर ऐसे तुझे (वृषभिः सुतानां सोमं प्र भरन्ति) पत्थरोंसे कूटकर निकाले ये रस ये सोम देते हैं ॥ २० ॥

[२१] (४००) (दिवः वृषा असि) तू द्युलोकका बलवान् वीर है। (पृथिव्याः वृषभः) पृथिवीका बलवान् आधार है। (सिन्धूनां वृषा) नदियोंको प्रेरणा करनेवाला है। (स्तियानां वृषभः) स्थावरोंका बलवान् बनानेवाला है। हे (वृषभ) परम बलवान् इन्द्र ! (वराय वृष्णे ते) श्रेष्ठ वीर्यवान् ऐसे तेरे लिये (स्वादुः रसः मधुपेयः इन्दुः) मधुर, प्रशस्त मीठा रस तैयार हो रहा है ॥ २१ ॥

इन्द्र द्युलोकका सामर्थ्यवान् वीर है पृथिवीका आधार है नदियोंका प्रेरक है स्थावरोंका बनानेवाला है। उस श्रेष्ठ वीरके लिये पीनेके हेतु यह मीठा रस तैयार हो रहा है।

[२२] (४०१) (देवः अयं इन्दुः) कान्तिमान् इस सोमने (इन्द्रेण युजा) मित्र इन्द्रके साथ (जायमानः) रहकर (पणिं सहसा अस्तभायत्) पणि असुरको बलसे रोका। (स्वस्य पितुः) अपने पितृरूपी (अशिवस्य आयुधानि मायाः अमुष्णात्) अशुभ शत्रुके आयुध और कुटिल योजनाओंका नाश किया ॥ २२ ॥

१ देवः अयं इन्दुः इन्द्रेण युजा जायमानः पणिं सहसा अस्तभायत्— यह तेजस्वी सोम इन्द्र वीरके साथ रहकर पणि असुरको बलसे रोकता है।

२ स्वस्य पितुः अशिवस्य आयुधानि मायाः अमुष्णात्— अपने पिता अशुभ शत्रुके आयुधोंको और उसकी कुटिल योजनाओंका नाश किया।

शत्रुको बलसे रोकना चाहिये उसके आयुध तथा उसकी दुष्ट योजनाओंको चलने नहीं देना चाहिये। इस प्रकारसे शत्रुका प्रतिकार करना चाहिये।

[२३] (४०२) (अयं उषसः सुपत्नीः अकृणोत्) इसने उषःकालोंको सुन्दर पतिसे युक्त किया। (अयं सूर्ये अन्तः ज्योतिः अदधात्) इसने सूर्यमण्डलके बीचमें तेजको रखा। (त्रिधातु अयं) तीन प्रकारकी धारक शक्तियोंसे युक्त यह (दिवि रोचनेषु त्रितेषु) द्युलोकमें तीनों तेजस्वी स्थानोंमें (निगूळ्हं अमृतं विन्दत) गुप्त रूपसे रहनेवाले अमृतको प्राप्त करता है ॥ २३ ॥

१ अयं उषसः सुपत्नीः अकृणोत्— इसने उषाओंको उत्तम पतिसे संयुक्त किया। इसके पीछे सूर्यका उदय हुआ।

२ अयं सूर्ये अन्तः ज्योतिः अदधात्— इसने सूर्यमें ज्योतिको रखा।

३ त्रिधातु अयं दिवि त्रितेषु रोचनेषु निगूळ्हं अमृतं विन्दत— तीन धारक शक्तियोंसे युक्त यह द्युलोकके तीन तेजस्वी स्थानोंमें गुप्त रहे अमृतको प्राप्त करता है।

२४ अयं द्यावापृथिवी वि ष्कभायदयं रथमयुनक् सप्तरश्मिम् ।
अयं गोषु शच्या पक्वमन्तः सोमो दाधार दशयन्त्रमुत्सम् ॥ ४०३ ॥

(मं ६ सू ४५)

१ य आनयत् परावतः सुनीती तुर्वशं यदुम् । इन्द्रः स नो युवा सखा ॥ ४०४ ॥
२ अविप्रे चिद् वयो दधदनाशुना चिदर्वता । इन्द्रो जेता हितं धनम् ॥ ४०५ ॥
३ महीरस्य प्रणीतयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः । नास्य क्षीयन्त ऊतयः ॥ ४०६ ॥
४ सखायो ब्रह्मवाहसेऽर्चत प्र च गायत । स हि नः प्रमतिर्मही ॥ ४०७ ॥

---

[२४] (४०३) (अयं द्यावापृथिवी विष्कभायत्) इसने द्यावापृथिवीको स्थिर किया है। (अयं रथं सप्तरश्मिं अयुनक्) इसीने सूर्यके रथमें सात किरणोंसे युक्त किया। (अयं सोमः गोषु अन्तः) इस सोमने ही गौओंके अन्दर (पक्वं शच्या उत्सं दशयन्त्रं दाधार) पक्व दूधको शक्तिसे परिपूर्ण करके स्थापित किया। जो दस इंद्रियोंसे सुशोभित शरीरको पुष्ट करता है ॥ २४ ॥

१ अयं द्यावापृथिवी विष्कभायत्— इसने द्युलोक और पृथिवीलोकको स्थिर किया।

२ अयं सप्तरश्मिं रथं अयुनक्— इसने सात किरणों-वाले रथको जोता। सूर्यके किरणोंमें सात रंगके किरणोंको रखा।

३ अयं सोमः गोषु अन्तः पक्वं शच्या उत्सं दशयन्त्रं दाधार— इस सोमने गौओंके अन्दर पक्व दूध शक्तिसे युक्त होकर वैसा रखा, वह दस इंद्रियोंवाले शरीरको परिपुष्ट करता है।

गौओंको खानेके लिये सोम आदि दी जाय और उनका दूध पीया जाय जिससे शरीर अच्छी तरह पुष्ट होता है।

[१] (४०४) (यः तुर्वशं यदुं) जो इन्द्र तुर्वश और यदु राजाको (सुनीती परावतः आनयत्) सुगमतासे दूर देशसे ले आया (युवा सः इन्द्रः नः सखा) वह तरुण इन्द्र हमारा मित्र हो ॥ १ ॥

सुनीति— उत्तम मार्गसे सुगमतासे।

[२] (४०५) (अविप्रे चित्) अज्ञानी पुरुषको भी वह इन्द्र (वयः दधत्) अन्न देता है। (इन्द्रः अनाशुना चित् अर्वता) इन्द्र जल्दी न जानेवाले घोडे द्वारा भी (हितं धनं जेता) अनुकूल धन जीतता है ॥ २ ॥

ईश्वर ज्ञानी और अज्ञानी दोनोंको खानेके लिये अन्न देता है और जल्दी न दौडनेवाले घोडेसे भी शत्रुको परास्त करके उन शत्रुओंका धन जीतकर लाता है।

अविप्र— अज्ञानी, नास्तिक बुद्धिहीन।

अनाशु— शीघ्रतासे न दौडनेवाला सुस्त।

[३] (४०६) (अस्य प्रणीतयः महीः) इस इन्द्रकी प्रशस्त नीतियाँ महान् होती हैं (उत प्रशस्तयः पूर्वीः) और अतिशय प्रशस्त स्तुतियां भी बहुत हैं। (अस्य ऊतयः न क्षीयन्ते) इसकी रक्षायें भी कभी क्षीण नहीं होतीं ॥ ३ ॥

ईश्वरकी संचालक शक्तियां विशाल हैं। इसकी प्रशंसाएं भी अपूर्व होती हैं, प्राचीनोंसे इसकी प्रशंसाएं चली आती हैं। इसकी रक्षक शक्तियां भी कभी कम नहीं होतीं।

१ अस्य प्रणीतयः महीः— इसकी संचालक शक्तियां विशाल होती हैं।

२ अस्य प्रशस्तयः पूर्वीः— इसकी प्रशंसाएं सनातन कालसे चली आती हैं।

३ अस्य ऊतयः न क्षीयन्ते— इसकी रक्षा साधनें भी कभी कम नहीं होतीं।

राजा अपनी प्रजाकी उन्नतिके लिये बडी बडी नाना योजनाएं प्रयोगमें लावे। और प्रजाके सुरक्षाके अनेक साधन सदा तैयार रखे। इनमें कभी कम होने न दे। ऐसे राजाकी सदा प्रशंसा होती रहेगी।

प्रणीतयः— प्रणीति–विशेष नीति विशेष योजना।

[४] (४०७) हे (सखायः) स्तोताओ! (ब्रह्मवाहसे अर्चत च प्र गायत) मन्त्रोंसे स्तवनीय इन्द्रके लिये प्रशंसा करो और उसके स्तोत्रोंको गाओ। (स हि नः मही प्रमतिः) वह इन्द्र हमें बडी बुद्धि प्रदान करनेवाला है ॥ ४ ॥

ब्रह्मवाहाः— मन्त्रसे जिसकी प्रशंसा होती है। ज्ञान पूर्वक जिसकी प्रशंसा करते हैं।

प्रमतिः— विशेष बुद्धिदाता।

ज्ञानसे जो प्रशंसा पाने योग्य होता है उसीका सत्कार करो और उसीके स्तुतिस्तोत्र गाओ। वही सबको उत्तम संमति दे सकता है।

५ त्वमेकस्य वृत्रहन्नविता द्वयोरसि	। उतेदृशे यथा वयम् ॥ ४०८ ॥
६ नयसीद्वति द्विषः कृणोष्युक्थशंसिनः	। नृभिः सुवीर उच्यसे ॥ ४०९ ॥
७ ब्रह्माणं ब्रह्मवाहसं गीर्भिः सखायमृग्मियम्	। गां न दोहसे हुवे ॥ ४१० ॥
८ यस्य विश्वानि हस्तयोरूचुर्वसूनि नि द्विता	। वीरस्य पृतनाषहः ॥ ४११ ॥
९ वि दृळ्हानि चिदद्रिवो जनानां शचीपते	। वृह माया अनानत ॥ ४१२ ॥

[५] (४०८) हे (वृत्रहन्) शत्रुओंका नाश करनेवाले इन्द्र! (त्वं एकस्य द्वयोः अविता असि) तू एक अथवा दोनों-का ही रक्षण करनेवाला है। ऐसा नहीं पर (उत ईदृशे यथा वयं) और भी अनेक मनुष्योंका तू ही रक्षक है और हम भी तेरेसे ही सुरक्षित हुए हैं ॥ ५ ॥

इन्द्र एक दोका ही रक्षक नहीं है परंतु सब मानवोंका वह रक्षक है और हम सबका वह रक्षक है।

[६] (४०९) हे इन्द्र! (इत् द्विषः अति नयसि) तू ही शत्रुओंको हमसे दूर करता है। अर्थात् उनका नाश करता है। (उक्थशंसिनः कृणोषि) अतः हमें तू प्रशंसा करनेवाले बनाता है। (नृभिः सुवीरः उच्यसे) अतः मनुष्योंद्वारा तुम उत्तम वीर कहा जाता है। अथवा तुम्हारे साथ उत्तम वीर रहते हैं ॥ ६ ॥

१ द्विषः अति नयसि— तू शत्रुओंको दूर भगा देता है। शत्रुओंको भगा देना योग्य है। शत्रुओंका नाश करना योग्य है।

२ उक्थशंसिनः कृणोषि— तू लोगोंको प्रशंसक बनाता है। तू ऐसा काम कर कि जिससे लोग तुम्हारी प्रशंसा करें।

३ नृभिः सुवीर उच्यसे— तुझको मनुष्य उत्तम वीरोंसे युक्त महावीर कहें। तू ऐसा कर कि जिससे मनुष्य तुम्हें उत्तम वीर कहें।

[७] (४१०) (ब्रह्माणं ब्रह्मवाहसं सखायं ऋग्मियं) ज्ञानी ज्ञानपूर्वक स्तवनीय मित्रभूत प्रशंसनीय इन्द्रको (दोहसे गां न गीर्भिः हुवे) दुहनेके लिये गौकी तरह स्तुतियोंसे बुलाता हूं ॥ ७ ॥

इन्द्र-प्रभु-ज्ञानी है ज्ञानपूर्वक उसकी स्तुति की जाती है वह सबका सखा है सबसे प्रशंसनीय है। इस प्रभुकी ही सबको स्तुति करना उचित है। दोहनके समय गौको बुलाते हैं वैसा हम इस प्रभुको अपने पास बुलाते हैं।

दोहसे गां न'— दोहन करनेके समय गायको बुलाते हैं। प्रथम घास डालते हैं और पश्चात् दुहते हैं, उस तरह प्रभु ज्ञानी है ज्ञानपूर्वक बुलाने योग्य है, वह सबका मित्र है प्रशंसनीय है। इस रीतिसे उसकी स्तुति करके प्रभुको अपने पास भक्त बुलाते हैं। दोनोंका बुलाना समान रीतिसे होता है।

गौके दोहन कालमें भी गौके गुणोंका गायन करके उसके नामसे उसको बुलाते हैं। और बुलानेके समय भी मधुर भाषणसे बुलाते हैं। इससे एक अधिक मिलता है।

परमेश्वरके गुणगानसे भी अपनेमें शुभगुणोंका संवर्धन होता है।

[८] (४११) (वीरस्य पृतनासहः यस्य) वीर्यवान् शत्रुसेनाको पराजित करनेवाले जिस इन्द्रके (हस्तयोः) हाथोंमें (विश्वानि द्विता वसूनि) सब दोनों प्रकारके धन हैं ऐसा प्रकार (नि ऊचुः) कहते हैं ॥ ८ ॥

वह प्रभु वीर है वह शत्रुको दूर करता है वह पृतना-सहः है अर्थात् शत्रुकी सेनाका पूर्ण पराभव करनेवाला है। इस कारण इसके हाथमें सब प्रकारके गुप्त और प्रकट धन हैं ऐसा सब ज्ञानी कहते हैं।

१ वीरस्य पृतनासहः हस्तयोः विश्वानि वसूनि— वीर शत्रुसेनिकोंका पराभव करनेवालेके हाथोंमें सब प्रकारके धन रहते हैं।

२ द्विता वसूनि— धन दो प्रकारके होते हैं। एक वैयक्तिक धन और दूसरा सामूहिक धन। धन गुप्त और प्रकट ऐसे दो प्रकारके हैं।

[९] (४१२) हे (अद्रिवः) वज्रधारक इन्द्र! (शचीपते) शक्तिमान् इन्द्र! (जनानां दृळ्हानि चित् वि दर) शत्रुओंके दृढ मजबूत पुरियोंको और कोटोंका नाश कर। हे (अनानत) न झुकनेवाले इन्द्र! (मायाः) और उनकी कुटिलताओंका भी नाश कर ॥ ९ ॥

१० तमु त्वा सत्य सोमपा इन्द्र वाजानां पते । अहूमहि श्रवस्यवः ॥ ४१३ ॥
११ तमु त्वा यः पुरासिथ यो वा नूनं हिते धने । हव्यः स श्रुधी हवम् ॥ ४१४ ॥
१२ धीभिरर्वद्भिरर्वतो वाजाँ इन्द्र श्रवाय्यान् । त्वया जेष्म हितं धनम् ॥ ४१५ ॥
१३ अभूरु वीर गिर्वणो महाँ इन्द्र धने हिते । भरे वितन्तसाय्यः ॥ ४१६ ॥
१४ या त ऊतिरमित्रहन् मक्षूजवस्तमासति । तया नो हिनुही रथम् ॥ ४१७ ॥
१५ स रथेन रथीतमो ऽस्माकेनाभियुग्वना । जेषि जिष्णो हितं धनम् ॥ ४१८ ॥

अद्रि-वः— वज्र धारण करनेवाला पर्वतोंमें रहनेवाला

शचीपते— शक्तिका स्वामी महान् सामर्थ्यवान् ।

१ जनानां दस्युतामि वि वृह— शत्रुजनोंके सुदृढ कीलोंका नाश कर ।

२ असुराणां मायाः वि वृह— शत्रुओंके कुटिल प्रयोगों-का पूर्ण नाश कर ।

वज्र धारण करके, शक्तिसंपन्न बनकर शत्रुके सुदृढ कीलोंका नाश करना और उनके कपट व्यूहोंको भी विनष्ट करना चाहिये ।

[१०] (४१३) हे (सत्य सोमपाः) सत्यस्वभावी सोमका पान करनेवाले (वाजानां पते) अन्न और बलोंके स्वामी (इन्द्र) इन्द्र ! (श्रवस्यवः तं उ त्वा अहूमहि) अन्नकी इच्छा करनेवाले हम तेरी ही स्तुति करते हैं ॥ १० ॥

सत्यः— जो असत्य आचरण कभी नहीं करता उसका ।

वाजानां पतिः— बलों और अन्नोंका स्वामी । राजाको चाहिये कि वह अपने पास बलों और अन्नोंका संग्रह भरपूर रखे ।

[११] (४१४) (तं उ त्वा) हम तुम्हें ही सहायार्थ बुलाते हैं (यः पुरा हव्यः आसिथ) जो पहिले बुलाने योग्य था । (यः वा हिते धने नूनं सः हवं श्रुधि) और तू, शत्रुओंके साथ युद्ध छिड जानेपर बुलाने योग्य है उस समय वह तू हमारा आह्वान सुन ॥ ११ ॥

१ यः पुरा हव्यः आसिथ— जो प्राचीन समयसे सहायार्थ बुलाने योग्य था अर्थात् अब तथा भविष्यकालमें भी सहाय्यार्थ बुलाने योग्य है । सदा वह सहाय्यार्थ आता है और सहाय्य करता रहता है ।

२ यः धने हिते (हव्यः)— जो युद्ध छिडनेपर सहाय्यार्थ बुलाने योग्य है ।

धन— धन युद्ध जिसमें शत्रुके धन प्राप्त होता है ।

[१२] (४१५) हे (इन्द्र) इन्द्र ! (धीभिः अर्वद्भिः) बुद्धियोंसे तथा तेरे द्वारा प्रेरित हुए अश्वोंसे (अर्वतः श्रवाय्यान्) शत्रुओंके घोडोंको प्रशंसनीय अन्नोंके साथ (हितं धनं जेष्म) शत्रुओंके पास रहे धनको जीतेंगे ॥ १२ ॥

१ धीभिः धनं जेष्म— बुद्धियोंके प्रयोगसे हम धनको जीतेंगे ।

२ अर्वद्भिः श्रवाय्यान् वाजान् जेष्म— घोडोंसे अर्थात् घुडसवारोंसे हम प्रशंसनीय अन्नोंको जीतेंगे ।

३ हितं धनं जेष्म— शत्रुके पास रहा धन हम जीत कर प्राप्त करेंगे ।

[१३] (४१६) हे (वीर) वीर (गिर्वणः) स्तुतिके लिये योग्य (इन्द्र) इन्द्र ! (हिते धने) शत्रुओंके पास रहे हुए धनको प्राप्त करनेके लिये (भरे) संग्राममें (महान् वितन्तसाय्यः अभूः) तू शत्रुओंका बडा विनाशक हुआ है ॥ १३ ॥

हिते धने भरे महान् वितन्तसाय्यः अभूः— घोर संग्राममें तू बडा सहायता देनेवाला हुआ है । वीर ऐसा हो ।

[१४] (४१७) हे (अमित्रहन्) शत्रुनाशक ! (ते मक्षु जवस्तमा या ऊतिः असति) तेरी अतिशय शीघ्रगामी जो संरक्षक गति है (तया नः रथं हिनुहि) उस गतिसे हमारे रथको भी शत्रुओंको जीतनेके लिये शीघ्र चलनेकी प्रेरणा कर ॥ १४ ॥

हमारा रथ शीघ्र गतिसे शत्रुपर आक्रमण करे और विजय प्राप्त करे ।

[१५] (४१८) हे (जिष्णो) जयशील इन्द्र ! (रथीतमः) अतिशय महारथी तू (अस्माकेन अभियुग्वना रथेन) हमारे शत्रुओंको पराजित करनेवाले रथसे (हितं धनं जेषि) शत्रुओंके धनको तू जीतता है ॥ १५ ॥

हमारे रथी वीर अपने वेगवाले रथसे शत्रुपर हमला करें और शत्रुका धन जीतकर ले आवें ।

१६ य एक इत् तमु ष्टुहि कृष्टीनां विचर्षणिः । पतिर्जज्ञे वृषक्रतुः ॥ ४१९ ॥
१७ यो गृणतामिदासिथा ऽऽपिरूती शिवः सखा । स त्वं न इन्द्र मृळय ॥ ४२० ॥
१८ धिष्व वज्रं गभस्त्यो रक्षोहत्याय वज्रिवः । सासहीष्ठा अभि स्पृधः ॥ ४२१ ॥
१९ प्रत्नं रयीणां युजं सखायं कीरिचोदनम् । ब्रह्मवाहस्तमं हुवे ॥ ४२२ ॥
२० स हि विश्वानि पार्थिवाँ एको वसूनि पत्यते । गिर्वणस्तमो अध्रिगुः ॥ ४२३ ॥
२१ स नो नियुद्भिरा पृण कामं वाजेभिरश्विभिः । गोमद्भिर्गोपते धृषत् ॥ ४२४ ॥
२२ तद् वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने । शं यद् गवे न शाकिने ॥ ४२५ ॥

---

[१६] (४१९) (विचर्षणिः वृषक्रतुः) विशेष सर्वद्रष्टा बलकर्मा (यः एक इत्) जो एक ही (कृष्टीनां पतिः) प्रजाओंका पति (जज्ञे) हुआ है, (तमु स्तुहि) उसकी ही स्तोता स्तुति करे ॥ १६ ॥

जो विशेष द्रष्टा है जो विशेष शक्तिसे कर्म करता है, जो प्रजाजनोंका एक ही पालक है उस प्रभुकी प्रशंसा करना योग्य है।

[१७] (४२०) हे (इन्द्र) इन्द्र! (यः ऊती) जो तू सुरक्षा करनेके कारण (शिवः सखा) सबका सुखकर मित्र हुआ और (गृणतां इत् आपिः आसिथ) स्तोताओंका बन्धु जैसा रहा हुआ (सः त्वं नः मृळय) वह तू हमें अब सुखी कर ॥ १७ ॥

प्रभु सबका संरक्षण करता है अतः वह सबका मित्र भाई और सखा है। वह हमें सुखी करे।

[१८] (४२१) हे (वज्रिवः) वज्रधारी इन्द्र! (गभस्त्योः रक्षोहत्याय वज्रं धीष्व) हाथोंमें राक्षसोंको मारनेके लिये वज्र धारण कर, (स्पृधः अभि सासहीष्ठाः) स्पर्धा करनेवाले शत्रुओंका अतिशय पराभव कर ॥ १८ ॥

१ रक्षो हत्याय गभस्त्योः वज्रं धीष्व — राक्षसोंके विनाशके लिये हाथमें वज्र धारण करना चाहिये।

२ स्पृधः अभिः सासहिष्ठाः — स्पर्धा करनेवाले शत्रुओंका संपूर्ण पराभव कर।

[१९] (४२२) (प्रत्नं रयीणां युजं) पुरातन धनोंके देनेवाला (सखायं) मित्रभूत (कीरिचोदनं ब्रह्मवाहस्तमं) स्तोताओंको प्रेरणा करनेवाला अतिशय स्तुतिके योग्य इन्द्रको मैं (हुवे) बुलाता हूं ॥ १९ ॥

प्रभु पुराण पुरुष है धन देनेवाला है सबका मित्र है, ज्ञानियोंको शुभ प्रेरणा देता है, प्रशंसनीय है। ऐसे श्रेष्ठ प्रभुकी मैं प्रार्थना करता हूं।

[२] (४२३) (गिर्वणस्तमः अध्रिगुः) अतिशय स्तुतिके योग्य अप्रतिहत गतिमान (सः हि) ऐसा वह इन्द्र ही (विश्वानि पार्थिवा वसूनि) संपूर्ण पृथिवीमें होनेवाले सब धनोंका (एकः पत्यते) एक ही स्वामी है ॥ २ ॥

प्रशंसनीय अप्रतिहत गति, ऐसा वह प्रभु सब धनोंका एकमात्र स्वामी है।

[२१] (४२४) हे (गोपते) गोपालक इन्द्र! (नः कामं) तू हमारी इच्छाको (नियुद्भिः धृषत्) अश्वोंसे शत्रुका धर्षण करनेमें समर्थ होकर (आपृण) पूर्ण कर। (गोमद्भिः अश्विभिः) बहुत गायोंसे तथा अश्वोंसे युक्त होकर हमारी इच्छायें पूर्ण कर ॥ २१ ॥

प्रभु गौओंका पालन करता है। वह हमारी कामनाएं पूर्ण करे। अश्वों और गौओंसे हमें युक्त करके हमारी इच्छाएं पूर्ण करे। घरमें बहुत गौवें और घोडे होना यह धनीका लक्षण है। ऐसे धनी हम बनें और हमारी इच्छा पूर्ण होती रहे।

[२२] (४२५) (व सुते) तुम्हारे सोमयागमें (पुरुहूताय सत्वने) बहुतों द्वारा प्रशंसित और बलवान् इन्द्रके लिये (तद् सचा गाय) वह स्तोत्र मिलकर गाओ। (यद् शाकिने) जो शक्तिमान् इन्द्रको सुखकर हो (शं गवे न) जैसा घास गौओंको सुखकर होता है ॥ २२ ॥

प्रभुके स्तोत्र अनेक मित्र मिलकर, संघमें बैठकर, गाया करो। इससे प्रभु संतुष्ट होगा। जिस तरह गाय उत्तम घास खानेसे संतुष्ट होती है वैसा वह प्रभु सामूहिक उपासनासे संतुष्ट होगा।

२३ न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः । यत् सीमुप श्रवद् गिरः ॥ ४२६ ॥
२४ कुवित्सस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत् । शचीभिरप नो वरत् ॥ ४२७ ॥
२५ इमा उ त्वा शतक्रतो ऽभि प्र णोनुवुर्गिरः । इन्द्र वत्सं न मातरः ॥ ४२८ ॥
२६ दूणाशं सख्यं तव गौरसि वीर गव्यते । अश्वो अश्वायते भव ॥ ४२९ ॥
२७ स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे । न स्तोतारं निदे करः ॥ ४३० ॥
२८ इमा उ त्वा सुतेसुते नक्षन्ते गिर्वणो गिरः । वत्सं गावो न धेनवः ॥ ४३१ ॥
२९ पुरूतमं पुरूणां स्तोतॄणां विवाचि । वाजेभिर्वाजयताम् ॥ ४३२ ॥

---

[२३] (४२६) (वसुः) निवासस्थान देनेवाला इन्द्र (गोमत वाजस्य) बहुत गौओंसे युक्त अन्न और बलका (दानं न घ नि यमते) दान देता है। (यत् सीं गिरः उप श्रवत्) जिस समय वह इन स्तुतियोंको सुनता है ॥ २३ ॥

प्रभु सबको रहनेके लिये स्थान देता है, गौवें देता है और अन्न तथा बल देता है। जब वह स्तुति सुनता है तब वह दान देता है।

[२४] (४२७) (कुवित्सस्य गोमन्तं व्रजं) कुवित्सकी बहुत गौओंसे युक्त गौशालाके समीप (दस्युहा प्र गमत्) दस्यु नाशक इन्द्र गया। (हि शचीभिः नः अप वरत्) और अपनी शक्तियों द्वारा हमको उन गायोंको उसने दिया ॥ २४ ॥

कुवित्सः— बुरी पद्धतिसे रहनेवाला शत्रु। समाज शत्रु। शत्रुकी गौशालाके पास वीर जाता है और अपने सामर्थ्योंसे वह उन गौओंको छुडाकर सज्जनोंको देता है।

[२५] (४२८) हे (शतक्रतो) बहुत प्रकारके कर्मकर्ता (इन्द्र) इन्द्र! (त्वा इमाः गिरः अभि प्र णोनुवुः) तेरे लिये ही ये स्तुतियां अच्छी तरह गायी जा रही हैं। (वत्सं न मातरः) जिस प्रकार वत्स माताके पास जाता है। वैसी ये स्तुतियां तुम्हें प्राप्त हों ॥ २५ ॥

हे प्रभो! तेरी स्तुतियां हम करते हैं। वे तुम्हें प्राप्त हों। जिस तरह बछडेको प्राप्त कर माताएं प्रसन्न होती हैं उस तरह तू इन स्तुतियोंसे प्रसन्न हो।

[२६] (४२९) (तव सख्यं दूणाशं) तेरी मैत्री नाश होनेवाली नहीं होती। इसलिये हे (वीर) बलवान्! (गव्यते गौः असि) गौकी इच्छावालेके तू गौ देनेवाला हो और (अश्वायते अश्वः भव) अश्वकी इच्छावालेको अश्वका प्रदाता हो ॥ २६ ॥

प्रभुकी मित्रता विनाश करनेवाली नहीं होती। हे बलवान् वीर! पशुकी इच्छा करनेवालेको पशु दो और जो जैसा चाहता है उसको वैसा दो।

[२७] (४३०) (सः अन्धसः तन्वा) वह तू अन्नसे पुष्ट बने अपने शरीरसे (महे राधसे) महान् सिद्धिके लिये (मन्दस्व) आनन्दित हो। (स्तोतारं निदे न करः) स्तोताको निन्दकके आधीन मत कर ॥ २७ ॥

१ अन्धसा तन्वा— अन्नसे पुष्ट बने शरीरसे युक्त हो। अन्नसे शरीरको पुष्ट कर।

२ महे राधसे मन्दस्व— महती सिद्धि प्राप्त करनेके लिये आनन्दित हो।

३ स्तोतारं निदे न करः— भक्तको शत्रुके आधीन न कर।

[२८] (४३१) हे (गिर्वणः) स्तुतियोंसे सेवनीय इन्द्र! (सुते सुते) प्रत्येक यज्ञमें (इमाः गिरः त्वा नक्षन्ते) ये स्तुतियां तुझे प्राप्त होती हैं। (धेनवः गावः न वत्सं) जैसी दूध देनेवाली गायें बछडेके पास जाती हैं ॥ २८ ॥

प्रत्येक यज्ञमें ईश्वरकी स्तुतियां गायी जाती हैं। जिस तरह गौवें बछडेके पास जाती हैं। गौवें बछडेके पास ही जाती हैं उस तरह स्तुतियां प्रभुके पास जाती हैं। स्तुतियोंका ध्येय प्रभुप्राप्ति ही है।

[२९] (४३२) (वाजेभिः वाजयतां) अन्नोंसे बलवान् बने वीरोंके तथा (पुरूणां स्तोतॄणां) बहुत स्तोताओंके (विवाचि) वाणीमें (पुरूतमं) श्रेष्ठतम बनकर रहे (त्वा) तुझ प्रभुको हमारी (गिरः नक्षन्ते) स्तुतियां प्राप्त होती हैं ॥ २९ ॥

धनी ऐश्वर्यों वालों और अन्नोंसे युक्त वीरोंके तथा अनेक प्रकारसे स्तुति करनेवाले भक्तोंकी वाणीमें जो भेदसे भेद करके माना हुआ है, उसी प्रभुका हमारी वाणियां भी वर्णन करती हैं।

१० अस्माकमिन्द्र भूतु ते स्तोमो वाहिष्ठो अन्तमः। अस्मान् राये महे हिनु ॥ ४३३ ॥
११ अधि बृबुः पणीनां वर्षिष्ठे मूर्धन्नस्थात् । उरुः कक्षो न गाङ्ग्यः ॥ ४३४ ॥
१२ यस्य वायोरिव द्रवद् भद्रा रातिः सहस्रिणी। सद्यो दानाय मंहते ॥ ४३५ ॥
१३ तत् सु नो विश्वे अर्य आ सदा गृणन्ति कारवः ।
बृबुं सहस्रदातमं सूरिं सहस्रसातमम् ॥ ४३६ ॥

(म० ६ सू० ४६)

१ त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥ ४३७ ॥

---

[१०] (४३३) हे (इन्द्र) इन्द्र ! (वाहिष्ठः) अति धन लानेवाला (अस्माकं स्तोमः) हमारे स्तोत्र (ते अन्तमः भूतु) तेरे अतिशय समीप हों। (अस्मान् महे राये हिनु) हमको महान् धनकी प्राप्तिके लिये प्रेरित कर ॥ १० ॥

हमारे स्तोत्र हे प्रभो ! तेरे पास पहुंचें तुझे प्रिय लगें। उनको सुनकर तू हमें उत्तम मार्गसे धन प्राप्त हो ऐसी प्रेरणा कर।

[११] (४३४) (पणीनां बृबुः) वणिकोंमें तक्षा शिल्पी (वर्षिष्ठे मूर्धन् अधि अस्थात्) श्रेष्ठ उन्नत मूर्धा-स्थानपर अधिष्ठित हुआ है (गाङ्ग्यः कक्षः न उरुः) गंगाके ऊंचे तटोंकी तरह वह श्रेष्ठ हुआ है ॥ ११ ॥

व्यापार-व्यवहार करनेवालोंमें शिल्पी उच्च स्थान प्राप्त करता है। नदियोंके तटोंके समान वह उच्च होता है।

१ पणीनां बृबुः वर्षिष्ठे मूर्धन् अधि अस्थात्— व्यापार-व्यवहार करनेवालोंमें शिल्पी उच्च स्थानपर आरूढ होता है। क्योंकि शिल्पोंका व्यापार अधिक होता है उससे धन अधिक प्राप्त होता है और व्यापारियोंको उनकी आवश्यकता होती है।

२ गाङ्ग्यः कक्षः उरुः न— गंगा आदि नदियोंके तट जैसे ऊंचे होते हैं। वैसा शिल्पी उच्च स्थानमें विराजता है।

राष्ट्रमें शिल्पियोंका मान अधिक हो। नमः तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमः। (वा. य.) तक्षा सुतार और रथ करनेवालोंको नमस्कार करता हूं। राष्ट्रमें ये शिल्पी सन्माननीय हैं।

[१२] (४३५) (वायोः इव) वायुकी तरह (यस्य द्रवत्) जिसके त्वरासे (भद्रा सहस्रिणी रातिः) कल्याणकारक, सहस्रों प्रकारका दान किया (सद्यः दानाय मंहते) तत्काल ही दान देनेके लिये उसकी शक्ति बढती है ॥ १२ ॥

वायु जैसा त्वरासे बहकर सत्वर उपकार करता है उस तरह उस प्रभुकी कल्याण करनेवाली सहस्रों प्रकारकी दान क्रिया तत्काल ही दानके लिये आगे बढती है।

यस्य द्रवत् भद्रा साहस्रिणी रातिः सद्यः दानाय मंहते— जिस प्रभुकी त्वरासे कल्याण करनेवाली सहस्रों प्रकारकी दानशक्ति तत्काल ही सहाय्यार्थ तत्पर रहती है।

[१३] (४३६) (सहस्रदातमं सूरिं सहस्रसातमं) सहस्रों प्रकारके धनोंके दाता बुद्धिमान् विद्वान् और सहस्रों दान करनेवाले (तत् बृबुं) उस शिल्पीका (नः विश्वे अर्यः कारवः) हमारे सब श्रेष्ठ कारीगर (सदा सु आ गृणन्ति) हमेशा अच्छी तरहसे वर्णन करते हैं ॥ १३ ॥

१ सहस्रदातमं सहस्रसातमं सूरिं बृबुं विश्वे अर्यः कारवः सदा सु आ गृणन्ति— सहस्रों प्रकारके धनोंके दाता, सहस्रों प्रकारोंसे दान करनेवाले ज्ञानी विद्वान् शिल्पीकी— उस प्रभुकी— सब श्रेष्ठ कारीगर सदा उत्तम रीतिसे प्रशंसा गाते हैं।

कारीगर उत्तम हों वे सहस्रों प्रकारके धन उत्पन्न करें और उनका दान करें, अनेक प्रकारोंसे सहायता करें। वे सब श्रेष्ठ शिल्पी— जगत्‌रूपी कारीगर— की प्रशंसा गान करें।

[१] (४३७) (कारवः वाजस्य साता) हम शिल्पी लोग अन्नकी प्राप्तिके लिये हे इन्द्र ! (त्वां इत् हि हवामहे) तुझे ही बुलाते हैं। हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सत्पतिं त्वां नरः वृत्रेषु) सज्जनोंके पालक हुए तुझको दूसरे मनुष्य भी घेरनेवाले शत्रु उत्पन्न होनेपर तुझे ही बुलाते हैं। (अर्वतः काष्ठासु त्वां) घोडोंको दिशाओंमें विजयार्थ भेजनेके लिये तुझे ही बुलाते हैं ॥ १ ॥

२३ न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः । यत् सीमुप श्रवद् गिरः ॥ ४२६ ॥
२४ कुविस्सस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत् । शचीभिरप नो वरत् ॥ ४२७ ॥
२५ इमा उ त्वा शतक्रतोऽभि प्र णोनुवुर्गिरः । इन्द्र वत्सं न मातरः ॥ ४२८ ॥
२६ दूणाशं सख्यं तव गौरसि वीर गव्यते । अश्वो अश्वायते भव ॥ ४२९ ॥
२७ स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे । न स्तोतारं निदे करः ॥ ४३० ॥
२८ इमा उ त्वा सुतेसुते नक्षन्ते गिर्वणो गिरः । वत्सं गावो न धेनवः ॥ ४३१ ॥
२९ पुरूतमं पुरूणां स्तोतॄणां विवाचि । वाजेभिर्वाजयताम् ॥ ४३२ ॥

---

[२३] (४२६) (वसुः) निवासस्थान देनेवाला इन्द्र (गोमतः वाजस्य) बहुत गौओंसे युक्त अन्न और बलका (दानं न घ नि यमते) दान देता है। (यत् सीं गिरः उप श्रवत्) जिस समय वह इन स्तुतियोंको सुनता है ॥ २३ ॥

प्रभु सबको रहनेके लिये स्थान देता है, गायें देता है और अन्न तथा बल देता है। जब वह स्तुति सुनता है तब वह दान देता है।

[२४] (४२७) (कुविस्सस्य गोमन्तं व्रजं) कुविस्सकी बहुत गौओंसे युक्त गोशालाके समीप (दस्युहा प्र गमत्) शत्रु मारक इन्द्र गया। (हि शचीभिः नः अप वरत्) और अपनी शक्तियों द्वारा हमको उन गायोंको उसने दिया ॥ २४ ॥

कुविस्स— बुरी शक्तिसे रहनेवाला शत्रु। समाज शत्रु। शत्रुकी गोशालाके पास वीर जाता है और अपने सामर्थ्योंसे वह उन गौओंको वहांसे लाकर सज्जनोंको देता है।

[२५] (४२८) हे (शतक्रतो) बहुत प्रकारके कर्म करनेवाले (इन्द्र) इन्द्र! (त्वा इमाः गिरः अभि प्र णोनुवुः) तेरे लिये ही ये स्तुतियां अच्छी तरह गायी जा रही हैं। (वत्सं न मातरः) जिस प्रकार बछडा माताके पास जाता है। वैसी ये स्तुतियां तुम्हें प्राप्त हों ॥ २५ ॥

हे प्रभो! तेरी स्तुतियां हम गाते हैं। वे तुम्हें प्राप्त हों। जिस तरह बछडेको प्राप्त कर माताएं प्रसन्न होती हैं उस तरह तू इन स्तुतियोंसे प्रसन्न हो।

[२६] (४२९) (तव सख्यं दूणाशं) तेरी मैत्री नाश होनेवाली नहीं होती। इसलिये हे (वीर) बलवान! (गव्यते गौः असि) गौकी इच्छावालेको तू गौ देनेवाला हो और (अश्वायते अश्वः भव) अश्वकी इच्छावालेको अश्वका प्रदाता हो ॥ २६ ॥

प्रभुकी मित्रता विनाश करनेवाली नहीं होती। हे बलवान वीर! गायकी इच्छा करनेवालेको गाय दो और जो घोडा चाहता है उसको घोडा दो।

[२७] (४३०) (सः अन्धसः तन्वा) वह तू अन्नसे पुष्ट बने अपने शरीरसे (महे राधसे) महान् सिद्धिके लिये (मन्दस्व) आनन्दित हो। (स्तोतारं निदे न करः) स्तोताको निन्दकके आधीन मत कर ॥ २७ ॥

१ अन्धसः तन्वा— अन्नसे पुष्ट बने शरीरसे युक्त हो। अन्नसे शरीरको पुष्ट कर।

२ महे राधसे मन्दस्व— महती सिद्धि प्राप्त करनेके लिये आनन्दित हो।

३ स्तोतारं निदे न करः— भक्तको शत्रुके आधीन न कर।

[२८] (४३१) हे (गिर्वणः) स्तुतियोंसे सेवनीय इन्द्र! (सुते सुते) प्रत्येक यज्ञमें (इमाः गिरः त्वा नक्षन्ते) ये स्तुतियां तुझे प्राप्त होती हैं। (धेनवः गावः न वत्सं) जैसे दूध देनेवाली गायें बछडेके पास जाती हैं ॥ २८ ॥

प्रत्येक यज्ञमें ईश्वरकी स्तुतियां गायी जाती हैं। जिस तरह गौवें बछडेके पास जाती हैं। गौवें बछडेके पास ही जाती हैं उस तरह स्तुतियां प्रभुके पास जाती हैं। स्तुतियोंका ध्येय प्रभु प्राप्ति ही है।

[२९] (४३२) (वाजेभिः वाजयतां) बलोंसे बलवान बने वीरोंमें तथा (पुरूणां स्तोतॄणां) बहुत स्तोताओंके (विवाचि) वाणीमें (पुरूतमं) श्रेष्ठतम बनकर रहे (त्वा) तुझ प्रभुको हमारी (गिरः नक्षन्ते) स्तुतियां प्राप्त होती हैं ॥ २९ ॥

जो ऐश्वर्यसे भरा और बलोंसे युक्त वीरोंसे तथा अनेक प्रकारसे स्तुति करनेवाले भक्तोंकी वाणीमें भी श्रेष्ठ जो माना गया है, उसी प्रभुका हमारी वाणियां भी वर्णन करती हैं।

६ त्वामुग्रमवसे चर्षणीसहं राजन् देवेषु हूमहे ।
विश्वा सु नो विथुरा पिब्दना वसो ऽमित्रान् त्सुषहान् कृधि ॥ ४४२ ॥
७ यदिन्द्र नाहुषीष्वाँ ओजो नृम्णं च कृष्टिषु ।
यद् वा पञ्च क्षितीनां द्युम्नमा भर सत्रा विश्वानि पौंस्या ॥ ४४३ ॥
८ यद् वा तृक्षौ मघवन् द्रुह्यावा जने यत् पूरौ कच्च वृष्ण्यम् ।
अस्मभ्यं तद् रिरीहि सं नृषाह्ये ऽमित्रान् पृत्सु तुर्वणे ॥ ४४४ ॥

---

१ ज्येष्ठ ओजिष्ठं पपुरि श्रवः नः आ भर— श्रेष्ठ बलवर्धक पुष्टिकारक यशोवर्धक बल हमें भरपूर दो। बल ऐसा हो कि जो बल बढावे पोषण करे जिससे यश बढाने वाला निर्दोष श्रेष्ठ हो।

२ चित्र वज्रहस्त सुशिप्र इन्द्र— विलक्षण, वज्रधारी उत्तम मुकुटधारी शत्रुनाशक वीर हो।

३ इमे रोदसी येन आ प्रा:— ये द्यावापृथिवी जिससे पूर्ण रीतिसे भरे हैं ऐसा बल दो।

[६] (४४२) हे (राजन्) राजा इन्द्र ! (देवेषु चर्षणीसहं त्वां) देवोंमें वीर उग्र वीर शत्रुका नाशक तुझे (अवसे हूमहे) रक्षणके लिये बुलाते हैं। (विश्वा पिब्दना सु विथुरा) संपूर्ण दुष्टोंको अच्छी तरह व्यथित करो। हे (वसो) निवासक इन्द्र ! (नः अमित्रान् सुषहान् कृधि) हमारे शत्रुओंको सुखसे जीतने योग्य करो ॥ ६ ॥

१ देवेषु उग्रं चर्षणीसहं त्वां अवसे हूमहे— वीरोंमें विशेष उग्र और शत्रुका पराभव करनेवाला तू है इसलिये तुझे हम अपने रक्षणके लिये बुलाते हैं।

२ विश्वा पिब्दना सु विथुरा— सबको पीसकर नष्ट करनेवाले शत्रुओंको उत्तम रीतिसे दूर कर नष्ट कर।

पिब्दना— पीस कर नाश करनेवाला शत्रु।

३ हे वसो ! नः अमित्रान् सुसहान् कृधि— हे निवासक प्रभो ! हमारे शत्रुओंको सुगमतासे जीतने योग्य कर।

[७] (४४३) हे (इन्द्र) इन्द्र ! (नाहुषीषु कृष्टिषु) मानवी प्रजाओंमें (यत् ओजः नृम्णं च) जो बल और मानसिक शक्ति है और (यत् वा पञ्च क्षितीनां द्युम्नं आ भर) जो पांचों वर्णोंके पास तेज रहता है वह सब हमको दे दो। (सत्रा विश्वानि पौंस्या) और उनके साथ संपूर्ण सामर्थ्य भी दो ॥ ७ ॥

१ नाहुषीषु कृष्टीषु यत् ओजः नृम्णं च यत् वा पञ्च क्षितीनां द्युम्नं सत्रा विश्वानि पौंस्या तत् आ भर— मानवी प्रजाजनोंमें जो शारीरिक बल मानसिक सामर्थ्य तथा जो पांच प्रकारके मानवोंमें तेज है तथा उनके साथ जो सब सामर्थ्य रहते हैं वे सब हमें दे दो।

ओजः= शारीरिक बल; नृम्णं= नृ + मनः= मानसिक सामर्थ्य मानवी मन, मनन सामर्थ्य, धन ऐश्वर्य; द्युम्न= तेज दिव्य मानसिक शक्ति; पौंस्य= पौरुष वीरताका बल। ये सब सामर्थ्य हमें चाहिये। मनुष्य इन सामर्थ्योंसे युक्त हो।

[८] (४४४) हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! (तृक्षौ यत् वा) हलचल करनेवाले मनुष्योंमें (यत् द्रुह्यौ जने) तथा द्रोह करनेवाले मानवोंमें जो बल रहता है और (पूरौ यत् कत् च वृष्ण्यं) पुरियें निवास करनेवालोंमें जो बल रहता है (तत् अस्मभ्यं) वह सब हमको (पृत्सु अमित्रान् तुर्वणे नृषाह्ये) संग्रामोंमें शत्रुओंका नाश करनेके लिये और शत्रुके मनुष्योंके साथ युद्ध करनेके समय (सं रिरीहि) अच्छी प्रकार दे दो ॥ ८ ॥

१ तृक्षौ जने यत् वृष्ण्यं— हलचल करनेवाले मनुष्योंमें जो बल है। तृक्ष- चलना, हलचल करना, तृक्ष्= गति।

२ द्रुह्यौ जने यत् वृष्ण्यं— द्रोह करनेवाले लोगोंमें जो बल है।

३ पूरौ यत् कत् च वृष्ण्यं— पुरीमें रहनेवालोंमें जो भी कुछ बल रहता है।

४ तत् अस्मभ्यं पृत्सु अमित्रान् तुर्वणे नृषाह्ये सं रिरीहि— वह सामर्थ्य हमको युद्धोंमें शत्रुओंका नाश करनेके लिये और शत्रुके वीरोंका पराभव करनेके लिये दे दो। हमें इन कामोंको करनेके लिये ये बल चाहिये।

६ त्वामुग्रमवसे चर्षणीसहं राजन् देवेषु हूमहे ।
विश्वा सु नो विथुरा पिब्दना वसो ऽमित्रान् सुषहान् कृधि ॥ ४४२ ॥
७ यदिन्द्र नाहुषीष्वाँ ओजो नृम्णं च कृष्टिषु ।
यद् वा पञ्च क्षितीनां द्युम्नमा भर सत्रा विश्वानि पौंस्या ॥ ४४३ ॥
८ यद् वा तृक्षौ मघवन् द्रुह्यावा जने यत् पूरौ कच्च वृष्ण्यम् ।
अस्मभ्यं तद् रिरीहि सं नृषाह्ये ऽमित्रान् पृत्सु तुर्वणे ॥ ४४४ ॥

---

१ ज्येष्ठ ओजिष्ठं पपुरि श्रवः नः आ भर— श्रेष्ठ बलवर्धक पुष्टिकारक, यशोवर्धक अन्न हमें भरपूर दो। अन्न ऐसा हो कि जो बल बढावे पोषण करे, कामके यश बढावे और जो निर्दोष श्रेष्ठ हो।

२ चित्र वज्रहस्त धृष्णिम इन्द्र— विलक्षण वज्र धारी उत्तम शत्रुनाशक वीर हो।

३ इमे रोदसी येन आ प्राः— ये द्यावापृथिवी जिससे पूर्ण रीतिसे भरे हैं ऐसा अन्न हो।

[६] (४४२) हे (राजन्) राजा इन्द्र! (देवेषु चर्षणीसहं त्वां) देवोंमें वीर कम और शत्रुके नाशक तुझे (अवसे हूमहे) रक्षणके लिये बुलाते हैं। (विश्वा पिब्दना सु विथुरा) संपूर्ण दुर्जनोंको अच्छी तरह व्यथित करो। हे (वसो) निवासक इन्द्र! (नः अमित्रान् सुषहान् कृधि) हमारे शत्रुओंको सुखसे जीतने योग्य करो॥ ६॥

१ देवेषु उग्रं चर्षणीसहं त्वां अवसे हूमहे— वीरोंमें विशेष उग्र और शत्रुका पराभव करनेवाला तू है इसलिये तुझे हम अपने रक्षणके लिये बुलाते हैं।

२ विश्वा पिब्दना सु विथुरा— सबको पीसकर नष्ट करनेवाले शत्रुओंको उत्तम रीतिसे दूर कर, नष्ट कर।

पिब्दना— पीस कर नाश करनेवाला शत्रु।

३ हे वसो! नः अमित्रान् सुसहान् कृधि— हे निवासक प्रभो! हमारे शत्रुओंको सुगमतासे जीतने योग्य कर।

[७] (४४३) हे (इन्द्र) इन्द्र! (नाहुषीषु कृष्टीषु) मानवी प्रजाओंमें (यत् ओजः नृम्णं च) जो बल और मानसिक शक्ति है और (यत् वा पञ्च क्षितीनां द्युम्नं आ भर) जो पांचों वर्गोंके पास तेज रहता है वह सब हमको दे दो। (सत्रा विश्वानि पौंस्या) और उनके साथ संपूर्ण सामर्थ्य भी रहें॥ ७॥

१ नाहुषीषु कृष्टीषु यत् ओजः नृम्णं च, यत् वा पञ्च क्षितीनां द्युम्नं सत्रा विश्वानि पौंस्या, तत् आ भर— मानवी प्रजाजनोंमें जो शारीरिक बल मानसिक सामर्थ्य तथा जो पांच प्रकारके मानवोंमें तेज हैं तथा उनके साथ जो सब सामर्थ्य रहते हैं वे सब हमें दे दो।

ओजः= शारीरिक बल। नृम्णं= नृ + मनः= मानसिक सामर्थ्य मानवी मन, मनन सामर्थ्य, धन ऐश्वर्य; द्युम्नं= तेज दिव्य मानसिक शक्ति पौंस्य= पौरुष वीरताका बल। ये सब सामर्थ्य हमें चाहिये। मनुष्य इन सामर्थ्योंसे युक्त हो।

[८] (४४४) हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र! (तृक्षौ जने वा) बलयुक्त मनुष्यमें (यत् द्रुह्यौ जने) तथा द्रोह करनेवाले मानवोंमें जो बल रहता है और (पूरौ यत् कत् च वृष्ण्यं) पुरीमें निवास करनेवालोंमें जो बल रहता है (तत् अस्मभ्यं) वह सब हमको (पृत्सु अमित्रान् तुर्वणे नृषाह्ये) संग्रामोंमें शत्रुओंका नाश करनेके लिये और शत्रुके मनुष्योंके साथ युद्ध कर लेनेके समय (सं रिरीहि) अच्छी प्रकार दे दो॥ ८॥

१ तृक्षौ जने यत् वृष्ण्यं— हलचल करनेवाले मनुष्योंमें जो बल है। तृक्ष्- चलना हलचल करना। तृक्ष्= चलो।

२ द्रुह्यौ जने यत् वृष्ण्यं— द्रोह करनेवाले लोगोंमें जो बल है।

३ पूरौ यत् कत् च वृष्ण्यं— पुरीमें रहनेवालोंमें जो भी कुछ बल होता है।

४ तत् अस्मभ्यं पृत्सु अमित्रान् तुर्वणे नृषाह्ये सं रिरीहि— वह सामर्थ्य हमको युद्धोंमें शत्रुओंका नाश करनेके लिये और शत्रुके वीरोंका पराभव करनेके लिये दे दो। हमें इन कार्योंको करनेके लिये ये सब बल चाहिये।

१३ यदिन्द्र सर्गे अर्वतश्चोदयासे महाधने ।
असमने अध्वनि वृजिने पथि श्येनाँ इव श्रवस्यतः ॥ ४४९ ॥

१४ सिन्धूँरिव प्रवण आशुया यतो यदि क्लोशमनु ष्वणि ।
आ ये वयो न वर्वृतत्यामिषि गृभीता बाह्वोर्गवि ॥ ४५० ॥

(म ६ सू ४७)

१ स्वादुष्किलायं मधुमाँ उतायं तीव्रः किलायं रसवाँ उतायम् ।
उतो न्वस्य पपिवांसमिन्द्रं न कश्चन सहत आहवेषु ॥ ४५१ ॥

२ अयं स्वादुरिह मदिष्ठ आस यस्येन्द्रो वृत्रहत्ये ममाद ।
पुरूणि यश्च्यौत्ना शम्बरस्य वि नवतिं नव च देह्यो३ हन् ॥ ४५२ ॥

---

१ पितॄणां प्रिया शर्म— जैसा युद्ध पितरोंको आनन्द देनेवाला होता है। ऐसा युद्ध करना योग्य है।

३ तन्वे च तने छर्दिः यच्छ— शरीरकी तथा बालबच्चोंकी सुरक्षाके लिये उत्तम सुरक्षित घर दे दो। ऐसा घर हो कि जिसमें बालबच्चोंकी सुरक्षा हो।

४ अमित्रं द्वेषः यावय— अभिचारी शत्रुको दूर कर। वह हमें बारबार न सतावे ऐसा कर।

[१३] (४४९) हे (इन्द्र) इन्द्र! (महाधने सर्गे असमने अध्वनि) संग्राममें युद्धोंमें विषम मार्गमें (अर्वतः) घोडोंको (यत् चोदयासे) जब प्रेरणा करते हैं। उस समय वे घोडे (वृजिने पथि श्रवस्यतः श्येनान् इव) कुटिल मार्गमें भी अन्नकी अभिलाषा इच्छासे दौडनेवाले श्येन पक्षियोंकी तरह शीघ्र गमन करते हैं ॥ १३ ॥

हे इन्द्र! युद्धमें नवीन उत्पत्ति करनेके व्यवसायमें अथवा विषम मार्गमें घोडोंको जब तू दौडाता है तब कुटिल मार्गसे भी अन्न चाहनेवाले श्येन पक्षी जैसे दौडते हैं, वैसे वे घोडे दौडने लगते हैं।

महा-धनं— युद्ध संग्राम, जिसमें शत्रुसे धन प्राप्त होता है।

सर्गः— उत्पत्ति उत्पन्न करानेवाले कर्म।

असमनः अध्वा— विषम मार्ग कठिन मार्ग।

वृजिनः पन्था— टेढा मार्ग कुटिल मार्ग।

[१४] (४५०) (प्रवणे आशुया यतः सिन्धून् इव)

नीचेके प्रदेशमें शीघ्र गतिसे जानेवाली नदियोंकी तरह (आमिषि वयः न) मांसके लिये दौडनेवाले पक्षियोंके समान (यदि क्रोशं अनु ष्वणि) शब्दसे मन उत्सन्न होनेपर (बाह्वोः गृभीताः ये गवि आवर्वृतति) बाहुओंसे पकडे गये रास जिनके ऐसे घोडे भूमिपर दौडते जाते हैं और विजय पाते हैं ॥ १४ ॥

वैसे इन्द्रके घोडे सदा विजयी होते हैं।

[१] (४५१) (अयं स्वादुः किल) यह सोम वास्तवमें स्वादु है। (उत अयं मधुमान्) और यह मीठा भी है। (अयं तीव्रः किल) यह सचमुच अति तीक्ष्ण है (उत अयं रसवान्) और यह रसवाला भी होता है (उतो अस्य पपिवांसं इन्द्रं) और इस सोमके पीनेवाले इन्द्रको (आहवेषु कः चन न सहते) संग्राममें कोई भी पराजित नहीं कर सकता ॥ १ ॥

सोमरस स्वादु, रुचिकर, मीठा और तीखा होता है। इसके पीनेसे इन्द्रको युद्धमें कोई शत्रु जीत नहीं सकता इतनी शक्ति आती है।

[२] (४५२) (इह अयं स्वादुः मदिष्ठः आस) यहां यह स्वादु सोमरस पीनेपर अतिशय हर्षकारक सिद्ध हुआ, (यस्य इन्द्रः वृत्रहत्ये ममाद) जिसके पान करनेसे इन्द्र शत्रुका नाश करनेके समयमें हर्षयुक्त हुआ। (यः शम्बरस्य पुरूणि च्यौत्ना) जिसने शम्बरासुरके बहुतसे दुर्ग तथा सेनाओंका नाश किया। (देह्यः नवतिं नव च वि हन्) और शत्रुके निम्यानबे नगरियोंको भी जिसने नाश किया ॥ २ ॥

सोमरस शक्तिका संवर्धन इस तरह करता है।

३ अयं मे पीत उदियर्ति वाच—मयं मनीषामुशतीमजीगः ।
अयं षळुर्वीरमिमीत धीरो न याभ्यो भुवनं कच्चनारे ॥ ४५३ ॥
४ अयं स यो वरिमाणं पृथिव्या वर्ष्माणं दिवो अकृणोदयं सः ।
अयं पीयूषं तिसृषु प्रवत्सु सोमो दाधारोर्व१न्तरिक्षम् ॥ ४५४ ॥
५ अयं विदच्चित्रदृशीकमर्णः शुक्रसद्मनामुषसामनीके ।
अयं महान् महता स्कम्भने—नोद् द्यामस्तभ्नाद् वृषभो मरुत्वान् ॥ ४५५ ॥
६ धृषत् पिब कलशे सोममिन्द्र वृत्रहा शूर समरे वसूनाम् ।
माध्यंदिने सवन आ वृषस्व रयिस्थानो रयिमस्मासु धेहि ॥ ४५६ ॥
७ इन्द्र प्र णः पुरएतेव पश्य प्र नो नय प्रतरं वस्यो अच्छ ।
भवा सुपारो अतिपारयो नो भवा सुनीतिरुत वामनीतिः ॥ ४५७ ॥

---

[३] (४५३) (अयं पीतः मे वाचं उद् इयर्ति) सोमके पीनेसे मेरी वाणी ऊंची होकर निकलती है। (अयं उशतीं मनीषां अजीगः) यह सोम तेजस्वी बुद्धिको प्रकाशित करता है। (अयं धीरः षट् उर्वीः अमिमीत) इस बुद्धिवर्धक सोमने पृथ्वीके छः विभाग बनाये हैं। (याभ्यः आरे कत् चन भुवनं न) जिनसे कोई भी अधिक भूविभाग नहीं है ॥ ३ ॥

पृथ्वीके छः विभाग हैं और अधिक नहीं हैं। इनमें यह सोम होता है और पीनेसे वाणीका संवर्धन करता है।

[४] (४५४) (सः अयं सोमः) यह वह सोम है (यः पृथिव्याः वरिमाणं अकृणोत्) जिसने पृथिवीको अनन्त विस्तृत किया (दिवः वर्ष्माणं) और द्युलोकको भी अनन्त दृढ किया (अयं सः) यह वही सोम है। (अयं तिसृषु प्रवत्सु पीयूषं दाधार) इस सोमने औषधियों जल और गायोंमें उत्तम अमृतरसको रखा है। (उरु अन्तरिक्षं) और विस्तृत अन्तरिक्षको भी धारण किया है ॥ ४ ॥

[५] (४५५) (शुक्रसद्मनां उषसां अनीके) निर्मल अन्तरिक्ष निवास कर ऐसी उषाओंके समूहमें (अयं चित्रदृशीकं अर्णः विदत्) यह सोम ही चित्रविचित्र ज्योतियोंको प्रकाशित करता है। (महान् वृषभः मरुत्वान्) महान् बलवान और मरुतोंसे युक्त (अयं महता स्कम्भनेन) यह सोम बडे मध्यवर्ती खम्भेसे (द्यां उत् अस्तभ्नात्) द्युलोकको ऊपर स्थापित करता है ॥ ५ ॥

इन दोनों मंत्रोंमें सोमपद परमात्माका वाचक है और उसकी शक्ति इस सोममें ये कर्म करती है ऐसा सूचित किया है।

[६] (४५६) हे (शूर) शूरवीर (इन्द्र) इन्द्र! (वृत्रहा वसूनां समरे) शत्रुघातक तू धनोंकी प्राप्तिके संग्राममें (कलशे सोमं धृषत्) कलशमें रहे सोमको उत्साह बढानेके लिये (पिब) पी (माध्यंदिने सवने आ वृषस्व) मध्याह्नके सवनमें अपना बल बढाओ और (रयिस्थानः रयिं अस्मासु धेहि) धनका आधार बनकर तू हमें धन दे ॥ ६ ॥

रयिस्थानः अस्मासु रयिं धेहि— धनका स्थान बनकर हमें धन दो।

[७] (४५७) हे (इन्द्र) इन्द्र! तू (पुरएता इव नः प्र पश्य) अग्रगामीकी तरह हमको देख (वस्यः अच्छ प्रतरं नः प्र नय) श्रेष्ठ धन सुगमतासे हमें प्राप्त हो। (सुपारः भव) अच्छी तरह दुःखसे पार करनेवाला हो। (नः अतिपारयः) हमें शत्रुओंसे छुडाओ। (सुनीतिः भव) सुन्दर नीतिमान् हो अथवा पार सुगमतापूर्वक ले जानेवाला हो। (उत वामनीतिः) और प्रशंसनीय नीतिका संचालक हो ॥ ७ ॥

१ पुरएता इव नः प्र पश्य— अगुआ नेता बनकर हमारी देख भाल कर।

२ वस्यः अच्छ प्रतरं नः प्र नय— श्रेष्ठ धनमार्गसे हमें सुगमतासे दुःखसे पार ले चलो।

३ सुपारः भव— हमें दुःखोंसे पार ले जानेवाला हो।

४ अतिपारय— हमें शत्रुओंसे पार कर। शत्रुओंसे दूर कर।

८ उरु नो लोकमनु नेषि विद्वान् स्वर्वज्ज्योतिरभयं स्वस्ति ।
ऋष्वा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उप स्थेयाम शरणा बृहन्ता ॥ ४५८ ॥

९ वरिष्ठे न इन्द्र वन्धुरे धा वहिष्ठयोः शतावन्नश्वयोरा ।
इषमा वक्षीषां वर्षिष्ठां मा नस्तारीन्मघवन् रायो अर्यः ॥ ४५९ ॥

१० इन्द्र मृळ मह्यं जीवातुमिच्छ चोदय धियमयसो न धाराम् ।
यत् किं चाहं त्वायुरिदं वदामि तज्जुषस्व कृधि मा देववन्तम् ॥ ४६० ॥

५ सुनीति भव— उत्तम नीतिमान् हो । हमें उत्तम मार्गसे ले चल ।

६ वामनीतिः भव— उत्तम प्रशंसनीय नीतिका प्रचारक हो ।

[८] (४५८) हे इन्द्र ! (विद्वान् उरुं लोकं नः अनु नेषि) तू ज्ञानी है इसलिये विस्तीर्ण लोकको हमें प्राप्त करा । (स्वर्वत् अभयं स्वस्ति ज्योतिः) सुखयुक्त भयरहित कल्याणकारक ज्योति हमें प्राप्त करा । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (स्थविरस्य ते ऋष्वा बृहन्ता बाहू शरणा उप स्थेयाम) तुझ बडे के बडे विशाल बाहुओंकी शरणमें हम आकर तेरे समीप रहेंगे ॥ ८ ॥

१ विद्वान् उरुं लोकं नः अनुनेषि— तू सब जानता है इसलिये सुखदायी विस्तीर्ण प्रदेशमें हमको अनुकूलतासे ले चल ।

२ स्वर्वत् अभयं स्वस्ति ज्योतिः— सुखमय भयरहित कल्याणकारक तेज हमें प्राप्त हो ।

३ स्थविरस्य ते ऋष्वा बृहन्ता बाहू शरणा उप स्थेयाम— तुझ वृद्ध पुरातन पुरुषके विशाल दृढ बडे बाहुओंकी शरण जाकर हम तेरे पास आकर रहेंगे । तेरे आश्रयसे रहकर आनंद प्राप्त करेंगे ।

[९] (४५९) हे (इन्द्र) इन्द्र ! (वरिष्ठे वन्धुरे नः आ धाः) श्रेष्ठ रथपर हमको बैठा । हे (शतावन्) सैकडों कर्मोंके स्वामी इन्द्र ! (वहिष्ठयोः अश्वयोः आ धाः) अतिउत्तम वहन करनेवाले अश्वोंके रथमें हमें स्थापन कर । (इषां वर्षिष्ठां इषं आ वक्षि) अन्नोंमेंसे अत्यन्त श्रेष्ठ अन्न हमारे लिये दे । हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! (अर्यः नः रायः मा तारीत्) तू धनका स्वामी है हमारे धनका कोई शत्रु नाश न करे ऐसा हमारा संरक्षण कर ॥ ९ ॥

१ वरिष्ठे वन्धुरे नः आ धाः— उत्तम रथपर हमें बिठलाओ । हम उत्तम रथपर बैठें ऐसा करो ।

२ वहिष्ठयोः अश्वयोः नः आ धाः— उत्तम दौडने वाले घोडोंके रथपर हमें बिठला । हमारे पास उत्तम चलनेवाले घोडे हों ।

३ इषां वर्षिष्ठां इषं आ वक्षि— अन्नोंमें जो श्रेष्ठ अन्न है वही हमें मिले ऐसा कर ।

४ अर्यः (त्वं) नः रायः मा तारीत्— तू स्वामी है अतः तू ऐसा कर कि हमारा धन कोई दूसरा विनष्ट न करे ।

[१०] (४६०) हे (इन्द्र) इन्द्र ! (मृळ) हमको सुखी कर । (जीवातुं मह्यं इच्छ) दीर्घ जीवन मेरे लिये मिले ऐसी इच्छा कर । (धियं चोदय) मेरी बुद्धिको अच्छे कर्मोंमें प्रेरित कर । (अयसः न धारां) लोहमय शस्त्र आदिकी धाराकी तरह मेरी बुद्धि तीक्ष्ण हो । (त्वायुः इदं यत् किं च अहं वदामि) तेरी प्रीति चाहता हुआ जो कुछ मैं बोलता हूं (तत् जुषस्व) वह श्रवण कर । (मा देववन्तं कृधि) मुझे देवत्वोंसे युक्त कर ॥ १० ॥

१ मह्यं मृळ— मुझे सुखी कर ।

२ मह्यं जीवातुं इच्छ— मुझे दीर्घ जीवन प्राप्त हो ऐसी इच्छा कर ।

३ धियं चोदय— मेरी बुद्धिको सत्कर्म करनेकी प्रेरणा कर ।

४ अयसः धारां न धियं चोदय— तलवारकी तीक्ष्ण धाराके समान मेरी बुद्धि तीक्ष्ण हो ।

५ त्वायुः यत् किं च इदं अहं वदामि तत् जुषस्व— तेरा प्रेम चाहता हुआ जो मैं बोलता हूं वह सुन ।

६ मा देववन्तं कृधि— मुझे देवोंके साथ रहनेवाला कर । मुझे दिव्य शक्तियां प्राप्त हों ।

१५ क ईं स्तवत् कः पृणात् को यजाते यदुग्रमिन्मघवा विश्वहावेत्।
पादाविव प्रहरन्नन्यमन्यं कृणोति पूर्वमपरं शचीभिः ॥ ४६५ ॥

१६ शृण्वे वीर उग्रमुग्रं दमायन्नन्यमन्यमतिनेनीयमानः।
एधमानद्विळुभयस्य राजा चोष्कूयते विश इन्द्रो मनुष्यान् ॥ ४६६ ॥

१७ परा पूर्वेषां सख्या वृणक्ति वितर्तुराणो अपरेभिरेति।
अनानुभूतीरवधून्वानः पूर्वीरिन्द्रः शरदस्तर्तरीति ॥ ४६७ ॥

---

[१५] (४६५) (क ईं स्तवत्) कौन इस इन्द्रकी स्तुति करता है? (कः पृणात्) कौन उसको प्रसन्न करता है? (कः यजाते) कौन उसका यजन करता है? (यत् मघवा उग्रं इत् विश्वहा अवेत्) जिससे भगवान् इन्द्र उग्रवीर होकर सदा हमारा रक्षण करे। (प्रहरन् पादौ इव) जिस प्रकार मनुष्य चलता हुआ मार्गमें पैरोंको एकके बाद दूसरा रखता है उस प्रकार (शचीभिः पूर्वं अपरं अन्यं अन्यं कृणोति) अपनी बुद्धिद्वारा पहिले एकको पीछे दूसरेको इस प्रकार बलवान करता रहता है ॥ १५ ॥

१ कः ईं स्तवत्— कौन प्रभुकी उत्तम स्तुति कर सकता है?

२ कः ईं पृणात्— कौन इस प्रभुको प्रसन्न कर सकता है?

३ कः ईं यजाते— कौन इसके लिये यज्ञ करता है?

४ मघवा यत् उग्रं इत् विश्वहा अवत्— भगवान् प्रभु अपने सर्वदा भक्तको उग्रवीर बनाता है और—

५ शचीभिः पूर्वं अपरं अन्यं अन्यं कृणोति— अपनी नाना प्रकारकी शक्तियोंसे एकको पहिले और दूसरेको उसके बाद ऐसा एक एकको बल करता रहता है। एकको पहिले ऊंचा बनाता है, तो दूसरेको बादमें ऊंचा बनाता है।

[१६] (४६६) (उग्रं उग्रं दमायन्) हरएक उग्र शत्रुका दमन करता है (अन्यं अन्यं अतिनेनीयमानः) हरएक उत्तम पुरुष अग्रसर बढाता है ऐसा (वीरः शृण्वे) यह वीर है ऐसा सुनते हैं। (एधमान-द्विट् उभयस्य राजा इन्द्रः) बढनेवाले शत्रुओंका द्वेष करनेवाला और द्यावापृथिवीका राजा यह इन्द्र (विशः मनुष्यान् चोष्कूयते) अपने प्रजारूपी मनुष्योंको रक्षणके लिये बारबार बुलाता है ॥ १६ ॥

१ उग्रं उग्रं दमायन्— हरएक शत्रुके वीरको दबाता है।

२ अन्यं अन्यं अतिनेनीयमानः— हरएक उत्तम मनुष्योंको बढाता है।

३ वीरः शृण्वे— ऐसा यह वीर है ऐसा सुनते हैं।

४ एधमान-द्विट्— बढनेवाले शत्रुका यह द्वेष करता है।

५ उभयस्य राजा इन्द्रः— दोनोंका यह इन्द्र राजा है।

६ विशः मनुष्यान् चोष्कूयते— प्रजाजनोंका संरक्षण करता है।

[१७] (४६७) (पूर्वेषां सख्या परा वृणक्ति) पहिलोंकी मैत्रिताको दूर करता है और (वितर्तुराणः अपरेभिः एति) शत्रुकी हिंसा करता हुआ दूसरोंके साथ चलता है। (अनानुभूतीः अवधून्वानः) अनुभवशून्य प्रजाओंको दूर करता है और इस तरह (पूर्वीः शरदः इन्द्रः तर्तरीति) पूर्ण आयुके वर्षोंका यह इन्द्र अतिक्रमण करता है ॥ १७ ॥

१ पूर्वेषां सख्या परा वृणक्ति— पूर्वकालके लोगोंकी मित्रताएं वह दूर रखता है और—

२ वितर्तुराणः अपरेभिः एति— शत्रुका नाश करके वह नवीन नवीन भक्तोंके साथ मित्रता करनेके लिये जाता है।

३ अनानुभूतीः अवधून्वानः— अनुभवशून्य भक्तोंको वह दूर करता है और—

४ पूर्वीः शरदः इन्द्रः तर्तरीति— पूर्ण वर्ष इन्द्र व्यतीत करके आगे बढता है।

पूर्व समय जो मित्र हुए हैं उनके पास वह नवीन भक्तोंके साथ अधिक रहने लगता है। नवीनोंको उच्च बनानेका उत्साह देता है। शत्रुओंको दूर करके वह नव भक्तोंके साथ रहता है।

२२ प्रस्तोक इन्नु राधसस्त इन्द्र दश कोशयीर्दश वाजिनोऽदात्।
दिवोदासादतिथिग्वस्य राधः शाम्बरं वसु प्रत्यग्रभीष्म ॥४७२॥
२३ दशाश्वान् दश कोशान् दश वस्त्राधिभोजना।
दशो हिरण्यपिण्डान् दिवोदासादसानिषम् ॥४७३॥
२४ दश रथान् प्रष्टिमतः शतं गा अथर्वभ्यः। अश्वथः पायवेऽदात् ॥४७४॥
२५ महि राधो विश्वजन्यं दधानान् भरद्वाजान् त्सार्ञ्जयो अभ्ययष्ट ॥४७५॥
२६ वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः।
गोभिः सन्नद्धो असि वीळयस्वाऽऽस्थाता ते जयतु जेत्वानि ॥४७६॥

---

[२२] (४७२) हे (इन्द्र) इन्द्र! (ते राधसः प्रस्तोकः) तेरी धनिकोंकी स्तुति करनेवालेने (दश कोशयीः) सुवर्णपूर्ण दस कोश और (दश वाजिनः नु) दस घोडे (अदात्) दिये (दिवोदासात्) दिवोदाससे (अतिथिग्वस्य शाम्बरं राधः) अतिथियोंको भी देनेवालेका धन जो शम्बरसे प्राप्त था वह भी हमने (वसु प्रति अग्रभीष्म) धन ग्रहण किया ॥ २२ ॥

१ ते राधसः प्रस्तोकः दश कोशयीः दश वाजिनः नु अदात्— हे प्रभो! तेरी विभूतियोंकी प्रशंसा करनेवालेने धनके दस कोश और दस घोडे मुझे दानमें दिये। इस तरह दान करना चाहिये।

२ दिवोदासात् अतिथिग्वस्य शाम्बरं राधः वसु प्रति अग्रभीष्म— दिवोदाससे अतिथियोंको भी देनेवालेका धन जो शम्बरने अपने अधिकारमें रखा था वह धन हमने प्राप्त किया।

दिवोदास— द्युलोकका भक्त ईश्वरका भक्त। अतिथि-ग्व— अतिथियोंको भी देनेवाला। शं-बर— मेघ उसकोभी अपने आधीन रखनेवाला शत्रु।

[२३] (४७३) (दश अश्वान्) दस अश्व (दश कोशान्) सुवर्णपूर्ण दस कोश (अधिभोजना दश वस्त्रा) अधिक भोजन और दस वस्त्र (दशो हिरण्यपिण्डान्) दस सुवर्णपिण्ड (दिवोदासात्) दिवोदास राजासे (असानिषं) प्राप्त किये ॥ २३ ॥

अधि भोजना— उत्तम भोजन उत्तम उपभोगके योग्य।

[२४] (४७४) (दश प्रष्टिमतः रथान्) दस घोडोंसे युक्त रथोंके (शतं गाः) सौ गायें (अथर्वभ्यः पायवे) अथर्व मानवोंको और पालकको (अश्वथः अदात्) अश्वथने दीं ॥ २४ ॥

अथर्वाः— (अ-थर्वः) चंचलतारहित स्थिर मनवाला योगी।

पायुः— रक्षक पालक।

अश्वथः— अश्वोंमें रहनेवाला।

[२५] (४७५) (विश्वजन्यं महि राधः) सब मनुष्योंके लिये हितकारक महान् धनको (दधानान् भरद्वाजान्) धारण करनेवाले भरद्वाजके पुत्रोंका (सार्ञ्जयः) सृञ्जयके पुत्रने उनका (अभ्ययष्ट) प्रदान करके सत्कार किया ॥ २५ ॥

विश्व-जन्यं— सार्वजनिक सब मानवोंका हित करनेवाला।

भरद्वाजः— (वाज भरत्) अन्नका दान करनेवाला, एक ऋषि।

सार्ञ्जयः— सृञ्जयका पुत्र।

[२६] (४७६) हे (वनस्पते) वनस्पतिविकार रथ! तू (वीड्वङ्गः भूयाः) दृढ मजबूत अवयवोंवाला (अस्मत्सखा) हमारा मित्र सहायक (प्रतरणः सुवीरः) तारक और सुन्दर शूरवीर योद्धाओंसे वा पुत्रोंसे युक्त (गोभिः सन्नद्धः असि) और गायके चमडेकी डोरीसे अच्छी तरह बंधा हुआ हो ॥ २६ ॥

वनस्पति— रथ वृक्षकी लकडीसे बना हुआ रथ। अंगके अर्थमें पूर्णतया प्रयोग। गौ- गाय गायके चमडेकी डोरी।

रथ मजबूत हो वीरका हितकारी युद्धमें चलानेवाला वीरोंके बैठनेयोग्य और डोरियोंसे अच्छी तरह बंधा हो।

२७ दिवस्पृथिव्याः पर्योज उद्भृतं वनस्पतिभ्यः पर्याभृतं सहः ।
अपामोज्मानं परि गोभिरावृत- मिन्द्रस्य वज्रं हविषा रथं यज ॥ ४७७ ॥

२८ इन्द्रस्य वज्रो मरुतामनीकं मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभिः ।
सेमां नो हव्यदातिं जुषाणो देव रथ प्रति हव्या गृभाय ॥ ४७८ ॥

२९ उप श्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा ते मनुतां विष्ठितं जगत् ।
स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवै- र्दूराद् दवीयो अप सेध शत्रून् ॥ ४७९ ॥

३० आ क्रन्दय बलमोजो न आ धा नि ष्टनिहि दुरिता बाधमानः ।
अप प्रोथ दुन्दुभे दुच्छुना इत इन्द्रस्य मुष्टिरसि वीळयस्व ॥ ४८० ॥

३१ आमूरज प्रत्यावर्तयेमाः केतुमद् दुन्दुभिर्वावदीति ।
समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरो ऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ॥ ४८१ ॥

---

[२७] (४७७) (दिवः पृथिव्याः) द्युलोक और पृथ्वीसे (उद्भृतं ओजः परि) उद्धृत किया बल इसको प्राप्त है (वनस्पतिभ्यः परि) वनस्पतियोंसे (आभृतं) इकट्ठा किया हुआ (सहः) सामर्थ्य (अपां ओज्मानं) जलोंके तेजसे युक्त (गोभिः परि आवृतं) गौके चमडेकी डोरियोंसे चारों तरफसे बंधे (इन्द्रस्य वज्रं रथं) इन्द्रके वज्ररूप और रथरूप (हविषा यज) हविसे यजन कर ॥ २७ ॥

इन्द्रकी प्रीति प्राप्त करनेके लिये यज्ञमें आहुतियां दे ।

[२८] (४७८) (इन्द्रस्य वज्रः) इन्द्रका वज्र (मरुतां अनीकं) मरुतोंका सैन्य (मित्रस्य गर्भः) मित्रका गर्भ और (वरुणस्य नाभिः) वरुणकी नाभिके गुणोंसे युक्त तू है। हे (देव) कान्तिमान् इन्द्र! (रथः सः) रमणीय गुणोंसे युक्त तू (इमां नः हव्यदातिं) हमारी इस आहुतियोंको (जुषाणः हव्या प्रति गृभाय) स्वीकार करके हमारे हविको ग्रहण कर ॥ २८ ॥

[२९] (४७९) हे (दुन्दुभे) दुन्दुभि! (पृथिवीं उत द्यां उप श्वासय) पृथिवीको और द्युलोकको अपने शब्दोंसे जीवित कर। (विष्ठितं जगत् ते पुरुत्रा मनुतां) विशेष रूपसे रहा हुआ जगत् तेरे शब्दको बहुत प्रकारसे सम्मान देवे। (सः इन्द्रेण देवैः सजूः) वह तू इन्द्रके तथा अन्य देवोंके साथ (दूराद् दवीयः शत्रून् अप सेध) दूरसे भी अति दूर रहनेवाले हमारे शत्रुओंको दूर कर ॥ २९ ॥

[३०] (४८०) हे दुन्दुभि! (आ क्रन्दय) हमारे शत्रुओंको रुलाओ। (बलं ओजः नः आ धाः) बल और ओज हमको दे (दुरिता बाधमानः नि ष्टनिहि) पापियोंको बाधा करता हुआ तू अत्यन्त बडा शब्द कर। हे (दुन्दुभे) दुन्दुभि! (दुच्छुनाः इतः अप प्रोथ) हमारे दुःखदायक शत्रुसेनाओंको हमारे स्थानसे दूर कर। (इन्द्रस्य मुष्टिः असि) तू इन्द्रकी मुष्टि है इसलिये हमें (वीळयस्व) सामर्थ्यवान् कर ॥ ३० ॥

१ आक्रन्दय— शत्रुओंको रुलाओ।

२ बलं ओजः नः आ धाः— बल और सामर्थ्य हमें स्थापन कर

३ दुरिता बाधमानः निःष्टनिहि— पापी शत्रुओंका प्रतिबंध करके शब्द करता रह

४ दुच्छुनाः इतः अप प्रोथ— दुःख देनेवाली शत्रुसेनाको यहांसे हटा दे।

५ इन्द्रस्य मुष्टिः असि वीळयस्व— तू इन्द्रकी मुष्टिमात्र है। हमारा बल बढाओ।

[३१] (४८१) हे इन्द्र! (अमूः आ अज) शत्रुओंकी सेनाओंको हटा दे। (इमाः प्रत्यावर्तय) हमारी सेनाको सब तरफ लौटा ला। (दुन्दुभिः केतुमद् वावदीति) दुन्दुभि झण्डेके साथ अत्यन्त शब्द करती रहे। (अश्वपर्णाः नः नरः सं चरन्ति) घोडेसवार और हमारे वीर शत्रुओंसे युद्ध करते हैं इसलिये हे (इन्द्र) इन्द्र! (अस्माकं रथिनः जयन्तु) हमारे रथवाले वीर शत्रुओंको जीतें ऐसा कर ॥ ३१ ॥

१ अमूः या भर— इस शत्रुसेनाको भगा दे।

२ इमाः प्रत्यावर्तय— इस हमारी सेनाको अब पीछे ले आ।

३ केतुमत् दुन्दुभिः वावदीति— ध्वजके साथ जो दुंदुभि है वह शब्द करता है।

४ नः अश्वपर्णाः नरः सं चरन्ति— हमारे घुडसवार और हमारे नेता वीर संचार कर रहे हैं।

५ अस्माकं रथिनः जयन्तु— हमारे रथी वीरोंका जय हो।

इन्द्र प्रकरण

इन्द्रमन्त्रोंमें आदर्श युद्धमन्त्रीका दर्शन

भरद्वाज ऋषिके दर्शनमें इन्द्र देवताके सूक्त मं० ६ सू० १७ से सू० ४७ तक ३१ सूक्त हैं और मन्त्रसंख्या ३०८ है। इन सब मंत्रोंका द्रष्टा बार्हस्पत्य भरद्वाज ऋषि है। 'यत् देवा अकुर्वन् तत् करवाणि' (श० प० ब्रा०) जैसा देव करते हैं वैसा मैं करता हूं। यह रीति है देवका उपदेश मनुष्योंके आचरणमें लानेकी। वेदका धर्म इस तरह मनुष्यके जीवनमें लाया जा सकता है। इन्द्र देवता द्वारा कैसा उपदेश मिलता है और इन्द्र देवतामें आदर्श पुरुष कैसा है यह संक्षेपसे यहां देखना है।

इन्द्र जैसा दूसरा कोई नहीं

११५ त्वावान् अन्यः देवः नास्ति न मर्त्यः— तेरे समान दूसरा देव नहीं और मनुष्य भी नहीं। ऐसा इन्द्रका अद्वितीय सामर्थ्य है। इन्द्रकी अद्वितीयता यहां बताई है। इस लिये परिपूर्णतासे इन्द्र जैसा हमारा आचरण हो ही नहीं सकता परंतु जितना होगा उतना हमारी उन्नतिके लिये साधक हो सकता है। इन्द्र जैसा हम बन नहीं सकते इसलिये कोई चुप न बैठे, पर जितना हो सकता है उतना उसके समान बननेका यत्न करे।

सब प्रजापर इन्द्रका स्वामित्व

११७ कृष्टीः हस्तयोः आ दधिषे— प्रजाजनोंको इसने अपने हाथोंमें रखा है। सब प्रजाजनोंपर इन्द्रका परिपूर्ण स्वामित्व है। उसकी आज्ञामें उसके अधिकारमें सब भुवन रहते हैं। सब विश्वपर उसका अधिकार इस तरह है

इन्द्रका आनन्दी स्वभाव

इतना सब विश्वपर अधिकार चलानेका कार्य वह करता है इस कारण उसको कोई कष्ट नहीं होते। वह सदा आनन्द स्थितिमें ही रहता है।

१९० स-मद्-वा— आनन्द उत्साहसे सदा रहनेवाला मुदि-प्रहृष्टः उसके साथ आनन्द प्रसन्नतासे रहनेवाला इन्द्र है।

अर्थात् सब विश्वपर शासन करते रहनेपर उसको किसी तरहकी कठिनता नहीं है। इस विश्वशासनका कार्य करनेमें उसको कोई कष्ट नहीं होते। वह सदा आनन्दप्रसन्न रहता है। सबके साथ हंसता खेलता है। जैसे कोई श्रम नहीं हुए ऐसा वह रहता है।

यह भी उसके विशेष सामर्थ्यका ही लक्षण है। यदि इन्द्रमें विशेष सामर्थ्य न रहता तो ऐसा आनन्दप्रसन्न रहना उसके लिये संभव ही नहीं था। यह सामर्थ्य उसके विशेष ज्ञान संपन्नताके कारण है। वह उसका गुण अब देखिये—

इन्द्रकी ज्ञानसंपन्नता

१७३ ब्रह्म जुषि— ज्ञानकी बातें सुन।

०१ कवीतमः कवीनां— ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ ज्ञानी।

१११ श्रुत! चयित्स्यपः प्र श्रावय— हे ज्ञानी! हमारे ज्ञानकी बातें सुनाओ।

१५५ ब्रह्म वर्धात्— ज्ञान बढता रहे।

वह कवीनां कवितमः (१०१) ज्ञानियोंमें अत्यंत श्रेष्ठ ज्ञानी है। ब्रह्म वर्धात् (१५५) ज्ञान सब शक्ति-

रक्षणका कार्य

१७५ स ई पाहि— वह इस सबका रक्षण करता है।

१७९ पजान् भाता भव— यज्ञ करनेवालोंका रक्षक हो।

१७९ अस्माकासः नूतमासः च अपः सूर्याः नः पुरोदधे वरूता भव— जो हमारे भद्र लोक हैं जो हमें आगे करते हैं उनका रक्षक हो।

१८० वृत्रहत्ये ते विश्वं सभा अमुधायि— शत्रुहत्या करनेके समय उपयोगी होनेवाला सब बल तेरे पास दिया है।

यह इन्द्र बलवान् है और सब प्रकारका संरक्षणका कार्य करनेके लिये तत्पर रहता है। हमारे भेद लोगोंका और आर्योंका रक्षण करनेका धर्म यह करता है। जो भयभीत रहते हैं उनका संरक्षण इन्द्र करता है। शत्रुमें जो भयसे भयभीत हुए हैं वे यदि इन्द्रकी सहायता मांगेंगे तो वह उनको सहायता देता है और उनका रक्षण करता है।

यह सब उनके विशेष बलके कारण वह कर सकता है अतः उनके बलके विषयमें अब देखिये—

बल

१११ वृषणं धनस्पृतं शूशुवांस सुदक्ष शुष्म नः आ भर— बलवर्धक धनका दान करनेका सामर्थ्य जिसमें है, शक्तिको जो बढाता, ऐसा दक्षतायुक्त बल हमें दे दो।

२११ विश्वतः वृषभः शुष्मः अर्वाक् अभि आ समेतु— चारों ओरसे बल बढानेवाला सामर्थ्य हमारे पास इकट्ठा हो।

२७७ शूरः शुरः धृष्णुः अभ्यमानः योधः त्वा न युयोध— शूर त्वरासे कार्य करनेवाला शत्रुका धर्षण करनेवाला अथवा अमानी भला तुमसे युद्ध नहीं कर सकता।

११० ते अस्य शवसः अन्तः न आपि— तेरे इस बलका अन्त नहीं है।

रोदसी महित्वा वि बबाधे— द्यावापृथिवी तेरे महत्त्वको देखकर कांपती है।

१११ हरिशिप्रः ऊती अनूती सत्वा- सुवर्णका शिर स्त्राण धारण करनेवाला संरक्षण करने या न करनेकी अवस्थामें बलवान् ही रहता है।

असमाति ओजाः पुरु युधा हन्ति दस्यून् नि— अनुपम तेज और अपने युद्ध बल और शत्रुओं और दुष्टोंका नाश करता है।

१११ वीर्याय मृगः इव वावृधे— पराक्रम करनेके लिये वह बढता है।

उभे रोदसी अस्य अर्थं इव— द्यावापृथिवी वे इसके आगे कैसे हैं।

१११ अस्य बृहत् असुर्यं मन्ये— इस इन्द्रका बल बड़ा है ऐसा मैं मानता हूं।

१४१ देवेषु असुर्यं धारयथाः- देवोंमें बल धारण कर।

१४१ अस्य ओजः जनाः अनु प्र यन्ते— इस वीरके सामर्थ्यका सत्कार करते हैं।

वीर्याय सखा अनु दधिरे— वीरताके कार्य करनेके लिये इसको आगे रखते हैं।

१४४ तं ऊतयः सध्रीचीः सश्चत— उसके सब संरक्षक सामर्थ्य रहते हैं।

वृष्ण्यानि पौंस्यानि नियुतः इन्द्रं— वीरताके बल इन्द्रके साथ रहते हैं।

इन्द्रमें सर्व शरीरके बल रहते हैं मन बुद्धिके बल रहते हैं। ऐश्वर्यके बल रहते हैं। अन्यान्य बलभी उसमें दीखते रहते हैं। सब प्रकारसे सुसज्ज यह इन्द्र रहता है इस कारण यह सदा प्रभावशाली रहता है।

मुष्टि युद्ध

१८१ सस्पर्शि तरुषं त्वा वृत्रेषु मुष्टिहा गोषु युध्यम् त्वा चष्टे— सज्जनोंके पालक दुष्टोंका नाश करनेवाले ऐसे तेरी शत्रुका आक्रमण होनेपर तेरी प्रार्थना करता है। मुष्टियुद्ध करनेवाला गौके लिये युद्ध करता हुआ तेरी ओर देखता है।

वृत्र ये असुर हैं। घेरनेवाले ये असुर बारंबार इन्द्रके साथ युद्ध करनेके लिये तैयार रहते हैं। ये घेरते हैं सबसे चारों ओरसे घेरते हैं और चारों ओरसे हमला चढाते हैं।

इनोंसे सेनाके युद्ध होते हैं पर किसी किसी समय मुष्टि युद्ध भी करने पडते हैं। वृत्रेषु मुष्टिहा वृत्रोंके साथ मुष्टिसे युद्ध इन्द्र करता है और इनको मुष्टिके आघातसे मारता है।

रथमें भी बैठकर इन्द्र शत्रुके साथ लडता है।

रथ

१२५ अस्था गर्ते हरी आधितिष्ठत्— शत्रुपर हमला करनेवाला वीर रथमें घोडे जोतनेपर रथपर चढता है।

२११ वचोयुजा अस्य इन्द्रं वहतः— शब्दसे जोडे

ही अपने स्थानपर जाकर युद्ध होनेवाले घोड़े घर इन्द्रको ले जाते हैं।

१४७ युक्तासः हरयः त विश्ववारं रथं अर्वाक् वहन्तु— रथके साथ जोड़े हुए घोड़े तेरे प्रशंसनीय रथको यहां ले आवें।

इन्द्र बड़े सुन्दर रथमें बैठता है उस रथको उत्तम घोड़े खींचते हैं। ये घोड़े सबों-युजा (२१५) सब्दोंसे इशारा होते ही जहां जाना रहता है वहां जाते होते हैं। ऐसे शिक्षित घोड़े इन्द्रके होते हैं। घोड़े जोते जानेपर जहां जाना होता है वहां वे इसको ले जाते हैं। कमल इशारेसे ही इन्द्रके घोड़े यह कर्म करते हैं। उत्तमसे उत्तम सुशिक्षित घोड़े इन्द्रके होते हैं।

धूली उड़ाना

१९० पृदद्रेणुः— बड़ी धूली उड़ाकर आनेवाला वेगसे रथसे चलनेवाला।

इन्द्रका रथ बड़े वेगसे जाता है इसलिये बड़ी धूली उड़ाता हुआ इसका रथ चलता है।

इन्द्र सबका स्वामी है

१४५ जनानां असमः पतिः— लोगोंका अनुपम पति इन्द्र है।

विश्वस्य भुवनस्य एकः राजा— सब भुवनोंका अद्वितीय राजा यह इन्द्र है। इसके समान दूसरा कोई प्रभावी अधिपति नहीं है। सब प्रकारसे यह उत्तम स्वामी है। यह बुद्धिमानोंमें अधिक बुद्धिमान बलवानोंमें अधिक बलिष्ठ युद्ध करनेवालोंमें उत्तम युद्ध करनेवाला ऐसा यह होनेसे यहां एक सबने राजा स्वीकारा है।

बलवानोंमें यह उत्तम प्रभावी बलवान है। (१५) मरुत्वान्- प्रभावी बलवान यह इन्द्र है। जानराज्यमें अनुकूल गुण राजामें अवश्य चाहिये। यह इसमें है।

राजा बड़ा वीर धीर शूर चाहिये। वैसा यह इन्द्र है। इस विषयमें ये मंत्रभाग देखिये—

वीरत्व दर्शन

१७४ उग्रः- शूर वीर, धृष्णुः- शत्रुका नाश करनेवाला।

वज्रहस्तः— वज्र हाथमें धरनेवाला।

१८५ तरद् ग्रः— शीघ्र रक्षण करनेवाला

१८५ गोत्र भिद्— पर्वतोंके शत्रुके घेरोंका नाश करनेवाला

वज्र-भृत्— वज्र धारण करनेवाला।

हरि-ष्ठाः— घोड़ोंके कुम्भमें जो रहता है।

१७७ स्व धा-वाः— अपनी धारणशक्तिसे युक्त सम्पत्ति-मान्।

१७१ अनूम महो तवस विभूति प्रसाहे— कम न होनेवाला महासामर्थ्य युक्त विभूतिमान् और शत्रुका नाश करनेवाला शूर।

१८९ अभिभूति ओजाः— शत्रुका पराभव करनेमें समर्थ

वृत्रहन्— शत्रुका वध करनेवाला

अ षाळ्हः— अपराजित

पुरु-हूतः— बहुतों द्वारा सहाय्यार्थ बुलाने योग्य

अषाळ्हः— असह्य प्रभावी

सहमानः— शत्रुका हमला होनेपर अपराजित

चर्षणीनां वृषभं— मानवोंमें बलिष्ठ।

१९० युध्मः— युद्धमें कुशल

सत्वा— बलवान्

खजकृत्— युद्ध करनेमें प्रभावी

च्यवनः— शत्रुको स्थानभ्रष्ट करनेवाला

मानुषीणां कृष्टीनां एकः सहावा— मानवी प्रजाओंमें अद्वितीय बलवान्।

१९० एकः सहावा— अद्वितीय बलवान्।

१९१ त्वं दस्यून् अदमय — तूने दुष्टोंका दमन किया है।

त्वं एकः आर्याय कृष्टीः अवनो— तू अकेलेने आर्योंको प्रजा दी है।

ते तत् वीर्यं अस्ति— यह तेरा ही पराक्रम है।

१९१ सहिष्ठः— बलवान्

तुरतः तुरस्य ते सहः— शत्रुओंका नाश करनेवाले तेरा सामर्थ्य बहुत है।

उग्रस्य तवसः अवध्रस्य ऋभृतुरः उग्र तवीयः— उग्र बलवान् सर्व अपराजित शत्रुका नाश करनेमें तत्पर ऐसे तेरे उग्र बल हैं।

१९३ अच्युत-च्युत्— अटल शत्रुको उखाड़नेवाला

दृपयन्तं दस इन्— घमंड करनेवाले बलवान् शत्रुको तूने मारा।

अस्य पुरः वि ऐरणोः— शत्रुके नगरोंको तोड़ दिया।

देनेवाले शत्रुको त्वरासे नष्ट करता है वैसा पुत्र हमें दे दो वह पुत्र सचमुच सच्चा धन है।

१५६ नर्य सर्ववीरं वीरं कर्ता— मनुष्योंका हित करनेवाले सब प्रकारसे शूरवीर ऐसे वीर पुत्रको देता है।

२५४ वीरके लक्षण— पुत्रके लक्षण—

तरुत्रि:— त्वरासे शत्रुका नाश करनेवाला

नर्य: वीर:— मानवोंका हित करनेवाला वीर पुत्र

विचेता:— विशेष ज्ञानी

ऊर्वी-ऊति:— उत्तम रक्षण करनेवाला

वसु:— बसानेवाला

चर्षणि प्रास:— मनुष्यों द्वारा प्रशंसित,

कारुधाय्या:— कारीगर शिल्पीयोंका धारणकर्ता

वाजी— बलवान्

विदथे स्तुत:— युद्धमें प्रशंसनीय।

११७ विपावसः वर्पसः मन्द्रं सूरे तोके तनये वि मधोवस्त— अनेक भाषा बोलनेवाले प्रजाजन वह ज्ञानी पुत्रपौत्रोंके सम्बंधके विषयमें चर्चा करते हैं।

११७ य ओजिष्ठः मदः दास्वान् तं मा सु दा:— जो बलवान् आनंद देनेवाला दाता पुत्र है वैसा पुत्र हमें दे दो।

यः सश्वः समत्सु सौवश्व्यं वनवत्— जो उत्तम घोडोंको अपने पास रखता है और युद्धमें उत्तम घोडोंवाले शत्रु सैन्यको पराभूत करता है (ऐसा पुत्र हमें दे दो।)

अमित्रान् पृत्सु सासहत्— शत्रुओंका पराभव करता है (ऐसा पुत्र हमें दे दो।)

यहां इन्द्रका वीर करके वर्णन है और वह नर्यं वीरं अर्थात् सार्वजनिक संरक्षण करनेवाला सर्वजनहितकारी वीर हो। वीर का अर्थ पुत्र है। पुत्र भी वीर हो शत्रुको दूर करनेवाला हो सार्वजनिक हित करनेवाला हो।

इन्द्र ऐसा वीर पुत्र देता है इसका अर्थ यह है कि इन्द्रका वर्णन माता और पिताने सुना तो उनके वैसे विचार होते हैं और उनको पुत्र भी शूरवीर ही होता है।

इसलिये लोग इन्द्रके सूक्त पढें उनमें शूरवीरत्वके गुण देखें और उनको अपनावें। जिससे उत्तम शूर पुत्र उत्पन्न होंगे और इससे राष्ट्र भी सुरक्षित रहेगा।

इन्द्रके सूक्त पढनेसे यह लाभ है।

बुद्धिमान्

१७५ मतीनां वृषभ:— बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ।

२१० कवि:— ज्ञानी इन्द्र।

इन्द्र स्वयं बुद्धिमान् है। बुद्धिके बलसे बलवान् हुआ है। स्वयं कवि है। क्रान्तदर्शी है। जो दूसरोंको दीखता नहीं वह इन्द्र देखता है। विशेषकर सब भयके स्थान इन्द्र प्रथम देखता है और बाधित होनेवाले भयको दूर करता है। शत्रु कहां है वह आक्रमण करेगा इत्यादि भयके स्थान इन्द्र सबसे प्रथम जानता है और उनके निवारणका उपाय परिश्रमसे करता है। इसी कारण सब प्रजा सदा सुरक्षित और निर्भय रहती है। यही इसकी बुद्धिमत्ताका वर्णन है।

इन्द्रके पोषाख

१७५ शिप्रवान्— शिरस्त्राण धारण करनेवाला शिप्र सिरपर बांधनेवाला।

१११ हरिशिप्र:— सुवर्णका शिरस्त्राण धारण करनेवाला।

इन्द्रके पोषाखमें सिरपर लोहेका शिरस्त्राण रहता है। यह सिरको सुरक्षित रखनेके लिये आवश्यक है। शत्रु सिरपर आघात न कर सके इसलिये यह सिरका संरक्षण करनेवाला सिरके ऊपर कवच जैसा रहता था। ओठ ऐसा भी इसका एक अर्थ है पर वह इन्द्रके मुख पेय होनेके कारण योग्य लगता नहीं। शिरस्त्राण जैसा सिरका रक्षण कर सकता है वैसा ओठोंसे रक्षण नहीं होगा। तो भी इसका अधिक संशोधन होना आवश्यक है।

शिखा

२०४ द्विबर्हा:— दो शिखावाला दोनों लोकोंमें श्रेष्ठ।

इन्द्रकी दो शिखाएं थीं। ऐसा इस पदसे दीखता है। इसका अर्थ दोनों लोकोंमें श्रेष्ठ ऐसा भी होता है। पर शिखावाला अर्थ यहां अधिक योग्य है ऐसा हमारा मत है। विचारी पाठक इस विषयमें अधिक विचार करें।

युद्धमंत्री इन्द्र है।

परमात्माके विश्वराज्यके युद्धमंत्री इन्द्र हैं। इनके गुण यहां जो दिये हैं वे युद्धमंत्रीके गुण हैं। शरीरसे बलवान् बुद्धिमान् वेगसे कार्य करनेवाला युद्धमें प्रवीण युक्तियुक्त करनेवाला युद्धमें सब शत्रुको मारनेवाला आदि गुण युद्धमंत्रीके यहां दीखते हैं। अब इनके युद्धमन्त्रीके विशेष कर्तव्य देखिये—

भरद्वाज ऋषिका दर्शन ।

विश्वे देवा प्रकरण ।

(मण्डल ६ सूक्त ४८)

१ यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे ।
प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम् ॥ ४८२ ॥

२ ऊर्जो नपातं स हिनायमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये ।
भुवद् वाजेष्वविता भुवद् वृध उत त्राता तनूनाम् ॥ ४८३ ॥

३ वृषा ह्यग्ने अजरो महान् विभास्यर्चिषा ।
अजस्रेण शोचिषा शोशुचच्छुचे सुदीतिभिः सु दीदिहि ॥ ४८४ ॥

---

[१] (४८२) हे स्तोताओं ! (वः यज्ञायज्ञा) तुम सब प्रत्येक यज्ञमें (दक्षसे अग्नये) वर्धमान अग्निकी (गिरागिरा) स्तुतिरूप वाणीसे स्तुति करो, (वयं) हम भी (अमृतं जातवेदसं मित्रं न प्रियं) अमर, हरएक वस्तुका ज्ञानी मित्र रूप, प्रिय अग्निकी (प्र शंसिषं) प्रशंसा करते हैं ॥ १ ॥

वयं अमृतं जातवेदसं मित्रं न प्रियं प्रशंसिषम्— हम अमर ज्ञानी मित्रके समान प्रिय अग्निकी प्रशंसा करते हैं ।

अ-मृत— अमर वृद्ध होनेपर भी तरुण जैसा रहनेवाला ।
जातवेदाः— जिससे वेद प्रकट हुए । उत्पन्न हुए प्रत्येक वस्तुमें रहनेवाला (जाते जाते विद्यते) जो ज्ञानका प्रचार करता है ।

[२] (४८३) (ऊर्जः नपातं) हम बल और बलके पुत्रकी प्रशंसा करते हैं (सः अयं अस्मयुः) वह अग्नि हमारे पास आनेकी इच्छा करता है । तथा (हव्यदातये दाशेम) देवोंको हव्यान्न देनेके लिये अग्निको हम हव्यान्न देते हैं । वह अग्नि (वाजेषु अविता वृध भुवत्) संग्राममें हमारा रक्षक और वर्धक हो । (उत तनूनां त्राता) और हमारे पुत्रोंका भी रक्षक हो ॥ २ ॥

१ ऊर्जः न पातं— बलको न गिरानेवाला बलको बढानेवाला ।

२ वाजेषु अविता वृधः भुवत्— युद्धोंमें हमारा रक्षक और वर्धन करनेवाला होता है ।

३ तनूनां त्राता— हमारे शरीरों पुत्रोंका रक्षक होता है ।

अपने बलको बढाना चाहिये । अपना बल कम हो ऐसा कोई कार्य करना नहीं चाहिये । युद्धोंमें शरीरोंका संरक्षण करना योग्य है । अपना बल बढे ऐसा करना चाहिये । अपने बच्चोंका संरक्षण करना चाहिये ।

[३] (४८४) हे (अग्ने) अग्नि ! (वृषा अजरः महान्) वीर्यवान् इच्छाओंको पूर्ण करनेवाला जरारहित महान तू (अर्चिषा विभासि) अपनी कान्तिसे प्रकाशित होता है । हे (शुचे) प्रदीप्त अग्नि ! (अजस्रेण शोचिषा) निरन्तर तेजसे (शोशुचत्) अत्यन्त दीप्तिमान् तू (सुदीतिभिः सु दीदिहि) अच्छी कान्तिसे अच्छी तरह हमें प्रकाशित कर ॥ ३ ॥

१ वृषा अजरः महान् अर्चिषा विभासि— बलवान् जरारहित और जो महान् होता है वह तेजसे प्रकाशता है । (निर्बल जराग्रस्त और अल्प जो रहता है वह तेजस्वी नहीं हो सकता ।)

२ अजस्रेण शोचिषा शोशुचत्— निरन्तर तेजसे वह अत्यन्त दीप्तिमान् होता रहे ।

३ सुदीतिभिः सुदीदिहि— अच्छी कान्तिसे प्रकाशित हो ।

बलवान् बनो जरारहित रहो वृद्ध होनेपर भी तारुण्यका उत्साह धारण करो । बडा बनो । अपने तेजसे तेजस्वी हो । ज्ञान प्रभावसे प्रकाशी रहो । निराशाका विचार तुम्हारे समीप आने न दे ।

४ महो देवान् यजसि यक्ष्यानुषक् तव क्रत्वोत दंसना ।
अर्वाचः सीं कृणुह्यग्नेऽवसे रास्व वाजोत वंस्व ॥ ४८५ ॥
५ यमापो अद्रयो वना गर्भमृतस्य पिप्रति ।
सहसा यो मथितो जायते नृभिः पृथिव्या अधि सानवि ॥ ४८६ ॥
६ आ यः पप्रौ भानुना रोदसी उभे धूमेन धावते दिवि ।
तिरस्तमो ददृश ऊर्म्यास्वा श्यावास्वरुषो वृषा श्यावा अरुषो वृषा ॥ ४८७ ॥

---

[४] (४८५) हे (अग्ने) अग्नि ! तू (महः देवान् यजसि) महान् देवोंका यजन करता है। (आनुषक् यक्षि) इसलिये हमारे यज्ञमें भी निरन्तर यजन कर। (तव क्रत्वा उत दंसना सीं) और तेरी बुद्धिसे कर्म कर तथा (अर्वाचः अवसे कृणुहि) उन देवोंको हमारी रक्षाके लिये हमारे सामने कर। (वाजा रास्व) अन्न दे दो। (उत वंस्व) तथा तू भी यह यज्ञभागका अन्न प्राप्त कर ॥ ४ ॥

१ महः देवान् यजसि— महान् होकर ज्ञानियोंका सत्कार करो।

२ तव क्रत्वा उत दंसना अर्वाचः अवसे कृणुहि— तेरी बुद्धि और तेरे कर्मोंसे उन वीरोंको हमारे समीप हमारी रक्षाके लिये ले आओ। (वे हमारी रक्षा करेंगे ऐसा कर।)

३ वाजा रास्व उत वंस्व— बलवर्धक अन्न हमें दे दो और तू भी वैसा अन्न ग्रहण कर।

वाज — बल बढानेवाला अन्न।

[५] (४८६) (आपः अद्रयः वना ऋतस्य गर्भं यं बिभ्रति) जल मेघ और वन यज्ञके गर्भमें (वाडवाग्नि वैद्युताग्नि और दावाग्नि रूपसे वर्तमान) अग्नि रहता है। (यः नृभिः सहसा मथितः) जो अग्नि नेताओंसे बलद्वारा मथित होकर (पृथिव्याः अधि सानवि जायते) पृथिवीपर उत्कृष्ट यज्ञप्रदेशमें प्रकट होता है ॥ ५ ॥

१ आपः— जलमें अग्नि है, वडवाग्नि इसे कहते हैं।

२ अद्रयः— अद्रि-पहाड मेघमें वैद्युताग्नि रहता है।

३ वना— वनोंमें दावाग्नि उत्पन्न होता है।

४ ऋतस्य गर्भे— सत्य यज्ञके गर्भमें अग्नि होता है।

५ यः ऋतस्य गर्भे पिप्रति— जो यज्ञके मध्यमें अग्नि रहता है वह यज्ञाग्नि कहा जाता है।

६ यः नृभिः सहसा मथितः— जो मनुष्यों द्वारा बलसे मन्थन करके निर्माण करते हैं वह यज्ञाग्नि कहलाता है।

७ पृथिव्याः अधि सानवि जायते— भूमीके उत्तम स्थानमें- यज्ञस्थानमें- यह अग्नि निर्माण किया जाता और यज्ञके लिये यह रखा जाता है। इसमें यजन होता है।

[६] (४८७) (यः भानुना उभे रोदसी आ पप्रौ) जो अग्नि अपनी कान्तिसे द्यावापृथिवीको परिपूर्ण करता है। (धूमेन दिवि धावते) और धुएँसे अन्तरिक्षमें जाता है। (अरुषः वृषा) कान्तिमान् इष्टवर्षक अग्नि (श्यावासु ऊर्म्यासु) काली अन्धकारवाली रात्रिमें (तमः तिरः आ ददृशे) अन्धकारको तिरस्कृत करके चारों तरफ प्रकाशित होता है (श्यावाः आ) काली रात्रियाँ रहती हैं तब वह (अरुषः वृषा) कान्तिमान् वर्षक अग्नि प्रकाशित होता है ॥ ६ ॥

१ यः भानुना उभे रोदसी आ पप्रौ— जो अग्नि अपने प्रकाशसे दोनों द्यावापृथिवीको भर देता है।

२ धूमेन दिवि धावते— यह अग्नि अपने धुएँसे ऊपर आकाशमें दौडता है।

३ अरुषः वृषा श्यावासु ऊर्म्यासु तमः तिरः आ ददृशे— तेजस्वी और बलवान् यह अग्नि काली अन्धकार मय रात्रियोंमें अन्धकारको दूर करता है ऐसा दीखता है।

४ श्यावाः आ अरुषः वृषा— काले अंधेरेमें यह बलवान् अग्नि प्रकाश फैलाता है।

इस तरह मनुष्य बलवान् बने जगतमें जो अज्ञानका अन्धकार है उसे दूर करे और सबको प्रकाश बताकर उत्तम रीतिसे मार्ग बतावे।

७ बृहद्भिरग्ने अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा ।
भरद्वाजे समिधानो यविष्ठ्य रेवन्नः शुक्र दीदिहि द्युमत् पावक दीदिहि ॥४८८॥
८ विश्वासां गृहपतिर्विशामसि त्वमग्ने मानुषीणाम् ।
शतं पूर्भिर्यविष्ठ पाह्यंहसः समेद्धारं शतं हिमाः स्तोतृभ्यो ये च ददति ॥४८९॥
९ त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधांसि चोदय ।
अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः ॥४९०॥

---

[७] (४८८) हे (देव) दानादिगुणयुक्त कान्तिमान् (यविष्ठय) अतिशय युवा (शुक्र) दीप्तिमान् (अग्ने) अग्नि! (शुक्रेण शोचिषा) निर्मल तेजसे (भरद्वाजे) भरद्वाजमें (समिधानः) सम्यक् दीप्यमान तू (बृहद्भिः अर्चिभिः) महान् तेजसे (नः रेवत्) हमारे लिये धनसे युक्त होकर (दीदिहि) प्रदीप्त हो। हे (पावक) शोधक अग्नि! (द्युमत् दीदिहि) तेजस्वी होकर दीप्तिमान् हो ॥ ७ ॥

१ देव यविष्ठय शुक्र अग्ने— हे देव! हे तरुण बलवान् अग्ने! तू दिव्य गुणयुक्त है तरुण जैसा उत्साही है वीर्यवान् है और तू उसका आश्रयी है। (मनुष्य दिव्य गुणोंसे युक्त सदा तरुण वीर्यवान् और तेजस्वी बने।)

२ शुक्रेण शोचिषा समिधानः भरद्वाजे बृहद्भिः अर्चिभिः नः रेवत् दीदिहि— अपने तेजसे प्रकाशित होकर अन्नका दान करनेवालेके लिये बडे तेजसे धन देता हुआ प्रकाशित होता रह। (हमारेमें जो अन्नका दान करता है उसे धन दे और उज्ज्वलित मार्ग बता।)

३ पावक! द्युमत् दीदिहि— हे पवित्रता करनेवाले! तू अपने तेजसे प्रकाशता रह। (मनुष्य पवित्रता करे तेजस्वी बने और अपने तेजसे प्रकाशता रहे।)

[८] (४८९) हे (अग्ने) अग्नि! (त्वं) तू (मानुषीणां विश्वासां विशां) संपूर्ण मानवी प्रजाओंका (गृहपतिः असि) घरका स्वामी है। हे (यविष्ठ) अत्यन्त तरुण! (शतं हिमाः) सौ वर्षोंतक (इस प्रकार) तुझे अच्छी तरह प्रदीप्त करनेवाले मेरी (शतं पूर्भिः) सौ पालनकर्मी द्वारा (अंहसः पाहि) पापसे और दुष्ट शत्रुओंसे रक्षा कर। (ये च स्तोतृभ्यः ददति) और जो स्तोताओंको यज्ञकर्ममें धन देता है उनकी भी रक्षा कर ॥ ८ ॥

१ हे अग्ने! मानुषीणां विश्वासां विशां गृहपतिः त्वं असि— हे अग्ने! तू सब मानवी प्रजाओंका गृहस्वामी है। (प्रत्येक घरमें तू रहता है उससे सब पाकादि कर्म तो करता है, याजकोंके घर यज्ञकार्य करता है।)

२ शतं हिमाः सं इद्धारं शतं पूर्भिः अंहसः पाहि— सौ वर्षोंतक तुझे प्रदीप्त करनेवालेका जो सौ पूर्वोसे जैसा किया जाता है वैसा पापसे या पापी शत्रुओंसे संरक्षण कर।

३ ये च स्तोतृभ्यः ददति— जो उपासकोंको धन दिया जाता है उसका भी रक्षण कर।

[९] (४९०) हे (वसो) निवासक (अग्ने) अग्नि! (चित्र त्वं ऊत्या राधांसि नः चोदय) दर्शनीय तू रक्षाके साथ धनोंको हमारे पास प्रेरित कर। (अस्य रायः त्वं रथीः असि) इस धनका तू नेता है। और (नः तुचे गाधं तु विदाः) हमारे पुत्रादिको प्रतिष्ठा जल्दी प्राप्त करा ॥ ९ ॥

१ वसुः अग्निः— अग्नि निवास करता है। शरीरमें अग्नि रहता है तबतक मानव जीवित रहता है। पृथिवीमें अग्नि है तबतक ही पृथिवीपर प्राणियोंका निवास होता है।

२ त्वं चित्रः— तू विलक्षण सामर्थ्यवान् है, दर्शनीय है। मनुष्यका शरीर दर्शनीय तबतक दीखता है जबतक उसमें उष्णता रहती है।

३ त्वं ऊत्या राधांसि नः चोदय— तू संरक्षण साधनोंके साथ सिद्धि देनेवाले धन हमारे पास भेज। (धन धन देनेवाले और रक्षक साधनोंसे युक्त चाहिये। निर्बलता और दुर्बुद्धि देनेवाले धन नहीं चाहिए।)

४ अस्य रायः त्वं रथीः असि— ऐसे धनको तू चलानेवाला है।

५ नः तुचे गाधं विदाः— हमारे पुत्रादिको जल्दी प्रतिष्ठा प्राप्त हो। (तुच्= पुत्र पौत्र आदि संतान। गाधम्= आधार स्थान।)

१० पर्षि तोकं तनयं पर्तृभिष्ट्वमदब्धैरप्रयुत्वभिः ।
अग्ने हेळांसि दैव्या युयोधि नोऽदेवानि ह्वरांसि च ॥४९१॥

११ आ सखायः सबर्दुघां धेनुमजध्वमुप नव्यसा वचः ।
सृजध्वमनपस्फुराम् ॥४९२॥

१२ या शर्धाय मारुताय स्वभानवे श्रवोऽमृत्यु धुक्षत ।
या मृळीके मरुतां तुराणां या सुम्नैरेवयावरी ॥४९३॥

१३ भरद्वाजायाव धुक्षत द्विता ।
धेनुं च विश्वदोहस-मिषं च विश्वभोजसम् ॥४९४॥

---

[१०] (४९१) हे (अग्ने) अग्नि ! (त्वं अदब्धैः अप्रयुत्वभिः पर्तृभिः) तू किसीसे अहिंसित अपृथग्भूत नाश न होनेवाले पालनके साधनोंसे (तोकं तनयं पर्षि) पुत्र और पौत्रका पालन कर । (दैव्या हेळांसि नः युयोधि) दैवी क्रोधको हमसेसे दूर करो । (अदेवानि च ह्वरांसि) और मनुष्यसम्बन्धी हिंसित कर्म हमसे दूर करो ॥ १० ॥

१ हे अग्ने ! त्वं अ-दब्धैः अप्रयुत्वभिः पर्तृभिः तोकं तनयं पर्षि— हे अग्ने ! तू अहिंसक और पृथक् न होनेवाले रक्षा साधनोंसे पुत्रपौत्रोंका संरक्षण कर । रक्षा साधन ऐसे हों कि जो सदा अपने पास रहें और दूर न जाय, नष्ट न हों । ऐसे साधनोंसे हमारे बालबच्चोंका रक्षण कर ।

२ दैव्या हेळांसि नः युयोधि— दैवी आपत्तियोंसे हमसे दूर युद्ध करो और उनको दूर करो । दैवी आपत्तियां हमसे दूर रहें ।

३ अदेवानि ह्वरांसि— अदैवी-दैहिक-मानवीय कुटिल कर्मोंको दूर रखो । (हमसे दैवी आपत्तियां और मानवी कष्ट दूर रहें ।)

[११] (४९२) हे (सखायः) मित्रो ! (नव्यसा वचः) अत्यन्त नवीन शब्द द्वारा (सबर्दुघां धेनुं आ अजध्वं) योग्य दूध देनेवाली गायको ले आओ । (अनपस्फुरां उप सृजध्वं) देते न हिलनेवाली गायको बन्धनसे मुक्त करो ॥ ११ ॥

१ सखायः ! नव्यसा वचः सबर्दुघां धेनुं आ अजध्वं— हे मित्रो ! नवीन कोमल शब्दोंसे पुकार गायको इधर ले आओ । (गायको कठोर शब्दसे बुलाना नहीं चाहिये । कठोर शब्दसे खराब बुरा परिणाम होता है ।)

२ अनपस्फुरां उप सृजध्वं— दूध देनेतक न हिलने वाली गायको बन्धनसे बाहर चरनेके लिये छोड दो ।

[१२] (४९३) (या) जिस गायने (अमृत्यु श्रवः) अमर अन्नरूपी दूध (स्वभानवे) प्रकाशमान कान्तिमान् (मारुताय) मरुत् संघके लिये (धुक्षत) दूध दिया । (या) जिसने और (तुराणां मरुतां मृळीके) त्वरित कर्म करनेवाले मरुतोंको सुखी किया (या) तथा जो गाय (सुम्नैः एवयावरी) सुखसाधनोंसे जानेवाली वीरोंको भी सुखके लिये जानेवाली वह गाय प्राप्त होती है ॥ १२ ॥

१ या अमृत्यु श्रवः शर्धाय स्वभानवे मारुताय धुक्षत्— जो मृत्युको दूर करनेवाला दूध देनेवाली मरुतोंके सैनिकोंको देती है । (जो गाय मृत्युको दूर करनेवाला दूध देनेवाली सैनिकोंके संघको देती है ।)

२ या तुराणां मरुतां मृळीके— जो त्वराशील मरुत् (सैनिक) संघके लिये सुख देते है ।

३ या सुम्नैः एवयावरी— जो सुखोंके साथ सदा रहती है ।

गाय अमरत्व देनेवाला दूध देती है सैनिकोंको सुख देती है अनेक प्रकारके आनन्द देती है । इसलिये गौका पालन करना चाहिये ।

[१३] (४९४) हे मरुतो ! (भरद्वाजाय) आपने भरद्वाजको दो (द्विता) दो प्रकारकी वस्तु (विश्वदोहसं धेनुं) सबको बहुत दूध देनेवाली गाय (च विश्वभोजसं इषं) और पर्याप्त भोगरूप अन्न (अव धुक्षत) दिया ॥ १३ ॥

मरुतोंने भरद्वाजको सदा दूध देनेवाली गौ दी और उसे भाग्य अन्न दिया ।

१४ स व इन्द्रं न सुक्रतुं वरुणमिव मायिनम् ।
अर्यमणं न मन्द्रं सृप्रभोजसं विष्णुं न स्तुष आदिशे ॥ ४९५ ॥

१५ त्वेषं शर्धो न मारुतं तुविष्वण्यनर्वाणं पूषणं सं यथा शता ।
सं सहस्रा कारिषच्चर्षणिभ्य आँ आविर्गूळ्हा वसू करत्
सुवेदा नो वसू करत् ॥ ४९६ ॥

१६ आ मा पूषन्नुप द्रव शंसिषं नु ते अपिकर्ण आघृणे ।
अघा अर्यो अरातयः ॥ ४९७ ॥

१७ मा काकम्बीरमुद् वृहो वनस्पतिमशस्तीर्वि हि नीनशः ।
मोत सूरो अह एवा चन ग्रीवा आदधते वेः ॥ ४९८ ॥

---

[१४] (४९५) हे मरुत् गण ! (इन्द्रं न) इन्द्रके समान (सुक्रतुं वरुणं इव) अच्छे कर्म करनेवाले वरुणकी तरह (मायिनं अर्यमणं न) बुद्धिमान् अर्यमाके समान (मन्द्रं विष्णुं न) सुखदायी विष्णुकी तरह (सृप्रभोजसं) अत्यंत उत्तम भोजन देनेवाले (वं वः) उस आपके संघकी (आदिशे स्तुषे) मैं स्तुति करता हूं ॥ १४ ॥

[१५] (४९६) (न) इस समय (त्वेषं तुविष्वणि पूषणं मारुतं शर्धः) तेजस्वी बहु प्रशंसित पोषक मरुतोंके अनुसार उस संघकी स्तुति करता हूं । (यथा) जिससे (चर्षणिभ्यः शता सं कारिषत्) मनुष्योंको सैकडों धनोंके साथ युक्त करे । (सहस्रा सं) सहस्र धनोंसे भी युक्त करे । (गूळ्हा वसु आविः करत्) गुप्त धनोंको प्रकट करे तथा (वसु सुवेदा नः करत्) धन सरलतासे प्राप्त हो ऐसा करे ॥ १५ ॥

१ त्वेषं तुविष्वणि पूषणं मारुतं शर्धः— तेजस्वी मनेकों द्वारा प्रशंसित पोषण करनेवाला और मरुतोंका बल संघ है ।

२ चर्षणिभ्यः शता सं सहस्रा सं कारिषत्— मानवोंको वह संघ सैकडों और हजारों धन प्राप्त हों ऐसा करे ।

३ गूळ्हा वसु आविः आ करत्— गुप्त धन प्रकट करे ।

४ वसुः नः सुवेदा करत्— धन हमें सुखसे प्राप्त हो ऐसा करे ।

[१६] (४९७) हे (पूषन्) पोषक देव ! (मा उप द्रव) मेरी रक्षाके लिये आ । हे (आघृणे) तेजस्विन् ! (अघाः अर्यः अरातयः उप) हिंसक शत्रुओंकी हिंसा करने वाली प्रजाओंको रोको । (ते अपिकर्णे नु शंसिषं) और मैं तेरे समीपमें रहकर तेरी प्रशंसा करता हूं ॥ १६ ॥

१ आ घृणे पूषन्— हे तेजस्वी पोषणकर्ता देव !

२ मा आ द्रव— मेरे समीप (मेरी रक्षाके लिये) आ । मेरी सुरक्षा कर ।

३ अघा अरातयः अर्यः उप— पापी कंजूस शत्रु हमारे समीप न आ जाय । पापी हमसे दूर हो कंजूस हमारे समीप न आ जाय और शत्रु हमारे पास न आवें ।

४ ते अपि कर्णे नु शंसिषं— मैं तेरे कानमें कहता हूं ।

[१७] (४९८) हे पूषा ! (काकम्बीरं वनस्पतिं मा उद् वृह) काकम्बीर वृक्षको बाधा मत पहुंचा उसे बढने दे । (अशस्तीः वि नीनशः हि) अप्रशंसनीय शत्रुभूत प्रजाका नाश कर । (उत सूरः एव मा अह) और श्रेष्ठ शत्रु भी हमारा हरण न करें । जिस प्रकार (ग्रीवाः वेः आदधते) व्याध शिकारी लोग पक्षियोंका हरण करते हैं ॥ १७ ॥

१ काकम्बीरं वनस्पतिं मा उद् वृह— वनस्पतिको न उखाड । वनस्पति बढती रहे ।

२ अशस्तीः वि नीनशः— अप्रशंसनीय शत्रुका नाश हो । शत्रु न रहे ।

३ सूरः एव मा अह— उत्तम शूर भी मेरा हरण न करे । उत्तम शत्रु भी मेरा नाश न करे ।

४ वेः ग्रीवाः आदधते— पक्षियोंका व्याध पकडते हैं वैसा हमारा पकड कोई न पकडे ।

१८ इतेरिव तेऽवृकमस्तु सख्यम् ।
अच्छिद्रस्य दधन्वतः सुपूर्णस्य दधन्वतः ॥ ४९९ ॥

१९ परो हि मर्त्यैरसि समो देवैरुत श्रिया ।
अभि ख्य पूषन् पृतनासु नस्त्व मवा नूनं यथा पुरा ॥ ५०० ॥

२० वामी वामस्य धूतयः प्रणीतिरस्तु सूनृता ।
देवस्य वा मरुतो मर्त्यस्य वे जानस्य प्रयज्यवः ॥ ५०१ ॥

२१ सद्यश्चिद् यस्य चर्कृतिः परि द्यां देवो नैति सूर्यः ।
त्वेषं शवो दधिरे नाम यज्ञियं मरुतो वृत्रहं शवो ज्येष्ठं वृत्रहं शवः ॥ ५०२ ॥

२२ सकृद्ध द्यौरजायत सकृद् भूमिरजायत ।
पृश्न्या दुग्धं सकृत् पय स्तदन्यो नानु जायते ॥ ५०३ ॥

---

[१८] (४९९) हे पूषा ! (ते अच्छिद्रस्य दधन्वतः सुपूर्णस्य दधेः इव) छिद्ररहित परिपूर्ण दहीसे भरे पात्रके समान तेरी अविच्छिन्न मैत्री हो और (अवृकं सख्यं अस्तु) बाधारहित मैत्री हो ॥ १८ ॥

१ अच्छिद्रस्य दधन्वतः सुपूर्णस्य दधेः इव— छिद्ररहित दहीसे परिपूर्ण भरा पात्र जैसा आनन्द देता है ।

२ अवृकं सख्यं अस्तु— वैसी तेरी मित्रता कुटिलता रहित हो ।

[१९] (५००) हे (पूषन्) पूषा ! तू (मर्त्यैः परः असि) मनुष्योंसे श्रेष्ठ है (श्रिया देवैः उत समः) संपत्तिसे भी तू अन्य देवोंके समान ही है । (त्वं पृतनासु नः अभि ख्य) तू संग्रामोंमें हमको कृपादृष्टिसे देख । (यथा पुरा नूनं अव) जिस प्रकार प्राचीन मनुष्योंकी रक्षा की उस प्रकार हमारी भी रक्षा कर ॥ १९ ॥

१ पूषन् ! मर्त्यैः परः असि— हे पूषा ! तू मानवोंसे श्रेष्ठ हो ।

२ उत श्रिया देवैः समः— और संपत्तिसे तू अन्य देवोंके समान संपत्तिमान् हो ।

३ त्वं पृतनासु नः अभि ख्य— तू युद्धोंमें हमें दयादृष्टिसे देख ।

४ यथा पुरा नूनं अव— जैसा तू प्राचीन समयमें रक्षा करता था वैसी ही अब भी हमारी रक्षा कर ।

[२०] (५०१) हे (धूतयः) शत्रुको कम्पित करनेवाले ! (प्रयज्यवः मरुतः) अतिशय पूजनीय मरुत् गणो ! (सूनृता प्रणीतिः अस्तु) तुम्हारी प्रिय सत्य वाणी हमारे लिये प्राप्त हो । (देवस्य वा मर्त्यस्य वा ईजानस्य वामी वामस्य) देव अथवा मनुष्य अथवा यज्ञकर्ता इनकी प्रशस्त वाणी [प्रशंसनीय धन देनेवाली हो] ॥ २० ॥

[२१] (५०२) (यस्य चर्कृतिः) जिसके कर्म (सद्यः चित् द्यां परि एति) शीघ्र ही आकाशमें प्राप्त होते हैं । (देवः सूर्यः न) दीप्तिमान् सूर्यकी तरह (मरुतः) मरुतोंने (त्वेषं नाम यज्ञियं शवः दधिरे) प्रदीप्त यश और प्रशंसनीय बल धारण किया है । (शवः वृत्रहं) वह बल शत्रुओंका नाश करनेवाला है । और (वृत्रहं शवः ज्येष्ठं) शत्रुनाशक वह बल सबसे अत्यन्त प्रचण्ड है ॥ २१ ॥

[२२] (५०३) (द्यौः सकृत् ह अजायत) द्युलोक एक ही बार उत्पन्न हुआ है, और (भूमिः सकृत् अजायत) पृथ्वी भी एक ही बार उत्पन्न हुई है तथा (पृश्न्याः पयः सकृत् दुग्धं) गायका दूध भी एक ही प्रकारका होता है (तत् अन्यः न अनु जायते) दूसरा इसके समान कोई पदार्थ उत्पन्न नहीं हुआ है ॥ २२ ॥

द्युलोकके समान द्युलोक है भूमिके समान भूमि है और गायके दूधके समान गायका दूध है । इनके समान दूसरा पदार्थ उत्पन्न नहीं हुआ ।

(मं ६ सू ४९)

१ स्तुषे जनं सुव्रतं नव्यसीभि-र्गीर्भिर्मित्रावरुणा सुम्नयन्ता ।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्तु सुक्षत्रासो वरुणा मित्रो अग्निः ॥५०४॥
२ विशोविश ईड्यमध्वरे-ष्वदृप्तक्रतुमरतिं युवत्योः ।
दिवः शिशुं सहसः सूनुमग्निं यज्ञस्य केतुमरुषं यजध्यै ॥५०५॥
३ अरुषस्य दुहितरा विरूपे स्तृभिरन्या पिपिशे सूरो अन्या ।
मिथस्तुरा विचरन्ती पावके मन्म श्रुतं नक्षत ऋच्यमाने ॥५०६॥
४ प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा बृहद्रयिं विश्ववारं रथप्राम् ।
द्युतद्यामा नियुतः पत्यमानः कविः कविमियक्षसि प्रयज्यो ॥५०७॥
५ स मे वपुश्छदयदश्विनोर्यो रथो विरुक्मान् मनसा युजानः ।
येन नरा नासत्येषयध्यै वर्तिर्याथस्तनयाय त्मने च ॥५०८॥

---

[१](५०४) (सुव्रतं जनं) उत्तम कर्म करनेवाले दिव्य जनसमूहकी (नव्यसीभिः गीर्भिः) अतिशय नवीन वाणीसे (स्तुषे) मैं स्तुति करता हूं। (सुम्नयन्ता मित्रावरुणा) स्तोताओंको सुखी करनेकी इच्छावाले मित्रावरुणकी मैं स्तुति करता हूं। (सुक्षत्रासः ते वरुण मित्रः अग्निः) सुन्दर क्षात्रतेजवाले वे वरुण मित्र और अग्नि (इह आ गमन्तु) इस यज्ञमें आवें और (ते श्रुवन्तु) इस प्रकार हमारी स्तुतियां सुनें ॥१॥

मित्र और वरुण दूसरोंको सुखी करते हैं उस तरह मनुष्य दूसरोंको सुख पहुंचावें। उत्तम वीर वरुण मित्र और अग्नि यहां आकर हमारा रक्षण करें।

[२](५०५) (विशोविशः) संपूर्ण प्रजा द्वारा (अध्वरेषु) यज्ञकर्मोंमें (ईड्यं अदृप्तक्रतुं) स्तुत्य और गर्वरहित कर्म करनेवाले (युवत्योः अरतिं) द्यु और पृथ्वीमें जानेवाले (दिवः शिशुं) द्युलोकके पुत्र (सहसः सूनुं) बलके लिये उत्पन्न हुए पुत्र (यज्ञस्य केतुं) यज्ञके ध्वज रूप (अरुषं अग्निं) तेजस्वी अग्निको (यजध्यै) यज्ञ करनेके लिये मैं स्तुति करता हूं ॥२॥

[३](५०६) (अरुषस्य विरूपे दुहितरा) सूर्यकी शुक्ला और कृष्णा दो पुत्रियां हैं। (अन्या स्तृभिः पिपिशे) उनमेंसे एक रात्रि नामकी पुत्री नक्षत्रोंसे प्रकाशती है और (अन्या सूरः) दूसरी दिनप्रभा नामक पुत्री सूर्यसे प्रकाशती है। (मिथस्तुरा विचरन्ती) परस्पर त्वरासे चलती हैं (पावके ऋच्यमाने) शुद्ध करनेवाली प्रशंसनीय (श्रुतं मन्म) प्रसिद्ध तथा मननीय हमारे स्तोत्रको (नक्षत) सुनें ॥३॥

दो परस्पर विरुद्ध रूपवाली दो पुत्रियां हैं। एक काली है और दूसरी दिनप्रभा गोरी है। नक्षत्रोंके साथ रात्री रहती है और सूर्यके साथ दिनकी प्रभा रहती है। ये दोनों त्वरासे उत्तम चल रही हैं कभी ठहरती नहीं। ये विश्वमें पवित्रता करती हैं और ये दोनों प्रशंसनीय हैं। हम इनकी स्तुति करते हैं।

[४](५०७) (बृहती मनीषा) हमारी बडी इच्छा है कि (बृहत् रयिं विश्ववारं रथप्रां वायुं) बडे धनको साथ लेकर, सबसे सेवनीय अपने रथको धनसे भरकर वायु (अच्छ प्र) हमारे पास आवे (प्रयज्यो) हे अतिशय पूजनीय! (द्युतद्यामा नियुतः पत्यमानः कविः) कान्तिमान् वाहनवाला अपने रथमें जोडी हुई घोडियोंका स्वामी बुद्धिमान् तू (कविं इयक्षसि) बुद्धिमान् की पूजा कर ॥४॥

हमारी ऐसी इच्छा है कि बडे धनको अपने रथपर रखकर वायु हमारे पास पहुंचा रहे। उसका रथ तेजस्वी है और उसको उत्तम घोडियां जोती हैं। वह बुद्धिमान् वायु ज्ञानियोंकी पूजा करते रहे।

[५](५०८) (अश्विनोः यः मे वपुः छदयत्) अश्विनौंका वह रथ मेरे शरीरको तेजसे तेजस्वी करे। (यः रथः विरुक्मान् मनसा युजानः) जो रथ विशेष दीप्तिमान् तथा मनके

६ पर्जन्यवाता वृषभा पृथिव्याः पुरीषाणि जिन्वतमप्यानि ।
सत्यश्रुत कवयो यस्य गीर्भिर्जगतः स्थातर्जगदा कृणुध्वम् ॥५०९॥
७ पावीरवी कन्या चित्रायुः सरस्वती वीरपत्नी धियं धात् ।
ग्नाभिरच्छिद्रं शरणं सजोषा दुराधर्षं गृणते शर्म यंसत् ॥५१०॥
८ पथस्पथः परिपतिं वचस्या कामेन कृतो अभ्यानळर्कम् ।
स नो रासच्छुरुधश्चन्द्राग्रा धियंधियं सीषधाति प्र पूषा ॥५११॥

हमारे मार्गसे ही अपरिमित सुख होता है। हे (नरा) नेता (नासत्या) अश्विन् देवो! (येन वर्तिः) जिस रथसे स्तोताके घरमें (तनयाय त्मने च इयथः) पुत्रके लिये उसके पिताके लिये और उनकी इच्छाओंको पूर्ण करनेके लिये (आयः) तुम चला जाते हैं ॥५॥

[६] (५०९) हे (वृषभा) वृष्टि करनेवाले! (पर्जन्य-वाता) पर्जन्य और वायु! (पृथिव्याः अप्यानि पुरीषाणि) पृथिवीपरके जलयुक्त अन्न हमारे पास (जिन्वतं) प्रेरित करो। हे (सत्यश्रुत कवयः) सत्य प्रशंसा योग्य ज्ञानी (जगतः स्थातः) जगत्‌के संस्थापक देवगण! (यस्य गीर्भिः) वाणियोंसे (जगत् आ कृणुध्वं) सर्व जगत्‌को तुम निर्माण करते हैं ॥६॥

हे पर्जन्य और वायु! तुम वृष्टि करते हैं अतः पृथिवीपर जो जलके साथ अन्न हैं उनको हमें दे दो। लोग वाणियोंसे तुम्हारी स्तुति करते हैं कि तुम सब जगत्‌को निर्माण करते हैं। यह स्तुति सत्य है क्योंकि वायु और पर्जन्य इस पृथ्वीपर सब वनस्पतियोंकी उत्पत्ति करते हैं। जिससे सब प्रकारका खाद्य अन्न और पेय उत्पन्न होता है।

[७] (५१०) (पावीरवी कन्या चित्रायुः वीरपत्नी सरस्वती) पवित्र करनेवाली सुन्दर, उत्तम अन्न देनेवाली वीरोंका पालन करनेवाली ऐसी सरस्वती देवी (धियं धात्) हमारे बुद्धिसे किये कर्मोंको धारण करे। (ग्नाभिः सजोषाः) देवपत्नियोंके सहित प्रीतिसे रहनेवाली (गृणते) स्तुति करने वालेको (अच्छिद्रं दुराधर्षं शरणं शर्म) छिद्ररहित सीधा शत्रुओंसे आक्रमण हो न सके ऐसा घर और सुख हमें (यंसत्) प्रदान करे ॥७॥

सरस्वती विद्या है। यह सबको पवित्र बनाती है। विद्यासे उत्तम अन्न प्राप्त होता है विद्या वीरताको बढाती है। बुद्धिका संरक्षण करती है। इस बुद्धिसे नाना प्रकारके उत्तम कर्म किये जाते हैं। दैवी शक्तियां विद्यासे प्राप्त होती हैं। विद्वान् उत्तम छिद्ररहित शत्रुसे जिसपर आक्रमण नहीं हो सकता ऐसा सुख दायक घर प्राप्त कर सकता है।

विद्यासे प्राप्त होनेवाले लाभ ये हैं—

१ पावीरवी— पवित्रता विद्यासे बढती है
२ कन्या— सौंदर्य बढता है कमनीयता बढती है
३ चित्रायुः— उत्तम अन्न मिलता है आयु बढती है
४ वीरपत्नी— शौर्य बढती है
५ धियं धात्— बुद्धि प्राप्त होती है।
६ ग्नाभिः सजोषाः— दैवी शक्तियां प्राप्त होती हैं
७ अच्छिद्रं दुराधर्षं शरणं शर्म यंसत्— छिद्ररहित शत्रुसे आक्रमण होना असंभव ऐसा सुखदायक घर मिलता है।

सरस्वती विद्या—से ये लाभ होते हैं।

[८] (५११) (पथस्पथः परिपतिं) प्रत्येक मार्गपर अधिकारी ऐसे (अर्कं) अर्चनीय पूषाको (कामेन कृतः वच स्या अभ्यानट्) अपनी कामनासे प्रेरित होकर उत्तम वचनसे प्रार्थना करे (सः पूषा) वह पूषा (नः शुरुधः चन्द्राग्राः रासत्) हमको शोकको रोकनेवाली उत्तम वाणियां प्रदान करे। (धियंधियं प्र सीषधाति) और संपूर्ण हमारे कर्म वह सिद्ध करे ॥८॥

१ पथस्पथः परिपतिं अर्कं कामेन वचस्या कृतः अभ्यानट्— प्रत्येक मार्गपर स्वामीरूपसे वर्तमान पूजनीय (पूषा देव) की हम अपनी इच्छासे वाणी द्वारा पूजा करते हैं।

२ स पूषा नः शुरुधः चन्द्राग्रा रासत्— वह पूषा हमें शोकको दूर करनेवाली आनंद देनेवाली वाणियां (गौवें) देवें।

३ धियंधियं प्र सीषधाति— वह हमारे प्रत्येक बुद्धि पूर्वक किये कर्म सिद्ध करे।

शुरुधः (शु+रुध्)— शोकको दूर करनेवाला।

९ प्रथमभाज यशस वयोधां सुपाणिं देव सुगभस्तिमृभ्वम् ।
होता यक्षद् यजतं पस्त्याना- मग्निस्त्वष्टारं सुहवं विभावा ॥ ५१२ ॥
१० भुवनस्य पितरं गीर्भिराभी रुद्रं दिवा वर्धया रुद्रमक्तौ ।
बृहन्तमृष्वमजरं सुषुम्न- मृधग्घुवेम कविनेषितासः ॥ ५१३ ॥
११ आ युवानः कवयो यज्ञियासो मरुतो गन्त गृणतो वरस्याम् ।
अचित्रं चिद्धि जिन्वथा वृधन्त इत्था नक्षन्तो नरो अङ्गिरस्वत् ॥ ५१४ ॥
१२ प्र वीराय प्र तवसे तुराया- ऽजा यूथेव पशुरक्षिरस्तम् ।
स पिस्पृशति तन्वि श्रुतस्य स्तृभिर्न नाकं वचनस्य विपः ॥ ५१५ ॥

---

[९] (५१२) (प्रथमभाज यशसं वयोधां) प्रथम भजनीय यशस्वी, अन्न धारण करनेवाले (सुपाणिं देवं सुगभस्तिं) सुन्दर हाथवाले, दानादि गुणयुक्त सुन्दर भुजाओंवाले (ऋभ्वं पस्त्यानां यजतं) प्रकाशमान, प्रजाजनोंसे यजनीय (सुहवं त्वष्टारं) पूजनीय त्वष्टाको (होता विभावा अग्नि) देवोंको बुलानेवाला दीप्तिमान् अग्नि (यक्षत्) यजन करे ॥ ९ ॥

त्वष्टा सबोंके मध्यमें प्रथम पूजनीय यशस्वी, अन्न धारण करनेवाला सुन्दर हाथवाला सुन्दर भुजावाला तेजस्वी प्रजाजनों द्वारा उपास्य है । तेजस्वी अग्नि उस त्वष्टाका यजन करे ।

[१०] (५१३) (भुवनस्य पितरं रुद्रं) भुवनका पालन करनेवाले दुःख दूर करनेवाले ईश्वरको (आभिः गीर्भिः) इन वाणियोंसे (दिवा वर्धय) दिनमें महिमावान करो । (अक्तौ रुद्रं) और रात्रिमें भी उसी रुद्रका यश गाओ । और हम (कविना इषितासः) बुद्धिमान् द्वारा प्रेरित हुए (बृहन्तं ऋष्वं अजरं सुषुम्नं) महान् दर्शनीय जरारहित उत्तम सुख देनेवाले ईश्वरकी (ऋधक् हुवेम) प्रशंसा करते हैं ॥ १० ॥

१ भुवनस्य पितरं रुद्रं आभिः गीर्भिः दिवा वर्धय— विश्वके परम पिता दुःख दूर करनेवाले परमेश्वरकी इन वाणियोंसे दिनमें स्तुति करते हैं ।

२ अक्तौ रुद्रं— रात्रीमें भी उसी प्रभुकी स्तुति करते हैं ।

३ कविना इषितासः बृहन्तं ऋष्वं अजरं सुषुम्नं ऋधक् हुवेम— कविसे प्रेरित हुए हम बड़े दर्शनीय जरा रहित उत्तम सुख देनेवाले प्रभुकी सदा स्तुति करते हैं ।

रुद्र— ज्ञानी ज्ञानप्रेरक प्रभु ।

अ जर— जरारहित सदा तरुण ।

[११] (५१४) हे (युवानः) हमेशा तरुण (कवयः) ज्ञानी (यज्ञियासः) यजनीय (मरुतः) मरुतो ! (गृणतः वरस्यां आ गन्त) स्तुति करनेवालेकी स्तुतिके पास आओ । हे (नरः) नेता मरुतो ! (इत्था वृधन्तः नक्षन्तः अङ्गिरस्वत्) तुम इस प्रकार अन्तरिक्षमें बढ़ते हैं और अग्निकी किरणें (अचित्रं चित् जिन्वथ) औषधियोंसे रहित देशको भी हरित कर देते हैं ॥ ११ ॥

[१२] (५१५) (वीराय प्र अज) वीरके समीप जा । (तवसे तुराय प्र) बलवान् शीघ्रगामी वीरकी उपासना कर । (पशुरक्षिः यूथा इव अस्तं) पशुपालक जिस प्रकार पशुसमूहको घामको शीघ्र घरकी तरफ प्रेरित करता है, वैसे तुम भी प्रभुके और शीघ्र जाओ । (स वचनस्य विपः श्रुतस्य) वह स्तुति करनेमें प्रवीणकी स्तुति (तन्वि पिस्पृशति) शरीरको स्पर्श करती है । (स्तृभिः न नाकं) जिस प्रकार नक्षत्रोंसे आकाश तेजस्वी दीखता है वैसा उपासक भी तेजस्वी होता है ॥ १२ ॥

१ वीराय प्र अज— प्रभु वीर है, उसके पास जा उसकी उपासना कर ।

२ तवसे तुराय प्र अज— सामर्थ्यसे त्वरासे कार्य करनेवाले प्रभुकी भक्ति कर । उसकी उपासना कर उसके पास जा ।

३ पशुरक्षिः यूथा अस्तं इव— जैसे पशुपालक जिस तरह पशुसमूहको शामके समय घरकी ओर प्रेरित करता है, (उस तरह उपासक अपने पिता प्रभु-के पास जाय अर्थात् उसकी उपासना करे ।)

४ स श्रुतस्य वचनस्य विपः तन्वि पिस्पृशति

१३ यो रजांसि विममे पार्थिवानि त्रिश्चिद् विष्णुर्मनवे बाधिताय ।
तस्य ते शर्मन्नुपदद्यमाने राया मदेम तन्वा३ तना च ॥ ५१६ ॥

१४ तन्नोऽहिर्बुध्न्यो अद्भिरर्कैस्तत् पर्वतस्तत् सविता चनो धात् ।
तदोषधीभिरभि रातिषाचो भगः पुरंधिर्जिन्वतु प्र राये ॥ ५१७ ॥

१५ नु नो रयिं रथ्यं चर्षणिप्रां पुरुवीरं मह ऋतस्य गोपाम् ।
क्षयं दाताजरं येन जनान् त्स्पृधो अदेवीरभि च क्रमाम
विश आदेवीरभ्य१श्नवाम ॥ ५१८ ॥

(मण्डल ६ सूक्त ५०)

१ हुवे वो देवीमदितिं नमोभिर्मृळीकाय वरुणं मित्रमग्निम् ।
अभिक्षदामर्यमणं सुशेवं त्रातॄन् देवान् त्सवितारं भगं च ॥ ५१९ ॥

स्तुति करनेवाला स्तुति वचनका ज्ञाता स्तुतिसे शरीरमें-
मनो-स्पर्श करता है । (ऐसी वचनोंसे स्तुति करता है कि
वह स्तुति सुननेवालेके शरीरमें घुसती है । मनपर परिणाम
करती है ।)

१ स्वभिः नाकं न— नक्षत्रोंसे आकाश चमकता है
वैसा वह शोभता है । स्तुति करनेवाला तेज प्राप्त करता है ।)

[१३] (५१६) (यः विष्णुः) जिस विष्णुने (बाधि-
ताय मनवे) असुरोंसे दुःखी हुए मनुके लिये (पार्थिवानि
रजांसि) तीनों पार्थिव लोकोंको (त्रिः विममे) तीन बार आक्र-
मण किया । हे विष्णो ! (तस्य ते) उस प्रकार तुमने
(उपदद्यमाने शर्मन्) दिये घरमें (राया तन्वा तना च मदेम)
धनसे युक्त नीरोग शरीरवाले पुत्रोंसहित हम आनन्दमें
रहेंगे ॥ १३ ॥

१ यः विष्णुः बाधिताय मनवे पार्थिवानि रजांसि
त्रिः विममे— जिस विष्णुने दुःखित मनुके लिये तीन बार
पार्थिवस्थ लोकोंका आक्रमण किया । (तीन बार आक्रमण
करके तीनों लोकोंमें शान्ति स्थापन करके मनुका दुःख दूर
किया ।)

२ तस्य ते उपदद्यमाने शर्मन् राया तन्वा तना
च मदेमहि— उस तेरे दिये घरमें धन शरीर तथा पुत्रोंके
साथ आनन्दसे रहेंगे ।

विष्णु तीनों लोकोंको आनन्द बढाता है इसलिये वह मेरे
साथ आनन्द बढावेगा ही ।

[१४] (५१७) (अहिर्बुध्न्य) अग्निदेव (अर्कैः अ-
द्भिः तत् चनः धात्) मन्त्रोंसे स्तूयमान होकर हमको पानी
सहित अन्न दें । (पर्वत तत् सविता तत् रातिषाचः) पर्वत
हमें अन्न दें सविता हमें अन्न दे और विश्वेदेव भी हमको
(ओषधीभिः तत् अभि) ओषधियों सहित अन्न दें । (पुरंधिः
भगः राये प्र जिन्वतु) बहुत बुद्धिमान् भगदेव हमारे लिये
धनको प्रेरित करें ॥ १४ ॥

[१५] (५१८) हे सम्पूर्ण देवताओं ! (नः रथ्यं चर्ष-
णिप्रां पुरुवीरं महः ऋतस्य गोपां रयिं) हमें रथोंसे युक्त,
मनुष्योंको धनसे तृप्ति करानेवाला बहुत वीरों पुत्रोंसे युक्त,
महान् सत्यका रक्षक ऐसा धन और (अजरं क्षयं) अजर
घर (दात) दें । (येन जनान्) जिस धन और घरसे शत्रु
लोगोंकी (च अदेवीः स्पृधः) स्पर्धा करनेवाली राक्षसी सेनाका
(अभि क्रमाम) हम पराभव करें । (आदेवीः विशः अभि
अश्नवाम) दैवी प्रजा जिस धन और घरसे संतुष्ट होती है
ऐसा धन और घर हमको दे ॥ १५ ॥

१ नः रथ्यं चर्षणिप्रां पुरुवीरं महः ऋतस्य गोपां
रयिं अजरं क्षयं दात— हमें रथोंसे युक्त मनुष्योंको तृप्त
करनेवाले बहुत पुत्रपौत्रोंसे युक्त बडे सत्य मार्गके रक्षक धनको
तथा अक्षय घरको दे दो ।

२ येन जनान् अदेवीः स्पृधः च अभि क्रमाम—
जिससे हम शत्रुके सैनिकोंपर और दुष्ट स्पर्धा करनेवालोंपर
आक्रमण करेंगे ।

३ आदेवीः विशः अभि अश्नवाम— दिव्य प्रजा
जिससे संतुष्ट होती है वह धन हमें मिले ।

[१] (५१९) हे देवों ! मैं (मृळीकाय नमोभिः)
सुखके लिये नमनोंसे (वः देवीं अदितिं) तुम्हारी तेजस्विनी

५ मिम्यक्ष येषु रोदसी नु देवी सिषक्ति पूषा अभ्यर्धयज्वा ।
श्रुत्वा हवं मरुतो यद्ध याथ भूमा रेजन्ते अध्वनि प्रविक्ते ॥ ५२३ ॥

६ अभि त्यं वीरं गिर्वणसमर्चेन्द्रं ब्रह्मणा जरितर्नवेन ।
श्रवदिद्धवमुप च स्तवानो रासद् वाजाँ उप महो गृणानः ॥ ५२४ ॥

७ ओमानमापो मानुषीरमृक्तं धात तोकाय तनयाय शं योः ।
यूयं हि ष्ठा भिषजो मातृतमा विश्वस्य स्थातुर्जगतो जनित्रीः ॥ ५२५ ॥

८ आ नो देवः सविता त्रायमाणो हिरण्यपाणिर्यजतो जगम्यात् ।
यो दत्रवाँ उषसो न प्रतीकं व्यूर्णुते दाशुषे वार्याणि ॥ ५२६ ॥

९ उत त्वं सूनो सहसो नो अद्या देवाँ अस्मिन्नध्वरे ववृत्याः ।
स्यामहं ते सदमिद् रातौ तव स्यामाग्नेऽवसा सुवीरः ॥ ५२७ ॥

१० उत त्या मे हवमा जग्म्यात नासत्या धीभिर्युवमङ्ग विप्रा ।
अत्रिं न महस्तमसोऽमुमुक्तं तूर्वतं नरा दुरितादभीके ॥ ५२८ ॥

---

[५] (५२३) (येषु रोदसी देवी मिम्यक्ष नु) जिनके साथ तेजस्वी द्यावापृथिवी मिली हुई है। (अभ्यर्धयज्वा पूषा सिषक्ति) भक्तोंको समृद्ध करनेवाला पूषा जिनकी सेवा करता है। हे (मरुतः) मरुत् वीरो! तुम (हवं श्रुत्वा यद् ह याथ) हमारी प्रार्थना सुनकर जब आते हो तब (अध्वनि प्रविक्ते भूमा रेजन्ते) मार्गमें जानेके लिये चलते रहनेपर अन्य प्राणी कांपते हैं। ऐसा तुम्हारा वेग है ॥ ५ ॥

[६] (५२४) हे (जरितः) स्तोता! (त्यं वीरं गिर्वणसं इन्द्रं) उस वीर प्रशंसनीय इन्द्रकी (नवेन ब्रह्मणा) नवीन स्तोत्रसे (अभि अर्च) स्तुति करो। (स्तवानः) स्तुति किया हुआ वह इन्द्र (हवं उप श्रवत् इत्) हमारी प्रार्थना श्रवण करे। (गृणानः महः वाजान् च उप रासत्) और प्रशंसित इन्द्र हमें अत्यधिक बल और अन्न देवे ॥ ६ ॥

[७] (५२५) हे (आपः) जलप्रवाहो! (मानुषीः) तुम मनुष्योंके हितके लिये हो इसलिये (तोकाय तनयाय धात) पुत्र और पौत्रके लिये (अमृक्तं ओमानं) अहिंसित रक्षक बल देओ। (हि विश्वस्य स्थातुः जगतः जनित्रीः) तुम सब स्थावर और जंगमको उत्पन्न करनेवाले हो। (यूयं मातृतमाः भिषजः स्थ) तुम सब माताओंसे भी अधिक अच्छे चिकित्सक हो। इसलिये (शं योः) तुम सब उपद्रवोंको दूर करो ॥ ७ ॥

१ आपः मानुषीः— जल मानवोंका हित करनेवाला है।

२ अमृक्तं ओमानं तोकाय तनयाय धात— नाश न करनेवाला संरक्षक बल पुत्रपौत्रोंके लिये दे दो।

३ विश्वस्य स्थातुः जगतः जनित्रीः— सब स्थावर जंगमको उत्पन्न करनेवाला जल है।

४ यूयं मातृतमाः भिषजः स्थ— तुम माताओंसे भी अधिक प्रेमसे रोग दूर करनेवाले हो।

५ शं योः— हमें शान्ति दो और दोष दूर करो।

[८] (५२६) (यः दत्रवान्) जो धनवान् देव (उषसः न प्रतीकं) उषाका प्रतीक जैसा है वह (दाशुषे वार्याणि) मनुष्यको प्रशंसनीय धन (वि ऊर्णुते) देता है वह (त्रायमाणः हिरण्यपाणिः यजतः सविता देवः) रक्षक, स्वर्णके समान किरणोंवाला यजनीय सविता देव (नः आ जगम्यात्) हमारे पास आवे ॥ ८ ॥

[९] (५२७) (उत) और हे (सहसः सूनो) बलपुत्र अग्नि! (त्वं अद्य नः अस्मिन् अध्वरे) तुम आज हमारे इस यज्ञमें (देवान् आ ववृत्याः) देवोंको लाओ। और (अहं ते रातौ सदं इत् स्याम्) मैं तेरे धन देनेके समय सदा उपस्थित रहूँगा। तथा हे (अग्ने) अग्नि! (तव अवसा सुवीराः स्याम) तेरे रक्षणसे उत्तम वीर (पुत्रपौत्रादि) से युक्त होवें ॥ ९ ॥

[१०] (५२८) (उत) और हे (विप्रा नासत्या) बुद्धिमान् अश्विन् देवताओ! (त्या युवं) वे तुम दोनों

२ वेद यस्त्रीणि विदथान्येषां देवानां जन्म सनुतरा च विप्रः।
ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन्नभि चष्टे सूरो अर्य एवान्। ॥ ५२५ ॥
३ स्तुष उ वो मह ऋतस्य गोपानदितिं मित्रं वरुणं सुजातान्।
अर्यमणं भगमदब्धधीतीनच्छा वोचे सधन्यः पावकान् ॥ ५२६ ॥
४ रिशादसः सत्पतीँरदब्धान् महो राज्ञः सुवसनस्य दातॄन्।
यूनः सुक्षत्रान् क्षयतो दिवो नॄनादित्यान् याम्यदितिं दुवोयु ॥ ५२७ ॥
५ द्यौ३ष्पितः पृथिवि मातरध्रुगग्ने भ्रातर्वसवो मृळता नः।
विश्व आदित्या अदिते सजोषा अस्मभ्यं शर्म बहुलं वि यन्त ॥ ५२८ ॥
६ मा नो वृकाय वृक्ये समस्मा अघायते रीरधता यजत्राः।
यूयं हि ष्ठा रथ्यो नस्तनूनां यूयं दक्षस्य वचसो बभूव ॥ ५२९ ॥

(चरत्यं शुचि दर्शतं) जिसीति अहिंसित निर्मल और दर्शनीय (ऋतस्य अनीकं) सत्यका तेजरूप सूर्य (आ वद् एति) प्रकाशित हो रहा है। (दधिता दिव रुक्मः न वि भाति) और प्रकाशित होकर वह देव सुवर्णमय भूषणकी तरह सुशोभित होता है ॥ १ ॥

[२] (५२५) (यः त्रीणि विदथानि वेद) जो सूर्य तीनों लोकोंको जानता है। (एषां देवानां सनुतः जन्म च विप्रः) इन देवोंके जन्मको भी जानता है। (सूरः) वह सूर्य (मर्तेषु ऋजु वृजिना) जिनमें सत् कर्म और असत् कर्मोंको (च पश्यन् अभि चष्टे) देखता हुआ उनको प्रकाशित करता है, (अर्यः एवान्) वह स्वामी देव सूर्य मनुष्योंकी इच्छा पूर्ण करता है ॥ २ ॥

१ यः त्रीणि वेद— जो तीनों लोकोंमें चल रहा है उनको जानता है।

२ एषां देवानां सनुतः जन्म विप्रः— इन देवोंके जन्म को जानता है।

३ सूरः मर्तेषु ऋजु वृजिना च पश्यन् अभि चष्टे— वह सूर्य इस विश्वमें सरल और कुटिल जो है वह देखता और प्रकाशित करता है।

४ अर्यः एवान्— वह ऐसा सबका शासक है।

सब इस शासकका सामर्थ्य जानें और उसको चारों ओर देखकर सरल रीतिसे अपने जीवन व्यतीत करें।

[३] (५२६) हे देवो! (महः ऋतस्य) महान् सत्यकी (गोपान् वः) रक्षा करनेवाले तुम्हारी मैं (स्तुष) स्तुति करता हूं। (अदितिं मित्रं वरुणं) अदिति मित्र वरुण (सुजातान् अर्यमणं भगं) उत्तम जन्मवाले अर्यमा और भग तथा (अदब्धधीतीन् सधन्यः पावकान्) अहिंसित कर्मवाले धन्य और सबको पवित्र करनेवाले ऐसे इन देवोंकी मैं (अच्छ वोचे) प्रशंसा करता हूं ॥ ३ ॥

[४] (५२७) (रिशादसः सत्पतीन्) हिंसकोंका नाश करनेवाले सज्जनोंकी रक्षा करनेवाले (अदब्धान् महः राज्ञः) अहिंसित महान् शासक (सुवसनस्य दातॄन् यूनः सुक्षत्रान्) सुन्दर घर देनेवाले, नित्य तरुण, अतिशय क्षात्रबलसे युक्त, (क्षयतः दिवः नॄन्) निवास करनेवाले द्युलोकके नेता (आदित्यान्) अदितिके पुत्रोंकी ओर (दुवोयु अदितिं यामि) आशीर्वाद देनेवाली अदितिके समीप मैं जाता हूं ॥ ४ ॥

[५] (५२८) हे (पितः द्यौः) पिता द्युलोक (मातः अध्रुक् पृथिवि) अद्रोही माता पृथिवी (भ्रातः अग्ने) भाई अग्नि और (वसवः) वसुओ! (नः मृळत) हमको सुखी बनाओ। हे (विश्वे आदित्याः) सब अदिति पुत्रो! हे (अदिते) अदिति! तुम सब (सजोषाः अस्मभ्यं) प्रीतिपूर्वक मिलकर हमको (बहुलं शर्म वियन्त) अत्यधिक सुख दो ॥ ५ ॥

[६] (५२९) हे (यजत्राः) पूजनीय देवो! (नः वृकाय वृक्ये मा रीरधत) हमको वृक और वृकीके वशमें मत करना (समस्मै अघायते) संपूर्ण रीतिसे जो हमारे साथ पापव्यवहार करना चाहते हैं उनके भी हाथमें हम न चले जांय। (यूयं हि नः तनूनां रथ्यः स्थ) तुम हमारे शरीरोंके नेता हो। (यूय

७ मा व एनो अन्यकृतं भुजेम मा तत् कर्म वसवो यच्चयध्वे ।
विश्वस्य हि क्षयथ विश्वदेवाः स्वयं रिपुस्तन्वं रीरिषीष्ट ॥ ५४० ॥

८ नम इदुग्रं नम आ विवासे नमो दाधार पृथिवीमुत द्याम् ।
नमो देवेभ्यो नम ईश एषां कृतं चिदेनो नमसा विवासे ॥ ५४१ ॥

९ ऋतस्य वो रथ्यः पूतदक्षानृतस्य पस्त्यसदो अदब्धान् ।
ताँ आ नमोभिरुरुचक्षसो नॄन् विश्वान्व आ नमे महो यजत्राः ॥ ५४२ ॥

१० ते हि श्रेष्ठवर्चसस्त उ नस्तिरो विश्वानि दुरिता नयन्ति ।
सुक्षत्रासो वरुणो मित्रो अग्निर्ऋतधीतयो वक्मराजसत्याः ॥ ५४३ ॥

११ ते न इन्द्रः पृथिवी क्षाम वर्धन् पूषा भगो अदितिः पञ्च जनाः ।
सुशर्माणः स्ववसः सुनीथा भवन्तु नः सुत्रात्रासः सुगोपाः ॥ ५४४ ॥

यज्ञस्य नयतः भूत) और तुम सब हमारे यज्ञवर्धक मार्गके भी नेता बनो ॥ ६ ॥

[७] (५४०) हे देवो ! (वः अन्यकृतं एनः मा भुजेम) हम तुम्हारे ही हैं हम अन्य शत्रुओं द्वारा किये हुए पापके भोगी न बनें। हे (वसवः) वसुओ ! (यत् चयध्वे) जिस पापके लिये तुम हमको दण्डते हो (तत् मा कर्म) वह पाप हम न करें। हे (विश्वदेवाः) सब देवो ! (विश्वस्य हि क्षयथ) सब जगत्के तुम ही स्वामी हो। (रिपुः तन्वं स्वयं रिरिषीष्ट) इसलिये हमारे शत्रु स्वयं ही अपने शरीरका नाश कर डालें ॥ ७ ॥

१ अन्यकृतं एनः मा भुजेम— दूसरोंका किया पाप हमें भोगना न पडे।

२ यत् चयध्वे तत् मा कर्म— जिसके लिये तुम दण्ड देते हो वैसा कोई पाप हम न करें।

३ विश्वस्य हि क्षयथ— विश्वके तुम स्वामी हो।

४ रिपुः तन्वं स्वयं रिरिषीष्ट— शत्रु अपने शरीरको स्वयं नष्ट करे। (वह हमें दुःख देनेके लिये न रहे।)

[ ] (५४१) (नम इत् उग्रं) नमस्कार वास्तवमें ही सर्वोत्कृष्ट है। इसलिये (नमः आ विवासे) मैं नमस्कार करता हूं (नमः पृथिवीं उत द्यां दाधार) नमस्कार ही पृथिवी और द्युलोकको धारण करता है। मैं (देवेभ्यः नमः) देवोंको नमस्कार करता हूं। (एषां नमः ईशे) देवोंको नमस्कार अभीष्ट है जिससे वे वशमें हो जाते हैं। और इसलिये (कृतं चित् एनः नमसा आ विवासे) किये हुए पापोंका मैं नमस्कार द्वारा नाश करता हूं ॥ ८ ॥

[९] (५४२) हे (यजत्राः) यजनीय देवो ! (ऋतस्य रथ्यः पूतदक्षान्) तुम यज्ञके नेता, शुद्ध बलवाले (ऋतस्य पस्त्यसदः) यज्ञगृहोंमें रहनेवाले (अदब्धान् उरुचक्षसः) अपराजित दूरदर्शी (नॄन् महः तान् विश्वान् वः) नेता ऐसे महान् तुम सबको मैं (आ नमोभिः आ नमे) नमस्कारोंसे नमन करता हूं ॥ ९ ॥

[१] (५४३) (ते हि श्रेष्ठवर्चसः) वे अत्यन्त श्रेष्ठ तेजसे युक्त हैं। इसलिये (ते उ नः विश्वानि दुरिता तिरः नयन्ति) वे ही हमारे संपूर्ण पापोंको दूर करते हैं। वरुण मित्र अग्नि ये देव (सुक्षत्रासः ऋतधीतयः वक्मराजसत्याः) उत्तम क्षात्रबलसे युक्त, सत्य कर्म करनेवाले, और विवेक उत्तम करनेमें सत्यवादी हैं ॥ १ ॥

[११] (५४४) इन्द्र, द्यावापृथिवी, पूषा, भग अदिति पञ्चजन ये देव (सुशर्माणः स्ववसः) उत्तम सुख देनेवाले उत्तम रक्षा करनेवाले (सुनीथाः) उत्तम मार्गसे ले जानेवाले हमारे लिये (भवन्तु) हों। तथा वे (नः सुत्रात्रासः) हमारे उत्तम संरक्षक (सु-गोपाः) उत्तम गौपालक हों ॥ ११ ॥

२ अति वा यो मरुतो मन्यते नो ब्रह्म वा यः क्रियमाणं निनित्सात् ।
तपूंषि तस्मै वृजिनानि सन्तु ब्रह्मद्विषमभि तं शोचतु द्यौः ॥ ५५१ ॥
३ किमङ्ग त्वा ब्रह्मणः सोम गोपां किमङ्ग त्वाहुरभिशस्तिपां नः ।
किमङ्ग नः पश्यसि निद्यमानान् ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिमस्य ॥ ५५२ ॥
४ अवन्तु मामुषसो जायमाना अवन्तु मा सिन्धवः पिन्वमानाः ।
अवन्तु मा पर्वतासो ध्रुवासो ऽवन्तु मा पितरो देवहूतौ ॥ ५५३ ॥
५ विश्वदानीं सुमनसः स्याम पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम् ।
तथा करद् वसुपतिर्वसूनां देवाँ ओहानोऽवसागमिष्ठः ॥ ५५४ ॥

---

[२] (५५१) हे (मरुतः) मरुत् वीरो ! (यः वा) अथवा जो (नः क्रियमाणं ब्रह्म) हमारे द्वारा किये जानेवाले मंत्रपाठका (अति मन्यते) अतिक्रमण करेगा (वा यः निनित्सात्) अथवा जो हमारे मंत्रपाठकी निंदा करेगा (तस्मै तपूंषि वृजिनानि सन्तु) उसके लिये आपत्तियां आनेवाली हों (तं ब्रह्मद्विषं द्यौः अभिशोचतु) उस ज्ञानके द्वेष करनेवालेको यह द्युलोक भी संतप्त करे ॥ २ ॥

१ यः ब्रह्म अतिमन्यते— जो ज्ञानका द्वेष करता है ।

२ यः ब्रह्म निनित्सात्— जो ज्ञानकी निंदा करता है ।

३ तस्मै तपूंषि वृजिनानि सन्तु— उसके लिये आपत्तियां आनेवाली हों ।

४ ब्रह्मद्विषं द्यौः अभिशोचतु— उस ज्ञानका द्वेष करनेवालेको यह द्युलोक संतप्त करे दुःखी करे । ज्ञानका द्वेष करनेवालेका कभी कल्याण नहीं होगा ।

[३] (५५२) हे (अङ्ग सोम) प्रिय सोम ! (किं त्वा ब्रह्मणः गोपां आहुः) क्या तुझे ज्ञानका रक्षक कहते हैं ना ? हे (अङ्ग) प्रिय सोम ! (किं त्वा नः अभिशस्तिपां आहुः) क्या तुझे निन्दासे हमारा बचाव करनेवाला कहते हैं ना ! हे (अङ्ग) प्रिय ! (नः निद्यमानान् पश्यसि) हमारी निन्दा करनेवालोंको तू कैसा देखता है ! (ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिं अस्य) ज्ञानका द्वेष करनेवालेके ऊपर तपा हुआ शस्त्र फेंक ॥ ३ ॥

१ त्वा ब्रह्मणः गोपां आहुः— तुझे ज्ञानका रक्षक कहते हैं ।

२ त्वा अभिशस्तिपां आहुः— तुझे निन्दासे बचाने वाला कहते हैं ।

ज्ञानका रक्षण करना चाहिये और किसीकी निन्दा भी नहीं करनी चाहिये ।

३ निद्यमानान् पश्यसि— निन्दा करनेवालोंको देखते रहना योग्य नहीं है । उनको सुधारना चाहिये ।

४ ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिं अस्य— ज्ञानका द्वेष करनेवालेको अवश्य दण्ड देना चाहिये । यदि वह सौम्य उपायोंसे न सुधरे तो तप्त शस्त्र भी उसपर फेंकना चाहिये ।

इस मंत्रमें प्रभुसे पूछा है कि क्या तुमको ज्ञानका रक्षक कहते हैं ना ? तुमको निन्दासे बचानेवाला कहते हैं ना ? फिर हमारी निन्दा करनेवालोंको तुम देखते ही रहते हो यह कैसे हो रहा है ? निन्दकोंपर अवश्य प्रहार करो और जिससे शान्ति स्थापन हो ।

[४] (५५३) (जायमानाः उषसः मा अवन्तु) प्रकट होनेवाली उषाएं मेरा संरक्षण करें (पिन्वमानाः सिन्धवः मा अवन्तु) महापूरसे भरी नदियां मेरी रक्षा करें, (ध्रुवासः पर्वतासः मा अवन्तु) सुस्थिर पर्वत मेरी रक्षा करें, (पितरः देवहूतौ) पितर देवोंकी प्रार्थना करनेपर (मा अवन्तु) मेरी रक्षा करें ॥ ४ ॥

देवहूतौ मा अवन्तु— ईश्वरकी प्रार्थना करनेपर वे सब मेरी रक्षा करें । ईश्वर-प्रार्थनामें यह शक्ति है कि सब देव उस प्रार्थना करनेवालेकी सुरक्षा करते हैं ।

[५] (५५४) (विश्वदानीं सुमनसः स्याम) सदा ही हम उत्तम विचार करनेवाले हों । (सूर्यं उच्चरन्तं पश्येम नु) आकाशमें ऊपर संचार करनेवाले सूर्यको हम देखें । (वसूनां वसुपतिः तथा करद्) धनोंका धनपति देव वैसा प्रबन्ध करे कि जिससे (देवान् ओहानः अवसा आगमिष्ठः) ज्ञानियोंको बुलानेवाला देव अपनी रक्षकशक्तिके साथ हमारे पास आवे ॥ ५ ॥

६ इन्द्रो नेदिष्ठमवसागमिष्ठः सरस्वती सिन्धुभिः पिन्वमाना ।
पर्जन्यो न ओषधीभिर्मयोभुरग्निः सुशंसः सुहवः पितेव ॥ ५५५ ॥
७ विश्वे देवास आ गत शृणुता म इमं हवम् । एदं बर्हिर्नि षीदत ॥ ५५६ ॥
८ यो वो देवा घृतस्नुना हव्येन प्रतिभूषति । तं विश्व उप गच्छथ ॥ ५५७ ॥
९ उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये । सुमृळीका भवन्तु नः ॥ ५५८ ॥
१० विश्वे देवा ऋतावृध ऋतुभिर्हवनश्रुतः । जुषन्तां युज्यं पयः ॥ ५५९ ॥
११ स्तोत्रमिन्द्रो मरुद्गणस्त्वष्टृमान् मित्रो अर्यमा । इमा हव्या जुषन्त नः ॥ ५६० ॥
१२ इमं नो अग्ने अध्वरं होतर्वयुनशो यज । चिकित्वान् दैव्यं जनम् ॥ ५६१ ॥

---

१ विश्वदानीं सुमनसः स्याम— हम सदा मनमें उत्तम विचार रखें । मनमें कुविचार रखनेसे हानि होती है । अतः सदा अपने मनमें उत्तम ओजस्वी विचार ही रहें ।

२ सूर्य उच्चरन्त पश्येम— सूर्य ऊपर आकाशमें आता है ऐसा हम देखें । अर्थात् हम सूर्यका दर्शन करें । हम प्रकाशमें रहें । दीर्घ जीवन प्राप्त करें ।

३ देवानां ओहानः वसूनां वसुपतिः अवसा आगमिष्ठः— दिव्य पुरुषोंको अपने पास लानेवाला धनपति अपनी संरक्षक शक्तिके साथ हमारे पास आवे और हमें धन देकर हमारा संरक्षण करे ।

उत्तम विचार मनमें रखो दीर्घ जीवन प्राप्त करो और धन तथा संरक्षण प्राप्त करो ।

[६] (५५५) (इन्द्रः अवसा नेदिष्ठं आगमिष्ठ) इन्द्र अपने रक्षा करनेके साधनोंके हमारे समीप आवे । (सिन्धुभिः पिन्वमाना सरस्वती) जलके स्रोतोंसे खूब भरकर बहनेवाली सरस्वती हमारी रक्षा करे । (पर्जन्यः ओषधीभिः न मयोभुः) पर्जन्य औषधियोंके साथ हमें सुख देनेवाला हो (सुहवः अग्निः) प्रशंसनीय अग्नि (पिता इव सुहवः) पिताके समान सुखसे बुलाने योग्य हो ॥ ६ ॥

[७] (५५६) हे (विश्वे देवाः) सब देवो ! (आ गत) आओ (मे इदं हवं शृणुत) मेरी यह प्रार्थना सुनो और (इदं बर्हिः आ नि षीदत) इस आसनपर बैठो ॥ ७ ॥

[८] (५५७) हे (देवाः) दिव्य वीरो ! (घृतस्नुना हव्येन) घीसे भरपूर भरे हविसे (यः वः प्रतिभूषति) जो आपको समर्पण करता है (तं विश्वे उप गच्छथ) उसके पास तुम सब चले जाते हैं ॥ ८ ॥

घृतस्नुना हव्येन यः प्रतिभूषति— घी जिससे टपकता है ऐसे हविसे जो तुम्हारा आदरसत्कार करता है । हवन ऐसे हविसे किया जाय जिसमें घीका भी भरपूर भरा हो ।

[९] (५५८) (ये अमृतस्य सूनवः) जो अमर ईश्वरके पुत्र हैं वे देव (नः गिरः उप शृण्वन्तु) हमारी प्रार्थना सुनें । वे (नः सुमृळीका भवन्तु) हमें सुख देनेवाले हों ॥ ९ ॥

अमृतस्य सूनवः— अमर ईश्वरके पुत्र ये सब आग्न्यादि देव हैं । वे सब हमें सुख देनेवाले हों ।

[१०] (५५९) (विश्वे देवाः ऋतावृधः) आप सब देव सत्यमार्गको बढानेवाले हो (ऋतुभिः हवनश्रुतः) और ऋतुओंके अनुसार हवन करानेके लिये सुप्रसिद्ध हो । अतः (युज्यं पयः जुषन्त) इस योग्य दूधका स्वीकार करो ॥ १० ॥

१ ऋतावृधः— सत्यमार्गकी वृद्धि करनेवाले जो होते हैं वे देव कहलाते हैं ।

२ ऋतुभिः हवनश्रुतः— ऋतुके अनुसार हवन करनेके लिये ये प्रसिद्ध हैं । ये दो लक्षण देवोंके हैं । सत्यका प्रचार और ऋतुके अनुसार कर्म करना ये दो लक्षण देवोंके हैं ।

[११] (५६०) इन्द्र और मरुतोंका समूह (त्वष्टृमान्) कारीगर सुतार आदि जिसके साथ रहते हैं वे (मित्रः अर्यमा) मित्र और श्रेष्ठ मनवाला अर्यमा ये सब देव (नः इमा हव्या जुषन्त) हमारी ये प्रार्थनाएं सुनें ॥ ११ ॥

[१२] (५६१) हे (होतः अग्ने) यज्ञकारक अग्ने ! (नः इमं अध्वरं) हमारे इस हिंसारहित यज्ञमें (दैव्यं जनं चिकित्वान्) दिव्यजनको जानकर (वयुनशः यज) उनके कर्मके अनुसार यजन कर ॥ १२ ॥

पूषा देवता

(म. ६ सू. ५३)

१ वयमु त्वा पथस्पते रथं न वाजसातये । धिये पूषन्नयुज्महि ॥ ५६७ ॥
२ अभि नो नर्यं वसु वीरं प्रयतदक्षिणम् । वामं गृहपतिं नय ॥ ५६८ ॥
३ अदित्सन्तं चिद्राघृणे पूषन् दानाय चोदय । पणेश्चिद् वि म्रदा मनः ॥ ५६९ ॥
४ वि पथो वाजसातये चिनुहि वि मृधो जहि । साधन्तामुग्र नो धियः ॥ ५७० ॥

---

[१] (५६७) (पथः-पते पूषन्) हे मार्गका रक्षण करनेवाले पूषन्! (वाजसातये रथं न) अन्नका दान करनेके लिये रथको जोतते हैं उस तरह (धिये त्वा अयुज्महि) बुद्धिके कर्म करनेके लिये तुझे प्रयुक्त करते हैं ॥ १ ॥

१ पथः पतिः पूषा— मार्गका स्वामी पोषणकर्ता। पोषण करनेवाला योग्य मार्गको जाने और उसी मार्गपरसे वह जाय।

२ वाजसातये रथं— अन्नदान अथवा अन्नप्राप्तिके लिये रथको जोतते हैं। रथमें बैठकर अन्नका दान करते हैं अथवा अन्न लाते हैं।

३ धिये त्वा अयुज्महि— बुद्धिके कर्म करनेके लिये तुझे प्रेरित करते हैं। मनुष्य बुद्धिको बढावे और बुद्धिसे सुयोग्य कर्म करे।

[२] (५६८) हे पूषन्! (नः) हमें (नर्यं वसु) मानवोंका हित करनेवाले धन (प्रयत-दक्षिणं वीरं) दक्षिणा देनेवाला वीरपुत्र और (वामं गृहपतिं) प्रशंसनीय गृहस्वामीके (अभि नय) पास ले चलो ॥ २ ॥

१ नर्यं वसु— मानवोंका हित करनेवाला धन है धन वह मानवोंका हित करनेवाला है।

२ प्रयत-दक्षिणं वीरं— दक्षिणा देनेवाला वीर पुत्र या वीर पुरुष हो। उदार पुत्र हो। प्रसन्न करके दान देनेवाला वीर पुत्र हो।

३ वामं गृहपतिं अभिनय— प्रशंसनीय जो गृहस्थ है उसको हम प्राप्त करें। मानवोंके हितार्थ धन देनेवाला उदार वीर गृहस्थ जो होता वह प्रशंसनीय तथा पास जाने योग्य है।

[३] (५६९) हे (आघृणे पूषन्) प्रकाशमान् पूषन्! (अदित्सन्तं चित्) दान न देनेवालेको (दानाय चोदय) दान देनेके लिये प्रेरित कर (पणेः चित् मनः वि म्रदा) व्यवहार करनेवालेके मनको तू विशेष नरम कर ॥ ३ ॥

१ अदित्सन्तं दानाय चोदय— दान न देनेवालेको भी दान देनेके लिये प्रेरित कर। जो कंजूस हैं उनको भी दान देनेमें प्रवृत्त करना चाहिये।

२ पणेः मनः वि म्रद— व्यापार व्यवहार करनेवाले बनियेके मनको जरा नरम कर। बनिये दान नहीं देते उनका मन गरीबोंकी स्थिति देख कर पिघल जाय ऐसा मृदु करना चाहिये। पणिः— व्यापारी बनिये।

[४] (५७०) (वाज-सातये पथः वि चिनुहि) धन प्राप्तिके मार्ग ढूंढकर निकालो। (मृधः वि जहि) घातक शत्रुओंको पराजित कर। हे (उग्र) वीर पूषन्! (नः धियः साधन्तां) हमारे कर्म सिद्ध हो जाय ॥ ४ ॥

१ वाज-सातये पथः वि चिनुहि— धन प्राप्त करनेके मार्ग ढूंढकर निकालने चाहिये। मनुष्य उद्यमी बनें। उदास न हों।

२ मृधः वि जहि— शत्रुओंको पराजित करो। धन प्राप्तिके मार्गमें जो विघ्न करते हैं उनको दूर करना चाहिये।

३ नः धियः साधन्तां— हमारे बुद्धिपूर्वक किये कार्य पूर्णतः सब सिद्धिको प्राप्त हों। उससे हमें लाभ मिले। हमारी इच्छाएं सिद्ध हों।

४ उग्र— वीर और अपनी उग्रतासे जो यश प्राप्त करता है, शत्रुके प्रयत्नसे दब नहीं जाता। निर्भयतासे सिद्धितक जो बढता रहता है। उत्साही प्रयत्नशील वीर पुरुष।

१० उत नो गोपर्णि धिय—मश्वसां वाजसामुत । नृवत् कृणुहि वीतये ॥५७६॥

(म ६ सू ५४)

१ स पूषन् विदुषा नय यो अञ्जसानुशासति । य एवेदमिति ब्रवत् ॥५७७॥
२ समु पूष्णा गमेमहि यो गृहाँ अभिशासति । इम एवेति च ब्रवत् ॥५७८॥
३ पूष्णश्चक्रं न रिष्यति न कोशोऽव पद्यते । नो अस्य व्यथते पविः ॥५८९॥
४ यो अस्मै हविषाविध—न्न तं पूषापि मृष्यते । प्रथमो विन्दते वसु ॥५८०॥
५ पूषा गा अन्वेतु नः पूषा रक्षत्वर्वतः । पूषा वाजं सनोतु नः ॥५८१॥
६ पूषन्ननु प्र गा इहि यजमानस्य सुन्वतः । अस्माकं स्तुवतामुत ॥५८२॥
७ माकिर्नेशन्माकीं रिष—न्माकीं सं शारि केवटे । अथारिष्टाभिरा गहि ॥५८३॥

---

[१०] (५७६) (उत नः धियं) और हमारी बुद्धिको (गो-षणिं) गौओंके (अश्व-सां) घोडोंके साथ रहनेवाली (वाज-सां) अन्न प्राप्त करनेवाली (उत नृवत्) और पुत्र पौत्रोंके साथ मानवोंके साथ मिलजुलकर रहनेवाली (वीतये कृणुहि) विशेष उत्साहजनक किये कर ॥ १० ॥

१ नः धियं गोषणिं, अश्वसां वाजसां नृवत् वीतये कृणुहि— हमारी बुद्धिको गौकी सेवा करनेवाली घोडेके साथ रहनेवाली, अन्न प्राप्त करनेवाली और पुत्रपौत्रों तथा मानवोंके साथ मिलकर रहनेवाली बनाओ। हमारी बुद्धि ऐसी हो।

[१] ( ) हे (पूषन्) पोषक देव! (यः इदं एव इति ब्रवत्) जो यह ऐसा ही है ऐसा कहता है और (यः अनुशासति) जो शास्त्र उपदेश देता है (विदुषा अञ्जसा सं नय) उस विद्वानके पास हमें ले जाओ ॥ १ ॥

१ यः इदं एव इति ब्रवत्— जो निःसन्देह यह ऐसा ही है ऐसा स्पष्ट कहता है वह सच्चा मनुष्य है।

२ यः अनुशासति— जो अनुकूल शासन करता है ऐसा उपदेश देता है।

३ विदुषा अञ्जसा संनय— उस विद्वान्के पास शीघ्र हमें ले जा। ऐसा विद्वान् सबका हित करेगा।

[२] (५७८) (यः गृहान् अभिशासति) जो घरोंके विषयमें अनुशासन करता है, तथा (इमे एव इति च ब्रवत्) ये ही वे हैं ऐसा जो कहता है (पूष्णा उ सं गमेमहि) पूषाके साथ हम सब साथ रहते हैं ॥ २ ॥

[३] (५७९) (अस्य पूष्णः चक्रं न रिष्यति) इस पूषाका चक्र दूषित नहीं होता (कोशः न अवपद्यते) इसका कोष गिरता नहीं (अस्य पविः नो व्यथते) इसका शस्त्र व्यथाको नहीं प्राप्त होता ॥ ३ ॥

पूषाका चक्र और शस्त्र पीछे नहीं हटता, शत्रुपर योग्य रीतिसे आघात करता है। तथा इसका कोश-खजाना-रिक्त (खाली) नहीं होता। सदा भरा रहता है। शस्त्रोंकी भारकता और खजाना भरपूर भरा रहना इसपर राज्यसेनाकी सुरक्षितता है।

[४] (५८०) (यः अस्मै हविषा अविधत्) जो इस पूषाके लिये हवि अर्पण करता है (तं पूषा अपि न मृष्यते) उसको पूषा कभी कष्ट नहीं देता है और वह (प्रथमः वसु विन्दते) पहिले धन प्राप्त करता है ॥ ४ ॥

[५] (५८१) (पूषा नः गाः अनु एतु) पूषा हमारी गौओंके पीछे जाय (पूषा अर्वतः रक्षतु) पूषा हमारे घोडोंका रक्षण करे। (पूषा नः वाजं सनोतु) पूषा धन या अन्न हमें देवे ॥ ५ ॥

पूषा देवकी कृपासे हमारे पास गौवें घोडे और धन या अन्न भरपूर हो।

[६] (५८२) (सुन्वतः यजमानस्य) यज्ञ करनेवाले यजमानके लिये (उत स्तुवतां अस्माकं) और स्तुति करनेवाले हमारे लिये (गाः अनु प्र इहि) गौवें अनुकूलतासे प्राप्त हों ॥ ६ ॥

[७] (५८३) (माकिः नशत्) नष्ट न करे (माकीं रिषत्) वह न टूटे (केवटे माकीं सं शारि) गढेमें गिरकर नष्ट न हो (अथ अरिष्टाभिः आ गहि) ऐसे अहिंसित गौओंसे हमारे पास आओ ॥ ७ ॥

●

८ शृण्वन्तं पूषणं वय-मिर्यमनष्टवेदसम् । ईशानं राय ईमहे ॥५८४॥
९ पूषन् तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन । स्तोतारस्त इह स्मसि ॥५८५॥
१० परि पूषा परस्ता-द्धस्तं दधातु दक्षिणम् । पुनर्नो नष्टमाजतु ॥५८६॥

(मं ६ सू ५५)

१ एहि वां विमुचो नपा-दाघृणे सं सचावहै । रथीर्ऋतस्य नो भव ॥५८७॥
२ रथीतमं कपर्दिन-मीशानं राधसो महः । रायः सखायमीमहे ॥५८८॥
३ रायो धारास्याघृणे वसो राशिरजाश्व । धीवतोधीवतः सखा ॥५८९॥
४ पूषणं न्व१जाश्व-मुप स्तोषाम वाजिनम् । स्वसुर्यो जार उच्यते ॥५९०॥

---

[८] (५८४) (शृण्वन्तं) प्रार्थना सुननेवाले (इर्यं) प्रेरक (अनष्टवेदसं) जिसका धन नष्ट नहीं होता ऐसे (ईशानं पूषणं) ईश पूषाके पास (वयं रायः ईमहे) हम धन मांगते हैं ॥ ८ ॥

[९] (५८५) हे (पूषन्) पूषा देव! (तव व्रते) तेरे व्रतमें रहेंगे तो (वयं कदाचन न रिष्येम) हम कभी भी नष्ट नहीं होंगे। (ते स्तोतारः इह स्मसि) क्योंकि तेरी स्तुति करनेवाले हम हैं ॥ ९ ॥

[१०] (५८६) (पूषा दक्षिणं हस्तं) पूषा अपने दाहिने हाथको (परस्तात् परिदधातु) ऊपर धारण करे। और (नष्टं पुनः नः आ अजतु) नष्ट हुए धनको वह हमें पुनः देवे ॥ १० ॥

[१] (५८७) हे (आघृणे) तेजस्वी पूषन्! (वां एहि) हम दोनोंके पास आ। (विमुचः नपात्) दुःखसे मुक्त करनेवालोंको न गिरानेवाले! (सं सचावहै) हम दोनों मिलकर रहेंगे। (नः ऋतस्य रथीः भव) हमारे सत्य कर्मका चलानेवाला हो ॥ १ ॥

१ आघृणे विमुचः न पात्— वीर तेजस्वी हो विमुक्त करनेवालोंको उन्नति पथसे न गिराय।

२ सं सचावहै— हम दोनों मिलकर रहेंगे। समाजमें ज्ञानी-अज्ञानी, सबल निर्बल, धनी निर्धन ऐसे दो प्रकारके लोग होते हैं उनमें संगति होनी चाहिये।

३ ऋतस्य रथीः भव— सत्य कर्मका चलानेवाला हो।

[२] (५८८) (रथीतमं) श्रेष्ठ रथी वीर (कपर्दिनं) सिर पर जटा धारण करनेवाला (महः राधसः ईशानं) बडे धनका स्वामी ऐसा (सखायं) हमारे मित्र पूषाके पास हम (रायः ईमहे) धन मांगते हैं ॥ २ ॥

१ रथीतम— रथी वीरोंमें श्रेष्ठ

२ कपर्दिन— मस्तकपर शिखा रखनेवाला, सिरपर बाल जिसके हैं ऐसा।

३ महः राधसः ईशान— बडे धनका स्वामी।

४ सखायं— मित्र

ऐसा पूषा है इसके पास हम—

५ रायः ईमहे— धन मांगते हैं।

[३] (५८९) हे (आघृणे अजाश्व) तेजस्वी वेगवान् अश्ववाले पूषन्! (रायः धारा असि) धनका प्रवाह तू है (वसोः राशिः) ऐश्वर्यकी राशि है और (धीवतः धीवतः सखा) प्रत्येक बुद्धिपूर्वक कर्म करनेवालेका तू मित्र है ॥ ३ ॥

१ अज-अश्व— बकरी भेडोंको घोडेके स्थानपर जोतनेवाला अथवा वेगवान् घोडोंको रथको जोतनेवाला।

२ रायः धारा असि— धनकी धारा है धनका प्रवाह तुझसे चलता है।

३ वसोः राशिः— निवासके हेतु रूप धनका खजाना तू है।

४ धीवतः धीवतः सखा— बुद्धिपूर्वक कर्म करनेवालेका यह पूषा देव मित्र है।

[४] (५९०) (अजाश्वं वाजिनं) बलवान, घोडोंवाले बकरोंको घोडोंके स्थानपर जोतनेवाले (पूषणं नु उप स्तोषाम) पूषाकी हम स्तुति करते हैं। (यः स्वसुः जारः उच्यते) जो उषा नामक बहिनका नाश करनेवाला कहा जाता है ॥ ४ ॥

स्वसा— बहिन उषा। स्वसुः जारः— बहिनकी आयु नष्ट करनेवाला सूर्य उदय होने ही उषा तथा रात्रि नष्ट होती है। उषाका नाश करनेवाला। पूषा सूर्य है।

अजाश्वः— पीछला मंत्र १ देखो।

५ मातुर्दिधिषुमब्रवं स्वसुर्जारः शृणोतु नः । भ्रातेन्द्रस्य सखा मम ॥५९१॥
६ आजासः पूषणं रथे निशृम्भास्ते जनश्रियम् । देवं वहन्तु बिभ्रतः ॥५९२॥

(म. ६, सू. ५६)

१ य एनमादिदेशति करम्भादिति पूषणम् । न तेन देव आदिशे ॥५९३॥
२ उत घा स रथीतमः सख्या सत्पतिर्युजा । इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥५९४॥
३ उतादः परुषे गवि सूरश्चक्रं हिरण्ययम् । न्यैरयद् रथीतमः ॥५९५॥
४ यदद्य त्वा पुरुष्टुत ब्रवाम दस्र मन्तुमः । तत् सु नो मन्म साधय ॥५९६॥
५ इमं च नो गवेषणं सातये सीषधो गणम् । आरात् पूषन्नसि श्रुतः ॥५९७॥

---

[५] (५९१) (मातुः दिधिषुं अब्रवम्) माताके सहचरको मैंने कहा है (स्वसुः जारः न शृणोतु) बहिनका उपाका नाशक हमारे भाषण सुने। (इन्द्रस्य भ्राता) इन्द्रका यह भाई है (मम सखा) मेरा मित्र पूषा है ॥ ५ ॥

दिधिषु, जार ये पद भाषामें जार-यार-के अर्थमें हैं परंतु यहां मातुः दिधिषुः माता रात्रिका सहचर तथा स्वसुः जारः बहिनका जार अर्थात् उषाका नाशक इस अर्थमें ये पद आलंकारिक भाव बता रहे हैं। जार पदका तात्पर्य वयोहानि करनेवाला है। सूर्य आते ही रात्रिकी तथा उषाकी वयोहानि होती है। यह भाव यहां है।

[६] (५९२) (जनश्रियं पूषणं देवं निशृम्भाः) लोगोंको ऐश्वर्यवान् करनेवाले पूषा देवको लानेवाले (अजासः अज बकरे (बिभ्रतः रथे वहन्तु) रथमें धारण करके यहां ले आवें। ॥ ६ ॥

१ जनश्रियं पूषणं देवं निशृम्भाः अजासः— पूषा देव जनोंका वैभव बढानेवाला है उसको रथको मेंढे जोते हैं। या अज का अर्थ स्पष्ट हुआ है। अज-अश्व का अर्थ शीघ्र गतीके स्थानपर जोतनेवाला पूषा।

[१] (५९३) (य एनं पूषणं) जो इस पूषाकी (करम्भ अद्) करंभ खानेवाला करके (आदिदेशति) स्तुति करता है (तेन देवः न आदिशे) उससे पूषा देवकी [और अधिक अच्छी स्तुति] कोई नहीं होती ॥ १ ॥

करम्भ— दही मिश्रित आटेसे बनाया खानेका पदार्थ।

[२] (५९४) (उत घ सः रथीतमः) और निश्चयसे वह रथी-वीरोंमें श्रेष्ठ है। (युजा सख्या) इसलिये अपने इस योग्य मित्र पूषाके साथ रहकर (सत्पतिः इन्द्रः) सज्जनोंका पति इन्द्र (वृत्राणि जिघ्नते) वृत्रोंको मारता है ॥ २ ॥

१ रथीतमः— रथीवीरोंमें अतिश्रेष्ठ पूषा है।

२ युजा सख्या— योग्य मित्र पूषा है। वह कभी मित्रद्रोह नहीं करता। इसके साथ रहकर सत्पतिः इन्द्रः वृत्राणि जिघ्नते— सज्जनोंका पालक इन्द्र वृत्रोंको मारता है। सच्चे मित्रके साथ रहकर अपना बल बढाता है।

[३] (५९५) (रथीतमः) रथियोंमें श्रेष्ठ पूषाने (उत) और (परुषे गवि) कठोर स्थान जैसे भूमिपरसे (अदः सूरः हिरण्ययं चक्रं) यह सूर्यका सुवर्णका चक्र (नि ऐरयत्) घुमाया है ॥ ३ ॥

[४] (५९६) (पुरुष्टुत) हे बहुतों द्वारा प्रशंसित, (दस्र) दर्शनीय (मन्तुमः) और मननीय पूषन्! (यत् अद्य त्वा प्र ब्रवाम) जो आज तुझे हम कहते हैं (नः तत् मन्म सु साधय) हम हमारा मननीय स्तोत्र उत्तम रीतिसे सिद्ध कर ॥ ४ ॥

जो हम मांगते हैं हमें वह प्राप्त हो।

[५] (५९७) हे (पूषन्) पूषा देव! तू (आरात् श्रुतः असि) तू समीपसे और दूरसे प्रसिद्ध है। (इमं गवेषणं गणं) इस गौकी खोज करनेवाले जनसमूहको (सातये सीषधः) धन दानके लिये ले जा ॥ ५ ॥

हमको गौवें प्राप्त हों ऐसा कर।

६ आ ते स्वस्तिमीमह आरेअघामुपावसुम् ।
अद्या च सर्वतातये श्वश्च सर्वतातये ॥ ५९८ ॥

(मं.१ सू ५७)

१ इन्द्रा नु पूषणा वयं सख्याय स्वस्तये । हुवेम वाजसातये ॥ ५९९ ॥
२ सोममन्य उपासदत् पातवे चम्वोः सुतम् । करम्भमन्य इच्छति ॥ ६०० ॥
३ अजा अन्यस्य वह्नयो हरी अन्यस्य संभृता । ताभ्यां वृत्राणि जिघ्नते ॥ ६०१ ॥
४ यदिन्द्रो अनयद् रितो महीरपो वृषन्तमः । तत्र पूषाभवत् सचा ॥ ६०२ ॥
५ तां पूष्णः सुमतिं वयं वृक्षस्य प्र वयामिव । इन्द्रस्य चा रभामहे ॥ ६०३ ॥
६ उत् पूषणं युवामहे ऽभीशूँरिव सारथिः । मह्या इन्द्रं स्वस्तये ॥ ६०४ ॥

(मं १ सू ५८)

१ शुक्रं ते अन्यद् यजतं ते अन्यद् विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि ।
विश्वा हि माया अवसि स्वधावो भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु ॥ ६०५ ॥

---

[६] (५९८) (अद्य च श्वः च) आज और कल हमारा (सर्वतातये सर्वतातये) सब प्रकारसे कल्याण हो इस लिये (ते आरे-अघां) तेरी पाप दूर करनेवाली (उप-वसुं) धन देनेवाली और (स्वस्तिं) कल्याण करनेवाली बुद्धिको (ईमहे) प्राप्त करनेकी प्रार्थना करते हैं ॥ ६ ॥

१ अद्य श्वः च सर्वतातये— आज भी हमारा सब प्रकारसे कल्याण हो और कल भी हमारा सब प्रकारसे कल्याण हो।

२ ते आरे-अघां उपवसुं स्वस्तिं ईमहे— तेरी पाप दूर करनेवाली धन देनेवाली और कल्याण करनेवाली बुद्धि हमें अनुकूल हो ऐसी हम प्रार्थना करते हैं।

इन्द्रापूषणौ।

[१] (५९९) (वयं) हम अब (इन्द्रा नु पूषणा) इन्द्र और पूषाको (सख्याय स्वस्तये) मित्रताके और कल्याणके लिये तथा (वाजसातये) अन्न एवं बलादिकी प्राप्तिके लिये (हुवेम) बुलाते हैं ॥ १ ॥

[२] (६००) (अन्यः) इनमेंसे एक इन्द्र (सुतं सोमं चम्वोः पातवे) छानकर पात्रमें रखा सोमरस पीनेके लिये (उपासदत्) आकर बैठा है। और (अन्यः करम्भं इच्छति) और दूसरा पूषा करंभ खानेकी इच्छा करता है ॥ २ ॥

[३] (६०१) (अन्यस्य अजाः वह्नयः) इन दोनोंमेंसे एक पूषाके बकरी ढोनेवाले होते हैं और (अन्यस्य हरी संभृता) और दूसरे इन्द्रके घोडे जुडे हैं। (ताभ्यां वृत्राणि जिघ्नते) इन दोनों द्वारा वृत्र मारे जाते हैं ॥ ३ ॥

[४] (६०२) (यत्) जब (वृषन्तमः इन्द्रः) बलवान् इन्द्रने (रितः) उत्साहित होकर (महीः अपः अनयत्) बडे जलप्रवाहोंको लाया तब (पूषा तत्र सचा अभवत्) पूषा तेरा साथी था ॥ ४ ॥

[५] (६०३) (पूष्णः इन्द्रस्य च सुमतिं) पूषा और इन्द्रकी उत्तम बुद्धिको (वयं आरभामहे) प्राप्त करते हैं (वृक्षस्य वयां इव) वृक्षकी शाखाको पकडते हैं उस तरह हम उनकी सुमतिके आश्रयसे रहते हैं ॥ ५ ॥

[६] (६०४) (सारथिः अभीशून् इव) सारथी लगामोंको पकडता है उस तरह (पूषणं इन्द्रं) पूषा और इन्द्रको (मह्यै स्वस्तये) बडे कल्याणके लिये (उत् युवामहे) हम पकड कर रखते हैं ॥ ६ ॥

[१] (६०५) हे (स्वधा-वः) अपने धारण शक्तिसे युक्त हे (पूषन्) पूषा! (ते शुक्रं अन्यत्) तेरा एक रूप दिनका— प्रकाशमय है (ते यजतं अन्यत्) और तेरा दूसरा रूप पूजनीय—रात्रिका— है। (विषुरूपे अहनी) इस तरह विविध सुंदर रूपवाले ये दिन और रात्रि (द्यौः इव असि) प्रकाशमान जैसे हैं। (विश्वाः मायाः अवसि हि) सब कौशल्य युक्त कर्मोंका तू रक्षण करता है। (ते भद्रा रातिः इह अस्तु) तेरा कल्याणपूर्ण दान यहां होता रहे ॥ १ ॥

२ अजाश्वः पशुपा वाजपस्त्यो धियंजिन्वो भुवने विश्वे अर्पितः ।
अष्ट्रां पूषा शिथिरामुद्वरीवृजत् संचक्षाणो भुवना देव ईयते ॥ ६०६ ॥
३ यास्ते पूषन्नावो अन्तः समुद्रे हिरण्ययीरन्तरिक्षे चरन्ति ।
ताभिर्यासि दूत्यां सूर्यस्य कामेन कृत श्रव इच्छमानः ॥ ६०७ ॥
४ पूषा सुबन्धुर्दिव आ पृथिव्या इळस्पतिर्मघवा दस्मवर्चाः ।
यं देवासो अददुः सूर्यायै कामेन कृतं तवसं स्वञ्चम् ॥ ६०८ ॥

[२] (६०६) (पूषा) पूषा देव (अजाश्वः) भेडोंको रथमें जोतनेवाला (पशुपाः) पशुओंका पालक (वाज-पस्त्यः) अन्नका संग्रह घरमें करनेवाला (धियं-जिन्वः) बुद्धिको स्फूर्ति देनेवाला (विश्वे भुवने अर्पितः) सब भुवनोंमें अर्पित है। यह पूषा (शिथिरां अष्ट्रां उद् वरी वृजत्) अपने तेजस्वी चाबुकको चमकाता है और (संचक्षाणः देवः भुवना ईयते) निरीक्षण करता हुआ यह देव भुवनोंमें जाता है ॥ २ ॥

[३] (६०७) हे (पूषन्) पूषा! (याः ते हिरण्ययीः नावः) जो तेरी सुवर्णकी नौकाएं (अन्तरिक्षे समुद्रे अन्तः चरन्ति) अन्तरिक्षके समुद्रमें चल रही हैं (ताभिः) उनसे तू (श्रव इच्छमानः) यशकी इच्छा करता हुआ (कामेन कृत) हे स्वइच्छासे कर्म करनेवाले! (सूर्यस्य दूत्यां यासि) सूर्यके दूतकर्मको करता है ॥ ३ ॥

[४] (६०८) (दिवः पृथिव्याः आ) द्युलोकसे पृथिवी तक (पूषा सुबन्धुः) पूषा सबका उत्तम भाई जैसा है। (इळः-पतिः मघवा दस्मवर्चाः) यह भूमिका पालक धनवान् दर्शनीय तेजसे युक्त है। (यं देवासः सूर्यायै अददुः) जिस पूषाको देवोंने सूर्याके लिये दिया वह (कामेन कृतं तवसं स्वञ्चं) कामसे किया सुभूषित बलयुक्त वीर है ॥ ४ ॥

पूषा देवताका स्वरूप

यहां 'पूषा' देवताके ६ सूक्त हैं और उनमें ४२ मंत्र हैं। ?+? +६+६+६+४ = ४२ मंत्र हैं। ये सूक्त ६ मण्डलमें सूक्त ५३ से ५८ तक हैं। परंतु ५७ वें सूक्तके ६ मंत्र इन्द्रा पूषणौ देवताके अर्थात् इन्द्र और पूषा देवताके हैं।

इनमें हमें पूषा देवताका स्वरूप देखना है वह अब देखिये—

पूषा (११) का अर्थ पोषण करनेवाला पुष्ट कर देनेवाला है। आघृणिः = (५३।४) तेजस्वी है उग्रः (३।१) घोर उग्र है। कविः (५३।५) = ज्ञानी दूरदर्शी कान्तदर्शी है। कपर्दी (५ ।२) = सिरपर जटा धारण करनेवाला अथवा सिरपर साफा बाँधनेवाला है दस्म (११) = दर्शनीय सुन्दर है। पथः पति (३।१) = मार्गोंका रक्षक उत्तम मार्ग बतानेमें कुशल।

रथीतमः (५५।) = रथी वीरोंमें उत्तम श्रेष्ठ रथी वीर। अजाश्वः (५५।) = अज+अश्वः। जो अपने रथको घोडोंके स्थानपर भेडोंको जोतता है जिसके रथको भेड जोते जाते हैं। पूषणं देवं अजासः रथे विभ्रतः यहन्तु (५५।६) = पूषा देवको भेड रथमें बिठला कर ले जाते हैं।

सुबन्धुः (५८।४) = सखा (५५।२) = उत्तम मित्र है। मित्रके साथ उत्तम मित्रभावसे बर्तनेवाला है।

अस्य (पूष्णः) अजाः वहयः (५७।३)— पूषाके वाहन भेड हैं। इसके रथको भेड जोते जाते हैं। इसका नाम अजाश्व (५ ।२) पडा है। इससे 'अजाश्व' का अर्थ स्पष्ट होता है। इसके रथमें भेड ही जोते जाते थे। इसमें संदेह नहीं है।

प्रयत-दक्षिणः वीरः (५३।२)— दक्षिणा देनेके लिये जिसका हाथ सिद्ध है। जो दान देनेके लिये तैयार रहता

है। अस्य कोशः न उपदस्यते (५४।२)— इसका कोश कम नहीं होता। कितना भी दान किया तो भी जिसके पाससे धन कम नहीं होता है। प्रथमः वसु विन्दते (५४।४) वह पहिले इससे धन प्राप्त करता है। जो इसके प्रेममें पहिला होता है वह इसके पाससे धन प्राप्त करता है।

रायः धारा असि वसोः राशिः असि (५५।२)— धनकी धारा बहानेवाला पूषा है और उसके पास धनकी राशि है। इतना धन उसके पास है।

ईशानं पूषणं वयं रायः ईमहे (५४।८)— पूषा ईशान है उससे हम धन मांगते हैं। महः रायसः ईशानः (५५।२)— बडे धनका स्वामी पूषा है इस कारण रायः ईमहे (५५।२)— उसके पाससे हम धन मांगते हैं।

जनश्रीः (५५।६)— लोगोंको वह धन देता है।

सब लोगोंके हितके लिये धन

'सर्वे वसु (५३।२)— मानवोंके हितके लिये धन है। धनपर किसी व्यक्तिका अधिकार नहीं है। धन मानवोंके हितके लिये है इसलिये अदित्सन्तं दानाय चोदय (५३।३)— धनका दान न करनेवालेको दान देनेके लिये प्रेरित कर। दान न देनेवाला समाजका शत्रु है। ते भद्रा रातिः इह अस्तु (५८।१)— तेरा कल्याणकारी दान यहां हो।

बुद्धिपूर्वक कार्य हों

धियं त्वा अयुजमहि (५३।१)— बुद्धिपूर्वक कार्यके लिये मैं तुझे प्रयुक्त करता हूं। क्योंकि बुद्धिपूर्वक जो कर्म होते हैं वेही मानवोंकी उन्नतिके लिये होते हैं। अतः मनुष्य बुद्धिका उपयोग करके जो अच्छे हैं वेही कार्य करें। पूषा जो करता है वह बुद्धिपूर्वक सब कार्य करता है।

वाजसातये पथः चिनुहि (५३।४)— धन प्राप्त करनेके लिये मार्ग ढूंढ। धनप्राप्तिके अनेक मार्ग हैं उनमें जो अच्छा मार्ग हो उसीका अवलंबन करके धन प्राप्त करना चाहिये। नः धियः साधय (५३।४)— हमारे बुद्धिपूर्वक किये कर्म सिद्ध हों।

हृदि प्रिय इच्छ (५३।६)— हृदयमें प्रिय कर ऐसी इच्छा कर। किसीका भला हो किसीका नुकसान हो ऐसी इच्छा करना योग्य नहीं है।

मः प्रिय अध्यसां भोदयाणि वाजसां मुषत् वाजये कृणुहि (५३।१) हमारी बुद्धिको बीज मैंने अब तक पुत्रपौत्र विशेष रीतिसे बढानेमें लगा दो। 'पूषा दक्षिणं हस्तं परस्तात्परि दधातु (५४।१)— पूषा अपने हाथसे हमको ऊपर करे और धन हमें देवे। धीवतो सखा' (५५।१) बुद्धिमानोंका मित्र वह पूषा है। जो बुद्धियुक्त कर्म करते हैं उनका वह सहाय्य करता है। पूषा तव सख्ये अभवत्। (५७।४)— पूषा तेरा मित्र हुआ है अर्थात वह तेरी सहायता करता है।

शत्रुको दूर करो

मृधः विजहि (५३।४)— शत्रुका पराभव करो जिससे शत्रु हमारे कर्ममें विघ्न न कर सकें। अकामं इंधय (५३।५)— हमारे हित करनेके लिये धन दुर्गोका नाश कर। मह्यं च अवाः च सर्वतातये अरे अघं दय वसु स्वस्ति ईमहे (५६।६)— नाश और धन अर्थात् सर्वदा हमारा कल्याण हो इसलिये पापको दूर रखनेवाले और धनको पास रखनेवाले पूषाकी हम अपने कल्याणके लिये प्रार्थना करते हैं।

पणिको दूर करो

'पणि वह है कि जो लेन देन करता है और इस व्यापारसे लोगोंको ठगाता है। वे ठगनेवाले वणिये समाजके हितके लिये घातक होते हैं। इसलिये कहा है—

पणेः मनः वि म्रद (५३।३)— ठगनेवाले वणियेका मन जरा नरम कर वह न ठगे ऐसा कर। यदि वे न माने तो उनको दण्ड दे।

पणेः आरया वितुद (५३।६)— पणिको आरेसे मारो, दण्ड दो। पणीनां हृदया आरया परितृन्धि (५३।५) वणियोंके हृदय आरेसे काट दे। उनको दण्ड दो। पणीनां हृदया किकिरा कृणु (५३।७) उनके हृदय खाली कर। उनके हृदयमें दुष्ट भाव रहता है उसको दूर कर।

ज्ञानपरक शस्त्र

पूषाके पास शस्त्र है। वह बडा तीक्ष्ण है। कभी वह निस्तेज नहीं होता। अस्य चक्रं न रिष्यति (५४।३)— इसका चक्र कभी बिगडता नहीं सदा तीक्ष्ण रहता है। अस्य पविः नो व्यथते (५४।३)— वह शस्त्र कभी बिगडता नहीं।

ब्रह्मचारिणी भार्ता विमर्षि (५३।८)— ज्ञानको देनेवाली तुम्हारी धारा है। उससे सज्जनता बढती है।

तया समस्य हृदयं मा रिख किकिरा कृणु (५३।८)— उस धारासे समबुद्धिवाले मनुष्यका हृदय शुद्ध कर। समभावयुक्त मनवालोंको अधिक क्षम कर। उसमें विनाश न होने दे।

ते या अष्ट्रा गोओपशा पशुसाधनी तस्यास्ते सुम्नं ईमहे (५३।९) तेरी जो व्यापक गौओंका संवर्धन करनेवाली पशुओंकी साधना करनेवाली शक्ति है उससे हमें सुख हो हमारा काम हो ऐसा हम चाहते हैं।

उत्तम घरके पास हमें ले चल

याम गृहपतिं अभिनय (५४।२)— उत्तम घरके पास हमें ले चल। उसकी मित्रतासे हमें सुख मिलेगा ऐसा कर।

" य इदं एव इति ब्रवत् यः अनुशासति, विदुषा संजसा संनय (५४।१)— जो यह ऐसा ही है ऐसा सत्य जो है वह एक बार ही बोलता है कभी अपना वचन बदलता नहीं जो अनुशासन ठीक रीतिसे चलाता है वैसे विद्वान्के साथ हमारा मिलाप सत्वर कर। ऐसे सज्जनके साथ मिलकर हम सुख पावेंगे।

यः पुत्रान् अभिशासति इमे एवेति च ब्रवत् पूष्णा संगमेमहि (५४।२)— जो बरोबर अनुशासन करता है वे ही उत्तम हैं ऐसा कहता है वैसे साथ पूषाके साथ हम मिलकर रहते हैं। ऐसे सच्चे सज्जनसे हम सदा सुखी रहें।

तव व्रते वयं न रिष्येम (५४।८)— हे पूषन्! तेरे नियममें हम रहेंगे तो हमारा नाश नहीं होगा। ऐसा विश्वास भक्तके मनमें रहे।

अतस्य रथीः भव (५५।१)— सत्यका रथी हो। सत्यके रथमें तू सबके साथ बैठता है। अर्थात् तू सत्य मार्गसे चला सकता है। इसलिये हम तेरे साथ रहेंगे। और सत्यके मार्गसे चलकर उन्नत होवें।

विमुचः नपात् अवसि (५८।१)— सब कष्टोंसे तू हमारी रक्षा करता है। कष्ट करनेवालोंको दूर करके हमारा रक्षण करता है।

पूषाके लिये यज्ञ

यः अस्मै हविषा अविधत् न तं पूषा न मृष्यते

(५३।८)— जो पूषाके लिये हवन-यज्ञ- करता है उसको पूषा कष्ट नहीं देता। यज्ञ करनेसे कल्याण होता है।

पूषाको करम्भ प्रिय है

पूषणं करम्भ भद् मादिनेवाति (५६।२)— पूषाको करंभ पूरी वालेवाला करके कहते हैं। अन्यः (पूषा) करंभं इच्छति (५७।२)— पूषा करंभ खानेकी इच्छा करता है। पूषाको यह करंभ खाना पसंद है।

गौवोंको ढूंढकर लाना

पूषा नः गाः अन्वेतु अर्वतः रक्षतु वाजं नः सनोतु (५४।५)— पूषा हमारी गौवोंको ढूंढकर ले आवे हमारे घोडोंकी सुरक्षा करे और हमें अन्न देवे। सुन्वतः यजमानस्य स्तुवतां अस्माकं गाः अनु मेहि (५४।६)— यज्ञ करनेवाले यजमानकी और स्तुति करनेवाले हमारी गौवें ले आवे।

नष्टं पुनः नः आ अजतु (५४।१०)— नष्ट हुए पशुको वह पुन हमारे पास ढूंढकर ले आवे।

गवेषणं गण सातये सीषधः (५६।५)— गौवोंको ढूंढनेवाले मानव समुदायको सहायता देनेके लिये सिद्ध रह। सदा ऐसे भक्तोंको सहायता देते रहो।

यः पूषा विमुचः न-पात् (५५।१)— विमुक्त होनेवालोंको न गिरानेवाला है अर्थात् वह विमुक्त होनेमें साधकोंका सहायक होता है। अतः सचस्वावहै (५५।१)— हम दोनों मित्रतासे मिलकर साथ रहेंगे। उनके साथ रहनेसे हमारा नाश नहीं होगा। यह पूषा वाजी (५५।४)— बलवान् है। यह अतएव पुरु-स्तुतः (५६।४) बहुतों द्वारा स्तुतिके लिये योग्य है, तथा अमृध्रः (५६।४)— निष्पापशील है। कभी अविचारसे किसीकी हानि नहीं करता।

इन्द्रा पूषणा सख्याय स्वस्तये वाजसातये हुवेम (५७।१)— इन्द्र और पूषाकी मित्रता करनेके लिये कल्याणके लिये और बल या अन्नकी प्राप्तिके लिये प्रार्थना करते हैं।

पूष्ण इन्द्रस्य सुमतिं वयं आरभामहे। (५७।५)— पूषा और इन्द्रकी सुमति हमारे ऊपर रहे इसलिये हम इस सत्कर्मका आरंभ करते हैं। महा स्वस्तये पूषणं इन्द्रं उत् हुवामहे (५७।६)— बडे कल्याणके लिये हम पूषा और इन्द्रके साथ रहते हैं। वे हमारी सहायता करें जिससे हम सुखी होवें।

पूषा अजाश्वः पशुपाः वाजपस्त्यः धियं जिन्वः भुवने अर्पितः भुवना ईयते (५८।१)— पूषा बकरोंको घोडेके स्थानपर रखनेवाला पशुपालक, अन्न जिसके घरमें है, बुद्धिको प्रेरक भुवनोंमें अर्पित हुआ भुवनोंको देखता हुआ जाता है। भुवनोंमें पूषा भरपूर भरा है। वह इतने गुणोंसे युक्त है। यहां पूषाकी सर्वव्यापकता कही है।

हिरण्ययी नावः अन्तरिक्षे चरन्ति (५८।३)- सुवर्णकी नौकाएं अन्तरिक्षमें चलती हैं। इनमेंसे पूषा जाता है। अवः इच्छमानः (५८।३) यशकी इच्छा करता है। उत्तम यशवाला हो इसकी वह इच्छा करता है। ये वर्णन सर्वव्यापक प्रभुके हैं। पूषाका यहां सर्वव्यापक ईश्वर करके वर्णन किया है।

इन्द्र

इन्द्रापूषणा देवताके ५७ वें सूक्तमें इन्द्रका वर्णन इस तरह किया है—

अन्यः (इन्द्रः) सोमं पातवे उपासदत् (५७।२)— इन्द्र सोमरस पीनेके लिये आसनपर बैठा है।

अन्यस्य (इन्द्रस्य) हरी संभृता (५७।३)— इन्द्रके घोडे जुडे हुए हैं। ताभ्यां वृत्राणि जिघ्नते (५७।३) — वे दोनों शत्रुओंको मारते हैं। यहां पूषाकी सहायता इन्द्रको शत्रु मारनेमें होती है ऐसा कहा है। पूषा अन्न देता है, इन्द्र सेनासे युद्ध करता है। अन्नकोष और वीरतासे शत्रु मरते हैं। अन्न न रहा तो सैनिक युद्ध कैसे करेंगे और शत्रु मारेंगे कैसे? युद्धके लिये वीरोंको अन्नकी सहायता चाहिये यह भाव यहां स्पष्ट दीखता है। इन्द्रापूषणाके मंत्र यहां यह राष्ट्रीय नीति बता रहे हैं।

बहिनका जार

'स्वसुः जारः (५५।४; ५५।५) यहां पूषाको बहिनका जार कहा है। पूषाकी बहिन उषा है। पूषा सूर्य है। सूर्य प्रकाशता है और उषाका नाश होता है। इस अर्थमें ये शब्द प्रयोग हैं। जार शब्दका जारक यह अर्थ यहां है वैसे हीन अर्थका भाव वेदमें इस शब्दमें नहीं है।

पूषाके वर्णन ऋग्वेदके मंत्रोंमें ये अत्यन्त बारंबार मनन करने योग्य हैं। इसका मनन करके पूषाके मंत्रोंसे योग्य बोध पाठक प्राप्त करें।

आघृणि (५३।८)— तेजस्वी ऐसा अर्थ है और क्रुद्ध ऐसा भी अर्थ है।

इन्द्राग्नी देवता

(मं ६ सू ५९)

१ प्र नु वोचा सुतेषु वां वीर्या३ यानि चक्रथुः।
हतासो वां पितरो देवशत्रव इन्द्राग्नी जीवथो युवम् ॥ ६०९ ॥

२ बळित्था महिमा वामिन्द्राग्नी पनिष्ठ आ।
समानो वां जनिता भ्रातरा युवं यमाविहेहमातरा ॥ ६१० ॥

---

[१] (६०९) हे (पितरः) रक्षक वीरो! (इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि! (सुतेषु) यज्ञोंमें (यानि वीर्या चक्रथुः) जो आपने पराक्रम किये थे (वां नु प्रवोच) तुम्हारे उन पराक्रमोंका वर्णन करते हैं। (वां देवशत्रवः हतासः) तुम्हारे देवोंके शत्रु तुमने मारे हैं। हे इन्द्र अग्नि! (युवं जीवथः) तुम दोनों जीवित रहते हो ॥ १ ॥

पितरः— रक्षक वीर;

वीर्या चक्रथुः— तुमने पराक्रम किये।

देवशत्रवः हतासः— देवोंके शत्रु मारे गये हैं।

युवं जीवथः— तुम जीवित रहे हो। शत्रुको मारनेपर भी तुम यथापूर्व जीवित रहे हो। वीर ऐसे होने चाहिये।

[२] (६१०) हे (इन्द्र अग्नी) इन्द्र और अग्नि देवो! (वां महिमा) आपकी महिमा (पनिष्ठः बट् इत्था आ) बडा और निर्भर है (वां जनिता) आपका उत्पन्न

३ ओकिवांसा सुते सचाँ अश्वा सती इवादने ।
इन्द्रा न्व१ग्नी अवसेह वज्रिणा वयं देवा हवामहे ॥ ६११ ॥

४ य इन्द्राग्नी सुतेषु वां स्तवत् तेष्वृतावृधा ।
जोषवाकं वदतः पज्रहोषिणा न देवा मसथश्चन ॥ ६१२ ॥

५ इन्द्राग्नी को अस्य वां देवौ मर्तश्चिकेतति ।
विषूचो अश्वान् युयुजान ईयत एकः समान आ रथे ॥ ६१३ ॥

६ इन्द्राग्नी अपादियं पूर्वागात् पद्वतीभ्यः ।
हित्वी शिरो जिह्वया वावदच्चरत् त्रिंशत् पदा न्यक्रमीत् ॥ ६१४ ॥

७ इन्द्राग्नी आ हि तन्वते नरो धन्वानि बाह्वो' ।
मा नो अस्मिन् महाधने परा वर्क्तं गविष्टिषु ॥ ६१५ ॥

दोनोंका पिता (समान) एक ही है इस कारण (युवं भ्रातरा) तुम दोनों भाई हो। और (इह इह-मातरा) यहां यही तुम्हारी माता है ॥ २ ॥

इन्द्र और अग्निका एक पिता और उन दोनोंकी एक ही माता है।

[३] (६११) (सती अश्वा इव अदने) बलवान् घोडे घास खानेको मिलनेपर जैसे आनंदित होते हैं, उस तरह (सुते सचाँ ओकिवांसा) यज्ञमें सोमरस मिलनेपर आनंदित होते हैं। हे (वज्रिणा इन्द्राग्नी अवसा इह) हे वज्रधारी इन्द्र और अग्नि! अपनी रक्षक शक्तिके साथ यहां आओ। यहां (देवा) हे देवो (वयं हवामहे) हम प्रार्थना करते हैं ॥ ३ ॥

[४] (६१२) हे (इन्द्र-अग्नी) इन्द्र और अग्नि! (सुतेषु वां य स्तवत्) यज्ञोंमें तुम्हारी जो स्तुति करता है (तेषु ऋत-वृधा) उनके सत्यमें सत्य भाव बढानेवाले देवो (जोषवाकं वदतः) उनसे प्रेमपूर्वक भाषण बोलते हो। हे (पज्र-होषिणा देवा) शक्तिमान घोषणा करनेवाले देवो! (न मसथः चन) उन भाषणोंका विनाश तुम नहीं करते ॥ ४ ॥

ऋत-वृधी— सत्य मार्गको बढानेवाले यज्ञको बढानेवाले।

पज्र-होषिणी— बलवान् घोषणा करनेवाले बलकी घोषणा करनेवाले।

न मसथः— विनाश नाश नहीं करते।

जोष-वाक वदतः— प्रीतिपूर्वक भाषण करते।

[५] (६१३) (इन्द्राग्नी देवो) हे इन्द्र और अग्नि देवो! (कः मर्त) कौन मानव भला (वां अस्य चिकेतति) आपके इस कार्यको पूर्णतया जान सकता है? आपमेंसे (एकः) एक इन्द्र (समाने रथे) एक ही रथमें (विषूचः अश्वान् युयुजानः) विविध दिशाओंमें जानेवाले घोडोंको जोतकर (आ ईयते) आता है ॥ ५ ॥

[६] (६१४) हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि! (इयं अपात्) यह पादरहित उषा (पद्वतीभ्यः पूर्वा अगात्) पाववालोंसे पहिले आती है। (शिरः हित्वी) सिरको कंपित करके (जिह्वया वावदत्) जिह्वासे बोलती है और साथ-साथ (चरत्) चलती भी है। इस तरह (त्रिंशत् पदा नि अक्रमीत्) तीस पांव आक्रमण करती है ॥ ६ ॥

[७] (६१५) हे इन्द्र और अग्नि! (हि नरः बाह्वोः धन्वानि) वीर नेता लोग बाहुओंपर धनुष्य (आ तन्वते) सज्ज रखते हैं। (अस्मिन् महाधने) इस युद्धमें (गविष्टिषु नः मा परा वर्क्तं) इस गौओंकी प्राप्तिके समयमें हमें छोडकर पीछे न चले जाइये ॥ ७ ॥

१ अस्मिन् महाधने गविष्टिषु नः मा परा वर्क्तं— इस युद्धमें इस गौओंकी प्राप्तिकी स्पर्धामें हमें न छोडिये। हमारे साथ रहें।

गविष्टि— (गो-इष्टि)— गौओंकी प्राप्तिकी स्पर्धा जो प्रशस्त यह शुभ कर्म।

महाधन— युद्ध जहां धन प्राप्त होता है ऐसा कर्म।

१ नरः बाह्वोः धन्वानि आतन्वते— नेता वीर बाहुओंपर सज्ज हुए धनुष्य रखते हैं। धनुपर बाण छोडनेकी तैयारी करके वे सदा तैयार रहते हैं।

८ इन्द्राग्नी तपन्ति मा॒ऽघा अर्यो अरातय ।
अप द्वेषांस्या कृतं युयुतं सूर्यादधि ॥ ६१६ ॥
९ इन्द्राग्नी युवोरपि वसु दिव्यानि पार्थिवा ।
आ न इह प्र यच्छतं रयिं विश्वायुपोषसम् ॥ ६१७ ॥
१० इन्द्राग्नी उक्थवाहसा स्तोमेभिर्हवनश्रुता ।
विश्वाभिर्गीर्भिरा गत॒मस्य सोमस्य पीतये ॥ ६१८ ॥

(म ६ सू ६०)

१ श्नथद् वृत्रमुत सनोति वाज॒मिन्द्रा यो अग्नी सहुरी सपर्यात् ।
इरज्यन्ता वसव्यस्य भूरेः सहस्तमा सहसा वाजयन्ता ॥ ६१९ ॥
२ ता योधिष्टमभि गा इन्द्र नून॒मपः स्वरुषसो अग्न ऊळ्हाः ।
दिशः स्वरुषस इन्द्र चित्रा अपो गा अग्ने युवसे नियुत्वान् ॥ ६२० ॥
३ आ वृत्रहणा वृत्रहभिः शुष्मै॒रिन्द्र यातं नमोभिरग्ने अर्वाक् ।
युवं राधोभिरकवेभिरिन्द्रा॒ऽग्ने अस्मे भवतमुत्तमेभिः ॥ ६२१ ॥

---

[८] (६१६) हे इन्द्र और अग्नि ! (अघाः अर्यः अरातयः) पापी दुष्ट शत्रु (मा तपन्ति) मुझे ताप देते हैं। (द्वेषांसि आ कृतं) हम द्वेष करनेवाले शत्रुओंको दूर करो (सूर्यात् अधि युयुतं) सूर्यसे उनको दूर करो। उनको अन्धेरेमें रखो ॥ ८ ॥

१ अघाः अर्यः अरातयः मा तपन्ति द्वेषांसि आ कृतं- पापी सब दुष्ट मुझे ताप दे रहे हैं उनको दूर करो।

२ सूर्यात् अधि युयुतं- सूर्यप्रकाशसे दूर उनको रखो। वह दण्ड उनका हो।

[९] (६१७) हे इन्द्र और अग्नि ! (दिव्यानि पार्थिवा) द्युलोकमें और पृथिवीपर जो (वसु) धन है वह सब (युवोः अपि) तुम्हारा ही है। (विश्वायुपोषसं रयिं) सब आयु भर- सब मानवोंका पोषण होगा ऐसा धन (इह नः आ प्रयच्छतं) यहां हमें दे दो ॥ ९ ॥

विश्व आयु- पोषण- सब आयुभर पोषण हो सब मानवोंका पोषण हो। आयु- मनुष्य आयु।

विश्वायुपोषसं रयिं नः इह आ प्रयच्छतं- सब आयुभर अथवा सब मनुष्योंका पोषण हो ऐसा धन यहां हमें दे दो।

[१०] (६१८) हे इन्द्र और अग्नि ! आप (उक्थवाहसा) प्रशंसनीय गुणवाले और (स्तोमेभिः हवनश्रुता) स्तोत्रोंसे प्रसन्न होनेवाले (विश्वाभिः गीर्भिः) हमारी सब प्रार्थनाओंको सुनकर (अस्य सोमस्य पीतये) इस सोमरसके पीनेके लिये (आ गतं) आओ ॥ १० ॥

[१] (६१९) (यः इन्द्रा अग्नी सहुरी सपर्यात्) जो इन्द्र और अग्निकी शत्रुओंका दमन करनेवालोंकी पूजा करता है वह (वृत्रं श्नथत्) शत्रुको मारता है और (वाजं सनोति) अन्न प्राप्त करता है। वे (सहस्तमा) बलवान् (सहसा वाजयन्ता) सामर्थ्यसे बलिमान् हैं (भूरेः वसव्यस्य इरज्यन्ता) और बहुत धनके दाता हैं ॥ १ ॥

[२] (६२०) हे इन्द्र ! हे अग्नि ! (नूनं) निश्चयसे [illegible] (गाः अपः स्वः उषसः) गौओं जलप्रवाहों और प्रकाश और उषाओंको (ऊळ्हाः) उठाया है जो दूर ले गये हैं (ता अभियोधिष्ट) उनसे लडो। हे इन्द्र और (नियुत्वान् अग्ने) उत्तम घोडोंको रथमें जोतनेवाले अग्ने ! (दिशः स्वः उषसः) दिशाएं, स्वर्गीय प्रकाश उषाएं (चित्राः अपः गाः) विविधविध गौएं और जलप्रवाहोंको (युवसे) तुम भक्तोंसे देते हो ॥ २ ॥

[३] (६२१) हे इन्द्र और हे अग्ने ! हे (वृत्रहणा) शत्रुओंको मारनेवालों ! (वृत्रहभिः शुष्मैः) वृत्रमारक बलोंसे और (नमोभिः) अन्नोंसे (अर्वाक् आ यातं) हमारे पास आओ। हे इन्द्र और अग्ने ! (युवं राधोभिः अकवेभिः

४ ता हुवे ययोरिदं पप्ने विश्वं पुरा कृतम् । इन्द्राग्नी न मर्धत ॥ ६२२ ॥
५ उग्रा विघनिना मृध इन्द्राग्नी हवामहे । ता नो मृळात ईदृशे ॥ ६२३ ॥
६ हतो वृत्राण्यार्या हतो दासानि सत्पती । हतो विश्वा अप द्विषः ॥ ६२४ ॥
७ इन्द्राग्नी युवामिमे३ ऽभि स्तोमा अनूषत । पिबतं शम्भुवा सुतम् ॥ ६२५ ॥
८ या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा । इन्द्राग्नी ताभिरा गतम् ॥ ६२६ ॥
९ ताभिरा गच्छतं नरोपेदं सवनं सुतम् । इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥ ६२७ ॥
१० तमीळिष्व यो अर्चिषा वना विश्वा परिष्वजत् । कृष्णा कृणोति जिह्वया ॥ ६२८ ॥
११ य इद्ध आविवासति सुम्नमिन्द्रस्य मर्त्यः । द्युम्नाय सुतरा अपः ॥ ६२९ ॥
१२ ता नो वाजवतीरिष आशून् पिपृतमर्वतः । इन्द्रमग्निं च वोळ्हवे ॥ ६३० ॥
१३ उभा वामिन्द्राग्नी आहुवध्या उभा राधसः सह मादयध्यै ।
उभा दाताराविषां रयीणामुभा वाजस्य सातये हुवे वाम् ॥ ६३१ ॥

रायेभिः) आप उत्तम निर्दोष कर्मोंके साथ (अस्मे मदतं) हमारे होकर रहो ॥ ३ ॥

[४] (६२२) (ययोः इदं पुरा कृतं विश्वं) जिन्होंने यह विश्व पहिले किया था (पप्ने) जिसकी प्रशंसा हो रही है। (ता हुवे) उनको मैं बुलाता हूं। ये (इन्द्राग्नी न मर्धतः) इन्द्र और अग्नि किसीका नाश नहीं करते हैं ॥ ४ ॥

[५] (६२३) ये इन्द्र और अग्नि (उग्रा) शूरवीर हैं (मृधे विघनिना) युद्धमें शत्रुको मारनेवाले हैं (हवामहे) उनको मैं बुलाता हूं। (ता नः ईदृशे मृळतः) वे हमें ऐसे समयमें सुखी रखें ॥ ५ ॥

[६] (६२४) हे (आर्या) आर्यो !, वृत्राणि हतः) शत्रुओंको मारो हे (सत्पती) सज्जनोंके पालनकर्तो ! (दासानि हतः) दासों-विनाशकोंको मारो तथा (विश्वाः द्विषः अप हतः) सब शत्रुओंको मारो ॥ ६ ॥

[ ] (६२) हे इन्द्र और अग्नि ! (इमे स्तोमाः) ये स्तोत्र (युवां अभि अनूषत) आपकी स्तुति करते हैं। हे (शंभुवा) मंगल करनेवाले देवों ! (सुतं पिबतं) यह सोमरस पीओ ॥ ७ ॥

[८] (६२६) हे (नरा इन्द्राग्नी) नेता इन्द्र और अग्नि ! (याः पुरुस्पृहः वां नियुतः) जो अनेकोंद्वारा प्रशंसित तुम्हारी घोडियां हैं (ताभिः दाशुषे आगतं) उनसे दाताके पास आओ ॥ ८ ॥

[९] (६२७) हे इन्द्र और अग्नि ! हे (नरा) नेताओं ! (इदं सुतं सवनं) इस सोमरसके पास (सोमपीतये) सोम पीनेके लिये (उप आ गच्छतं) आओ ॥ ९ ॥

[१] (६२८) (यः अर्चिषा) जो अपने ज्वाला ओंसे (विश्वा वना परिष्वजत्) सब वनोंको घेरता है और (जिह्वया कृष्णा करोति) जिह्वासे सबको काला करता है (तं ईळिष्व) उस अग्निकी स्तुति करो ॥ १ ॥

[११] (६२९) (यः मर्त्यः) जो मनुष्य (इन्द्रस्य सुम्ने) इन्द्रके उत्तम मन होनेके लिये (इद्धे आविवासति) प्रदीप्त अग्निमें हवन करता है (द्युम्नाय) उसके तेजके संवर्धनके लिये (अपः सुतराः) दुःखके जलप्रवाह सुखसे तैरने योग्य होते हैं ॥ ११ ॥

[१२] (६३) (ता नः वाजवतीः इषः) वे तुम हमें बल बढानेवाला अन्न देओ और (इन्द्रं अग्निं च वोळ्हवे) इन्द्र और अग्निको ले जानेके लिये (आशून् अर्वतः पिपृतं) वेगवान् घोडोंको पुष्ट करो ॥ १२ ॥

[१३] (६३१) (उभा इन्द्राग्नी) दोनों इन्द्र और अग्नि हे। (वां आहुवध्यै) आप दोनोंको हम बुलाते हैं। (उभा) दोनों (राधसः सह मादयध्यै) धनिक धनसे साथ साथ प्रसन्न होते हैं। (इषां रयीणां उभा दातारा) अन्नों और धनोंके तुम दोनों दाता हो। (वाजस्य सातये) अन्नकी प्राप्तिके लिये (वां उभा हुवे) आप दोनोंको बुलाता हूं ॥ १३ ॥

११ यः सहुरी इन्द्राग्नी सपर्यात् (सः) वृत्र मघत् (६।६ ।१) — जो इनेरे इन्द्र और अग्निकी पूजा करता है वह शत्रुको मारता है ।

१० युवं अच्छेमिः उत्तमेभिः राधोभिः अस्मे भवतं (६।६ ।२) — तुम दोनों निर्दोष उत्तम धनोंके साथ हमारे पासपर रहो ।

११ इन्द्राग्नी न मर्धतः (६।६ ।४) — इन्द्र और अग्नि विरोधक बाधा नहीं करते ।

१२ उभा विघनिना (६।६ ।५) — वे समर्थ और शत्रुको मारनेवाले हैं ।

१३ ता नः ईदृशो मृळातः — हमें ऐसे समयमें सुखी करो ।

१४ आर्या सत्पती (६।६ ।६) — वे श्रेष्ठ और उत्तम पालक हैं ।

१५ हाथानि हत विश्वा द्विषः अप हत:— सब शत्रुओंको मारो ।

१६ शंभुवा (६।६ ।७) — कल्याण करनेवाले ।

१७ नरा (६।६ ।८) — नेता शूर पुरुष ।

१८ पुरुस्पृहः नियुतः दाशुषे मागतं (६।६ ।९) — अत्यंत प्रशंसित घोडियों के साथ तुम दाताके पास आओ ।

१९ यः अर्चिषा विश्वा वना परिष्वजन् जिह्वया कृष्णा करोति तं ईळिष्व (६।६ ।९) — जो ज्वालासे वनोंको जलाता है जिह्वासे सबको काला बनाता है उस अग्निकी स्तुति करो ।

२० इन्द्रं अग्निं च वोऽवसे आयुम् अर्वतः पिपृतं (६।६ ।१२) — इन्द्र और अग्निको रक्षणके लिये चपल घोडोंको पुष्ट करो ।

२१ इर्या रयीणां दातारा (६।६ ।१३) — धनों और धनोंको ये देनेवाले दो देव हैं ।

२२ गव्यैः अश्व्यैः वसव्यैः नः उप आगच्छतं (६।६ ।१४) — गौओं घोडों और धनोंके साथ हमारे पास आओ ।

इस तरह इन्द्र और अग्निके गुण हैं । दान गुण विशेष है । शत्रुनाश करनेका वीरताका गुण प्रबल है । इन वाक्योंको पाठक बारंबार पढें और इनके गुणोंको अपनावें ।

सरस्वती

(मं. ६ सू ६१)

१ इयमददाद् रभसमृणच्युतं दिवोदासं वध्र्यश्वाय दाशुषे ।
या शश्वन्तमाचखादावसं पणिं ता ते दात्राणि तविषा सरस्वति ॥ ६३४ ॥

[१] (६३४) (इयं) इस सरस्वतीने (दाशुषे वध्र्यश्वाय) दाता वध्र्यश्वके लिये (रभसं ऋणच्युतं दिवोदास) वेगवान, ऋण देनेवाला दिवोदास नामक पुत्र (अददात्) दिया । (या शश्वंतं अवसं पणिं) जिसने सदा कष्ट देनेवाले धनवान् कंजूसको (आ चखाद) खाया किया है सरस्वति ! (ता ते तविषा दात्राणि) वे तेरे बलशाली दान हैं ॥ १ ॥

वध्र्यश्वः (वध्रि+अश्वः)— जिसके घोडेके अण्डकोष निकाले हैं ।

रभसः— बलवान् साहसी

ऋण च्युतः— ऋण वापस करनेवाला ऋणमुक्त होने वाला मनुष्यको ऋण रखना नहीं चाहिये ।

अवसः— धनवान्, सुरक्षित धनिमान् ।

पणिः— कंजूस दान न देनेवाला अधार्मिक बनिया ।

१ रभसं ऋणच्युतं अददात्— साहसी वेगवान्, ऋण वापस करनेवाला पुत्र दिया । पुत्र ऐसा होना चाहिये ।

२ या शश्वंतं अवसं पणिं आ चखाद— जिसने बारंबार कष्ट देनेवाले सुरक्षित कंजूस अधार्मिक शत्रुको मारा नष्ट किया । जो शत्रु सदा कष्ट देता है, जो अत्यंत कंजूस है उसका उपद्रव दूर करना चाहिये ।

९ सा नो विश्वा अति द्विषः स्वसॄरन्या ऋतावरी । अतन्नहेव सूर्यः ॥ ६४२ ॥
१० उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा । सरस्वती स्तोम्या भूत् ॥ ६४३ ॥
११ आपप्रुषी पार्थिवान्युरु रजो अन्तरिक्षम् । सरस्वती निदस्पातु ॥ ६४४ ॥
१२ त्रिषधस्था सप्तधातुः पञ्च जाता वर्धयन्ती । वाजेवाजे हव्या भूत् ॥ ६४५ ॥
१३ प्र या महिम्ना महिनासु चेकिते द्युम्नेभिरन्या अपसामपस्तमा ।
रथ इव बृहती विभ्वने कृतोपस्तुत्या चिकितुषा सरस्वती ॥ ६४६ ॥
१४ सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यो माप स्फरीः पयसा मा न आ धक् ।
जुषस्व नः सख्या वेश्या च मा त्वत् क्षेत्राण्यरणानि गन्म ॥ ६४७ ॥

---

[९] (६४२) (सा नः विश्वा द्विषः अति) वह सरस्वती हमारे सब शत्रुओंको दूर करती है। वह (ऋतावरी) सत्य नियमवाली सरस्वती (अन्याः स्वसॄः) अन्य बहिनों-नदियोंके पार होती है (सूर्यः अहा अतन् इव) जैसा सूर्य दिनमें प्रकाश फैलाता है (वैसी यह सरस्वती ज्ञान फैलाये) ॥ ९ ॥

[१०] (६४३) (उत नः प्रियासु प्रिया) और हमारे लिये यह प्रियोंमें प्रिय है और (सुजुष्टा सप्त स्वसा[१]) उत्तम सेवने योग्य यह सात बहिनों-सात नदियोंमें है। (सरस्वती स्तोम्या भूत्) यह सरस्वती प्रशंसनीय हुई है ॥ १० ॥

[११] (६४४) (पार्थिवानि आपप्रुषी) पार्थिव वनोंको फैलानेवाली और (उरु रजः अन्तरिक्षं) विशाल अन्तरिक्षको जलसे भरनेवाली (सरस्वती निदः पातु) सरस्वती निन्दकोंसे हमारी सुरक्षा करे ॥ ११ ॥

[१२] (६४५) (त्रि षधस्था) तीन स्थानोंमें रहनेवाली (सप्त धातुः) सात धारक शक्तियोंसे युक्त (पञ्च जाता वर्धयन्ती) पांच जातिके मानवोंको बढानेवाली यह सरस्वती (वाजे वाजे हव्या भूत्) प्रत्येक युद्धमें प्रार्थना करने योग्य होती है अर्थात् कर्ममें प्रशंसनीय है ॥ १२ ॥

१ त्रि षधस्था— तीन प्रदेशोंमें बहती है।

२ सप्त धातुः — सात धातुओंको धारण करनेवाली। जिसके पासकी भूमिमें सात धातुएं मिलती हैं।

३ पञ्च जाता वर्धयन्ती— पांच प्रकारके मानवोंका पोषण करनेवाली।

[१३] (६४६) (या महिम्ना महिना) जो महत्वके योगसे और प्रभावसे तथा (द्युम्नेभिः) तेजोंसे (महिनासु प्र चेकिते) इन नदियोंमें श्रेष्ठ दीखती है, (अपसां अपस्तमा अन्याः) अन्य प्रवाहोंमें जिसका प्रवाह अधिक वेगवान् है। (रथः इव बृहती) रथके समान जो प्रशस्त है (विभ्वने कृता) जो व्यापक प्रभुने निर्माण की है वह (चिकितुषा सरस्वती उप स्तुत्या) ज्ञानयुक्त सरस्वती प्रशंसाके लिये योग्य है ॥ १३ ॥

[१४] (६४७) हे सरस्वती! (नः वस्यः अभिनेषि) हमें अभीष्ट धनके पास ले चल। (पयसा मा अप स्फरीः) अपने जलप्रवाहसे हमें कष्ट न पहुंचाओ। (नः मा आ धक्) हमें दूर न कर। (नः सख्या वेश्या च जुषस्व) हमारी सेवा और मित्रताका स्वीकार कर। (त्वत् क्षेत्राणि अरणानि मा गन्म) तुझे छोडकर दूसरे क्षेत्रोंमें हमें जाना न पडे ऐसा कर ॥ १४ ॥

अरण्यं क्षेत्रं— दूसरा खेत दूरका खेत।

सरस्वती नदीका वर्णन अति स्पष्ट है। वारंवार पाठक पढेंगे तो समझमें आ सकता है।

---

६ ता भुज्युं विभिरद्भ्यः समुद्रात् तुग्रस्य सूनुमूहथू रजोभिः ।
अरेणुभिर्योजनेभिर्भुजन्ता पतत्रिभिरर्णसो निरुपस्थात् ॥ ६५३ ॥

७ वि जयुषा रथ्या यातमद्रिं श्रुतं हवं वृषणा वध्रिमत्याः ।
दशस्यन्ता शयवे पिप्यथुर्गामिति च्यवाना सुमतिं भुरण्यू ॥ ६५४ ॥

८ यद् रोदसी प्रदिवो अस्ति भूमा हेळो देवानामुत मर्त्यत्रा ।
तदादित्या वसवो रुद्रियासो रक्षोयुजे तपुरघं दधात ॥ ६५५ ॥

९ य ईं राजानावृतुथा विदधद् रजसो मित्रो वरुणश्चिकेतत् ।
गम्भीराय रक्षसे हेतिमस्य द्रोघाय चिद् वचस आनवाय ॥ ६५६ ॥

१० अन्तरैश्चक्रैस्तनयाय वर्तिर्द्युमता यातं नृवता रथेन ।
सनुत्येन त्यजसा मर्त्यस्य वनुष्यतामपि शीर्षा ववृक्तम् ॥ ६५७ ॥

---

[६] (६५३) (तुग्रस्य पुत्रं भुज्युं) तुग्र नरेशके पुत्र भुज्युको (भुजन्ता ता) सुरक्षित रखनेवाले वे दोनों (समुद्रस्य अर्णसः) समुद्रके विशाल जलमेंसे (अद्भ्यः उपस्थात्) जलसमूहके समीपसे (अरेणुभिः रजोभिः) धूलिरहित स्थानोंसे (योजनेभिः) योजनापूर्वक (पतत्रिभिः विभिः) उड़नेवाले पक्षीतुल्य विमानोंसे (निः ऊहथुः) उत्तम रीतिसे ले गये ॥ ६ ॥

तुग्र नरेशका पुत्र भुज्यु देशान्तरमें युद्धके लिये गया था। वहां वह पराभूत हुआ। तब अश्विदेवोंने अपने पक्षी सदृश विमानोंसे उसे आकाशमार्गसे घर पहुंचाया। यह वर्णन इस मंत्रमें है।

१ अरेणुभिः रजोभिः पतत्रिभिः विभिः निः ऊहथुः— धूलिरहित मार्गोंसे—अन्तरिक्षके आकाश मार्गसे पक्षीवत विमानोंसे उसको घर तक पहुंचा दिया।

पतत्रिः विः— पक्षी जैसे विमान।

२ तुग्रस्य पुत्रं भुज्युं भुजन्ता समुद्रस्य अर्णसः अद्भ्यः उपस्थात्— तुग्रके पुत्र भुज्युको सुरक्षित रखनेके लिये समुद्रके अथाह जलके समीपसे ले गये।

[७] (६५४) हे (वृषणा रथ्या) बलवान् और रथमें बैठनेवाले अश्विदेवो! तुम (जयुषा) विजयी रथपरसे (अद्रिं वि यातं) पहाड़को भी लांघ कर जाते हो। (वध्रिमत्याः हवं श्रुतं) वध्रिमतीकी पुकारको तुमने सुना। (दशस्यन्ता) दान देनेवाले तुम दोनों! तुमने (शयवे गां पिप्यथुः) शयुके लिये गौको पुष्ट किया। (इति सुमतिं च्यवाना) इस रीतिसे उत्तम बुद्धि रखनेवाले तुम दोनों सबके (भुरण्यू) पोषणकर्ता होते हो ॥ ७ ॥

१ शयवे गां पिप्यथुः— शयुके लिये गौको पुष्ट करके दुधारू बनाया। जिसका दूध पीकर शयु पुष्ट हुआ।

[८] (६५५) (यत्) जो (देवानां उत मर्त्यत्रा) देवोंमें या मानवोंमें विद्यमान (प्रदिवः भूम हेळः अस्ति) अत्यन्त बड़ा भारी क्रोध है (तत् तपुः अघं) वह तापदायक पापरूपी दुःख, हे आदित्यो वसुओं और रुद्रों तथा प्राणापानो! (रक्षोयुजे दधात) राक्षसोंके लिये रखो ॥ ८ ॥

[९] (६५६) (यः ईं) जो इन (रजसः राजानौ) लोकोंके अधिपति अश्विदेवोंकी (ऋतुथा विदधत्) ऋतुके अनुसार सेवा करते हैं, उस कार्यको मित्र और वरुण (चिकेतत्) जानते हैं। और वे (अस्य हेतिं) इसके आयुध (द्रोघाय आनवाय वचसे चित्) द्रोह करनेवालेके ऊपर तथा अमर्यादासे चलनेवालेके ऊपर अथवा (गंभीराय रक्षसे) प्रबल राक्षसके घातके लिये उपयोगमें लाते हैं ॥ ९ ॥

[१०] (६५७) (अन्तरैः चक्रैः) दूरतक जानेवाले चक्रोंसे युक्त (द्युमता नृवता रथेन) तेजस्वी मानवी वीरोंको ले जानेवाले रथपर बैठकर (तनयाय) संतानको सुख देनेके लिये (वर्तिः आयातं) घर आ जाओ। (मर्त्यस्य वनुष्यतां) मानवोंको कष्ट देनेवालेके (शीर्षा) सिर (सनुत्येन त्यजसा) तिरस्करणीय क्रोधसे (अपि ववृक्तं) अलग कर डालो ॥ १० ॥

११ आ परमाभिरुत मध्यमाभि- र्नियुद्भिर्यातमवमाभिरर्वाक् ।
हळ्हस्य चिद् गोमतो वि व्रजस्य दुरो वर्तं गृणते चित्रराती ॥ ५५८ ॥

(मं. ६ सू. ६३)

१ क्व त्या वल्गू पुरुहूताद्य दूतो न स्तोमोऽविदन्नमस्वान् ।
आ यो अर्वाङ्नासत्या ववर्त प्रेष्ठा ह्यसथो अस्य मन्मन् ॥ ५५९ ॥

२ अरं मे गन्तं हवनायास्मै गृणाना यथा पिबाथो अन्धः ।
परि ह त्यद् वर्तिर्याथो रिषो न यत् परो नान्तरस्तुतुर्यात् ॥ ५६० ॥

३ अकारि वामन्धसो वरीमन्नस्तारि बर्हिः सुप्रायणतमम् ।
उत्तानहस्तो युवयुर्ववन्दा ऽऽवां नक्षन्तो अद्रय आञ्जन् ॥ ५६१ ॥

४ ऊर्ध्वो वामग्निरध्वरेष्वस्थात् प्र रातिरेति जूर्णिनी घृताची ।
प्र होता गूर्तमना उराणो ऽयुक्त यो नासत्या हवीमन् ॥ ५६२ ॥

५ अधि श्रिये दुहिता सूर्यस्य रथं तस्थौ पुरुभुजा शतोतिम् ।
प्र मायाभिर्मायिना भूतमत्र नरा नृतू जनिमन् यज्ञियानाम् ॥ ५६३ ॥

---

१ तनयाय वर्तिः आयातं— पुत्रको आरोग्यका सुख देनेके लिये रोगीके घर जाओ।

२ अस्मै चक्रैः द्युमता सुपत्सा रथेन— वेगसे चलनेवाले चक्रोंसे युक्त तेजस्वी रथसे रोगीके घर जाओ।

[११] (५५८) (परमाभिः मध्यमाभिः उत अवमाभि) श्रेष्ठ मध्यम और तीसरे दर्जेके (नियुद्भिः) घोड़ोंसे (अर्वाक् आयातं) हमारे समीप आओ। (गृणते चित्र राती) स्तोताको विलक्षण दान देनेवाले तुम दोनों अश्विनो (दृळ्हस्य चित् गोमतः व्रजस्य) सुदृढ गौओंसे भरे बाड़ेके (दुरः वितम्) द्वार खोल दो॥ ११॥

[१] (५५९) (त्या पुरुहूता वल्गू क्व) वे दोनों बहुतों द्वारा प्रशंसित सुन्दर अश्विदेव कहां हैं? (अद्य) आज (नमस्वान् स्तोमः) नमन युक्त स्तोत्र (दूतः न अविदत्) दूतके समान उनको प्राप्त हुआ है। (यः) जो स्तोत्र (नासत्या अर्वाक् आ ववर्त) अश्विदेवोंको हमारे समीप आकर्षित करता है। (अस्य मन्मन्) इस मननीय स्तोत्रमें तुम दोनों (प्रेष्ठा हि असथः) अत्यन्त प्रसन्न हो जाओ॥ १॥

[२] (५६०) (अस्मै मे) इस मेरे पास (हवनाय अरं गन्तं) बुलानेपर तुम दोनों आओ। (यथा गृणाना) जैसी-जैसी तुम्हारी स्तुति होती वैसा-वैसा (अन्धः पिबाथः) सोमरस पीओ। (त्यद् वर्तिः ह) उस घरको (रिषः परि याथः) हिंसक शत्रुसे बचाते रहो। (यत् न परः) जिस घरको न कोई दूसरा शत्रु (न अन्तरः) या न कोई समीपका शत्रु (तुतुर्यात्) नाश कर सके ऐसा प्रबंध करो॥ २॥

[३] (५६१) (वां अन्धसः वरीमन् अकारि) आपके लिये सोमरसको निचोड कर उत्तम स्थानमें रखा है। (सुप्रायणतमं बर्हिः) अत्यंत सुखदायक आसन तुम्हारे लिये (अस्तारि) फैला कर रखा है। (युवयुः उत्तानहस्तः ववन्द) तुम दोनोंको चाहनेवाला हाथ ऊपर उठा कर नमन कर रहा है। (अद्रयः वां नक्षन्तः) सोम कूटनेके पत्थर तुम्हारी इच्छा करते हुए (आञ्जन्) रसको निकाल चुके हैं॥ ३॥

[४] (५६२) (अध्वरेषु वां) यज्ञोंमें अग्नि तुम दोनोंके लिये (ऊर्ध्वः अस्थात्) ऊपरकी ओर जल रहा है। (जूर्णिनी घृताची रातिः) गमनशील घीसे भरी कड़छी (प्र एति) आगे बढ रही है। (यः हवीमन् नासत्या अयुक्त) जो हवनकर्ता मानव अश्विदेवोंके लिये हवि अर्पण करता है वह (प्र होता) दानी (गूर्तमनाः) मन लगा कर कार्य करनेवाला (उराणः) विशेष कार्य करनेवाला होता है॥ ४॥

[५] (५६३) हे (पुरुभुजा) बहुत भुजाओंवाले अश्विदेवो! (शतोतिं रथं) सैकड़ों संरक्षणोंसे युक्त रथपर (सूर्यस्य दुहिता) सूर्यकी पुत्री उषा (श्रिये अधि तस्थौ) शोभाके लिये चढ बैठी है। (अत्र यज्ञियानां जनिमन्) यहां पूजनी-

६ युवं श्रीभिर्दर्शताभिराभिः शुभे पुष्टिमूहथुः सूर्यायाः ।
प्र वां वयो वपुषेऽनु पप्तन् नक्षद् वाणी सुष्टुता धिष्ण्या वाम् ॥ ६६४ ॥

७ आ वां वयोऽश्वासो वहिष्ठा अभि प्रयो नासत्या वहन्तु ।
प्र वां रथो मनोजवा असर्जीषः पृक्ष इषिधो अनु पूर्वीः ॥ ६६५ ॥

८ पुरु हि वां पुरुभुजा देष्णं धेनुं न इषं पिन्वतमसक्राम् ।
स्तुतश्च वां माध्वी सुष्टुतिश्च रसाश्च ये वामनु रातिमग्मन् ॥ ६६६ ॥

९ उत म ऋज्रे पुरयस्य रघ्वी सुमीळ्हे शतं पेरुके च पक्वा ।
शाण्डो दाद्धिरणिनः स्मद्दिष्टीन् दश वशासो अभिषाच ऋष्वान् ॥ ६६७ ॥

१० सं वां शता नासत्या सहस्रा ऽश्वानां पुरुपन्था गिरे दात् ।
भरद्वाजाय वीर नू गिरे दाद्धता रक्षांसि पुरुदंससा स्युः ॥ ६६८ ॥

११ आ वां सुम्ने वरिमन्त्सूरिभिः ष्याम् ॥ ६६९ ॥

जैसे सबके समयपर भागेरस (भृष) नृत्य करनेवाले (मदा माभिना) नेता कुशल अश्विदेव (मायाभिः प्रभूर्त) अपनी अद्भुत शक्तियोंसे असाधिक प्रभावशाली बने हैं ॥ ५ ॥

[६] (६६४) हे (धिष्ण्या) बुद्धिमान् अश्विदेवों! (युवं आभिः दर्शताभिः श्रीभिः) तुम दोनों इन सुन्दर शोभाओंके साथ (सूर्यायाः शुभे) सूर्य पुत्री उषाके कल्याणके लिये (पुष्टिं ऊहथुः) पुष्टिकारक अन्न अपने साथ रखकर रखते हो। तथा (वां वपुषे) तुम्हारे शरीरकी पुष्टिके लिये (अनु वयः प्र पप्तन्) अनुकूल अन्न तुम्हें प्राप्त होता है। और (सुष्टुता वाणी) अच्छी स्तुतिकी वाणी (वां नक्षत्) तुम्हें प्राप्त होती है ॥ ६ ॥

[७] (६६५) हे (नासत्या) अश्विदेवों! (वहिष्ठाः वयः अश्वासः) ढोनेवाले गतिशील घोड़े (प्रयः वां अभि वहन्तु) अन्नके पास तुम्हें ले जावें। (वां मनोजवाः रथः) आपका मनोवेगका रथ (पूर्वीः पृक्षः) बहुतसी पुष्टि कारक (इषिधः इषः अनु प्र असर्जि) अन्न सामग्रियोंको लेकर रखता है ॥ ७ ॥

[८] (६६६) हे (पुरु भुजा) बड़ी भुजावालों! (वां देष्णं पुरु हि) आपका दान बहुत होता है। (नः धेनुं) हमारे लिये तुमने गाय दी है। (असक्रां इषं पिन्वतं) दूसरोंके पास न जानेवाली अन्नसामग्री तुमने दी है। (वां स्तुतः च माध्वी सुष्टुतिः च रसाः च) तुम दोनोंकी अच्छी स्तुति और मीठे सोमरस तैयार रखे हैं (ये वां रातिं अनु अग्मन्) जो तुम्हारे दानके अनुकूल रहते हैं ॥ ८ ॥

[९] (६६७) (उत पुरयस्य रघ्वी ऋज्रे) और पुरयकी शीघ्रगामी गाड़ियाँ (सुमीळ्हे शतं) सुमीळ्ह करनेवाले सौ गौवें (पेरुके च पक्वा) पेरुकके पके अन्न (हिरणिनः स्मद्दिष्टीन्) सुवर्ण भूषण धारण करनेवाले सुन्दर रूपवाले दर्श-नीय (अभिषाचः दश वशासः) शत्रुके पराभवकर्ता दस घोड़ोंको (शाण्डः मे दात्) शाण्डने मुझे दिया है ॥ ९ ॥

[१०] (६६८) हे (नासत्या) सत्यपालक अश्विदेवों! (वां गिरे) तुम्हारे स्तोता (पुरुपन्थाः) पुरुपन्था ओघने (अश्वानां शता सहस्रा) सैकड़ों हजारों घोड़े (सं दात्) दिये। हे (पुरु दंससा) बहुत कर्म करनेवाले अश्विदेवों! (भरद्वाजाय गिरे) भरद्वाजकी स्तुति करनेपर (नु दात्) यह दान दिया। अब (रक्षांसि हताः स्युः) राक्षस मारे गये हैं ॥ १० ॥

[११] (६६९) (वां वरिमन् सुम्ने) तुम दोनोंके दिये श्रेष्ठ सुखमें (सूरिभिः आ स्याम्) विद्वानोंके साथ मैं रहूँ ॥ ११ ॥

३ रुद्रस्य ये मीळ्हुषः सन्ति पुत्रा यांश्चो नु दाधृविर्भरध्यै ।
विदे हि माता महो मही षा सेत् पृश्निः सुभ्वे३ गर्भमाधात् ॥ ६८४ ॥

४ न य ईषन्ते जनुषोऽया न्व१न्तः सन्तोऽवद्यानि पुनानाः ।
निर्यद् दुह्रे शुचयोऽनु जोषमनु श्रिया तन्वमुक्षमाणाः ॥ ६८५ ॥

५ मक्षू न येषु दोहसे चिदया आ नाम धृष्णु मारुतं दधानाः ।
न ये स्तौना अयासो मह्ना नू चित् सुदानुरव यासदुग्रान् ॥ ६८६ ॥

६ त इदुग्राः शवसा धृष्णुषेणा उभे युजन्त रोदसी सुमेके ।
अध स्मैषु रोदसी स्वशोचिरामवत्सु तस्थौ न रोकः ॥ ६८७ ॥

७ अनेनो वो मरुतो यामो अस्त्वनश्वश्चिद् यमजत्यरथीः ।
अनवसो अनभीशू रजस्तूर्वि रोदसी पथ्या याति साधन् ॥ ६८८ ॥

मरुतोंके रथोंपर जानेका चमत्कार मार्ग होता है वह चमकता रहता है और वह वृष्टिके तथा पराक्रमोंके कार्योंके लिये सिद्ध रहता है।

[३] (६८४) (ये मीळ्हुषः रुद्रस्य पुत्राः सन्ति) ये जो सेचन करनेवाले रुद्रके पुत्र हैं (यान् दाधृविः चो नु भरध्यै) उनका धारण करनेवाली पृथिवी इन मरुतोंका भरण पोषण करनेके लिये ही है। (महः हि) बडे वीरोंकी (माता मही विदे) माता होनेके कारण ही बडी करके पृथिवी कही जाती है। (सा पृश्निः) वह पृथिवी माता ही (सुभ्वे इत्) उत्तम सन्तान करनेकी इच्छासे (गर्भं आधात्) गर्भ धारण करती है॥ ३॥

ये मरुत वीर रुद्रके पुत्र हैं। पृथिवी इनका पोषण करती है। इसलिये पृथिवीको बडी माता कहते हैं। वही पृथिवी उत्तम सन्तान-पोषण करनेके लिये धान्यरूपी गर्भका धारण करती है।

[४] (६८५) (अन्तः सन्तः) अन्दर रहकर (अवद्यानि पुनानाः) दोषोंको पवित्र करते हुए (ये नु) जो वीर (जनुषः न ईषन्ते) अपनी जनतासे दूर नहीं जाते हैं तथा (यत् श्रिया तन्वं अनु) जो अपनी शोभासे शरीरको अनुकूलतासे (उक्षमाणाः) बलवान् करते हैं, ये (शुचयः) पवित्र वीर मरुत (जोषं अनु निः दुह्रे) इच्छाके अनुकूल दान देते हैं॥ ४॥

ये वीर जनतामें ही रहते हैं दोषोंको दूर हटाते और पवित्र वातावरण पैदा करते हैं। ये कभी जनताका परित्याग नहीं करते अपने आपको दूर नहीं करते और अपना तेज बढाकर अनुकूलतापूर्वक दान देते रहते हैं।

[५] (६८६) (येषु) जो वीर (धृष्णु मारुतं नाम) शत्रुसेनाका धर्षण करनेवाला मरुतोंका नाम (आ दधानाः) धारण करते हैं, और जो (दोहसे चित्) जनताके पोषणके लिये (मक्षु अयाः) तत्काल ही जाते हैं। ये (सुदानुः) उत्तम दानी वीर (न ये अयासः स्तौनाः) जो भटकनेवाले चोरोंके समान हैं और (उग्रान् नू चित्) भीषण शत्रुओंको भी (अव यासत्) परास्त करते हैं॥ ५॥

जिन्होंने शूरोंका नाम मरुत् धारण किया है जो जनताका पोषण करनेका यत्न करते हैं वे शूर प्रबल शत्रुओंको भी परास्त करते हैं।

[६] (६८७) (ते शवसा उग्राः) वे अपने बलसे गम्भीर हैं, और (धृष्णु-सेनाः) साहसी सेनावाले वीर हैं (सुमेके उभे रोदसी युजन्त इत्) वे सुन्दर और भूलोक और द्युलोकमें सुसज्ज बने रहते हैं। (अध स्म) और (अमवत्सु एषु) इन बलवान् वीरोंके तैयार रहने पर (रोदसी स्वशोचिः) भूमि और आकाश अपने तेजसे युक्त होते हैं, पश्चात् (रोकः न आ तस्थौ) इनके सामने प्रतिबंध खडा नहीं होता है॥ ६॥

इन वीरोंकी साहसी सेना सदैव तैयार रहती है इस कारण इनके मार्गमें कोई रुकावट बाकी नहीं रहती। इस कारण ये वीर अपना कर्तव्य पूर्ण करते हैं।

[७] (६८८) हे (मरुतः) मरुत् वीरो! (वः यामः अनेनः अस्तु) आपका रथ दोषरहित रहे। (अन-

उषा देवता

(मं १ सू ९४)

१ उदु श्रिय उषसो रोचमाना अस्थुरपां नोर्मयो रुशन्तः ।
कृणोति विश्वा सुपथा सुगा- न्यभूदु वस्वी दक्षिणा मघोनी ॥ ६७० ॥

२ भद्रा ददृक्ष उर्विया वि भा- स्युत् ते शोचिर्भानवो द्यामपप्तन् ।
आविर्वक्षः कृणुषे शुम्भमानो- षो देवि रोचमाना महोभिः ॥ ६७१ ॥

३ वहन्ति सीमरुणासो रुशन्तो गावः सुभगामुर्विया प्रथानाम् ।
अपेजते शूरो अस्तेव शत्रून् बाधते तमो अजिरो न वोळ्हा ॥ ६७२ ॥

४ सुगोत ते सुपथा पर्वते- ष्ववाते अपस्तरसि स्वभानो ।
सा न आ वह पृथुयामन्नृष्वे रयिं दिवो दुहितरिषयध्यै ॥ ६७३ ॥

---

[१] (६७०) (रोचमानाः रुशन्तः उषसः) तेजसे चमकनेवाली उषाएं (श्रिये) शोभा बढानेके लिये (अपां ऊर्मयः न) पानीकी लहरियोंके समान (उत् अस्थुः) ऊपर आ रही हैं। ये उषाएं (विश्वा सुपथा) सब सुन्दर मार्गोंको (सुगानि कृणोति) सुगम करती हैं। वह (मघोनी वस्वी दक्षिणा) ऐश्वर्यवाली उषा धन देनेवाली और अपने कर्ममें दक्ष रहती है ॥ १ ॥

[२] (६७१) हे (उषः) उषा! तू (भद्रा ददृक्षे) कल्याण करनेवाली दीखती है। तू (उर्विया विभासि) विशेष रूपसे प्रकाशित होती है। हे (उषः देवि) दिव्य उषा! (महोभिः रोचमाना) तू किरणोंसे चमकती हुई (शुम्भमाना) शोभनेवाली (वक्षः आविः कृणुषे) अपनी छाती खुली करती है ॥ २ ॥

१ भद्रा ददृक्षे— उषा कल्याण करती है प्रकाशसे कल्याण होता है।

२ हे उषः देवि! महोभिः रोचमाना शुम्भमाना वक्षः आविः कृणुषे— हे उषा देवी! तू अपने तेजसे सुशोभित होकर अपनी छाती बताती है। तरुण स्त्री इस तरह अपने तारुण्यके मदसे ऐसा करती है।

[३] (६७२) (अरुणासः रुशन्तः गावः) लाल रंग-वाली तेजस्वी किरणें (सुभगां उर्विया प्रथानां सीं) उत्तम भाग्य वाली विशेष प्रशंसनीय ऐसी इस उषाको (वहन्ति) उठाती हैं। (अस्ता शूरः इव) जैसे बाण मारनेवाला शूर पुरुष सामने आए हुए (शत्रून् अप ईजते) शत्रुओंको दूर करता है। (अजिरः वोळ्हा न) शीघ्रगामी घुड़सवार जैसा शत्रुको दूर करता है वैसी यह उषा (तमः बाधते) अन्धकारको दूर भगाती है ॥ ३ ॥

१ अस्ता शूरः इव शत्रून् अप ईजते— बाण मारने वाला शूर जैसा शत्रुको दूर भगाता है। (वैसे तुम अपने शत्रुको भगाओ)।

१ अजिरः वोळ्हा न तमः बाधते— शीघ्रगामी घुड़सवार जैसा शत्रुको दूर भगाता है वैसी यह उषा अन्धकारको दूर करती है। वैसा तुम प्रकाशसे अज्ञानको दूर करो।

[४] (६७३) हे उषा! (पर्वतेषु अवाते) पर्वतोंमें अथवा मार्गरहित प्रदेशमें (ते सुपथा सुगा) तेरे लिये उत्तम मार्ग अतीव सुगम होते हैं। हे (स्व-भानो) स्वयं प्रकाशी उषा! तू (अपः तरसि) अन्तरिक्षमें संचार करती है। हे (पृथुयामन् ऋष्वे) बडे रथमें बैठनेवाली सुन्दर (दिवः दुहितः) स्वर्गकन्ये उषा! (सा नः) वह तू हमें (इषयध्यै) अन्नप्राप्त करनेके लिये (आ वह) ले आ ॥ ४ ॥

५ सा वह योक्षभिरवातो- पो वरं वहसि जोषमनु ।
त्वं दिवो दुहितर्या ह देवी पूर्वहूतौ मंहना दर्शता भूः ॥ ६७४ ॥

६ उत् ते वयश्चिद् वसतेरपप्तन् नरश्च ये पितुभाजो व्युष्टौ ।
अमा सते वहसि भूरि वाम- मुषो देवि दाशुषे मर्त्याय ॥ ६७५ ॥

(मं ६ सू. ६५)

१ एषा स्या नो दुहिता दिवोजाः क्षितीरुच्छन्ती मानुषीरजीगः ।
या भानुना रुशता राम्या- स्वज्ञायि तिरस्तमसश्चिदक्तून् ॥ ६७६ ॥

२ वि तद् ययुररुणयुग्भिरश्वै- श्चित्रं भान्त्युषसश्चन्द्ररथाः ।
अग्रं यज्ञस्य बृहतो नयन्ती- र्वि ता बाधन्ते तम ऊर्म्यायाः ॥ ६७७ ॥

३ श्रवो वाजमिषमूर्जं वहन्ती- र्नि दाशुष उषसो मर्त्याय ।
मघोनीर्वीरवत् पत्यमाना अवो धात विधते रत्नमद्य ॥ ६७८ ॥

---

[५] (६७४) हे (उषः) उषा! (सा वरं आ वह) वह तू श्रेष्ठ धन मेरे पास ले आ। (या अवाता जोषं अनु) जो तू अप्रतिहत गतिवाली अपनी इच्छानुसार (उक्षभिः वरं वहसि) बैलों द्वारा श्रेष्ठ धन ढोती है। हे (दिवः दुहितः) स्वर्गकी उषा! (या त्वं देवी) जो तू देवी (पूर्वहूतौ मंहना दर्शता भूः) प्रथम हवनके समय दर्शनीय और पूजनीय होती है ॥ ५ ॥

[६] (६७५) हे उषा! (ते व्युष्टौ) तेरे प्रकाशित होनेपर (ये पितुभाजः नरः) जो अन्नसेवन करनेवाले नेता हैं, वे तथा (वयः चित्) पक्षी भी (वसतेः अपप्तन्) अपने घरोंके स्थानोंसे बाहर पड़ते हैं। हे (उषः देवि) उषा देवी! १ (अमा सते दाशुषे मर्त्याय) घरमें रहनेवाले दाता मनुष्यके लिये (भूरि वामं वहसि) बहुत धन लाकर देती है ॥ ६ ॥

१ दाशुषे मर्ताय भूरि वामं वहासि—दाता मानवके लिये बहुत धन लाकर देती है।

१ ते व्युष्टौ पितुभाजः नरः वयः चित् वसतेः अपप्तन्— तेरे उदित होनेपर अन्न चाहनेवाले मनुष्य और पक्षी, अपने घरोंके स्थानसे बाहर जाते हैं।

[१] (६७६) (एषा स्या दिवोजाः दुहिता) यह वह स्वर्गमें जन्मी दिव्य कन्या उषा (नः उच्छन्तीः) हमारे लिए अन्धकार दूर करती हुई (मानुषीः क्षितीः अजीगः) मानवी प्रजाओंको जगाती है। (या रुशता भानुना) जो तेजस्वी प्रकाशसे युक्त होकर (राम्यासु अक्तून्) रात्रियोंके अन्दरके (तमसः चित् तिरः) अन्धकारको दूर करती है ऐसा (अज्ञायि) दीखता है ॥ १ ॥

[२] (६७७) (चन्द्ररथाः) चन्द्रमाके समान शोभनेवाले रथमें बैठनेवाली और (तत् बृहतः यज्ञस्य अग्रं नयन्ती) उस विशाल यज्ञके समीप पहुंचानेवाली (उषसः) उषाएं (अरुणयुग्भिः अश्वैः) अरुण रंगवाले घोडोंसे (वि ययुः) विशेष वेगसे जा रही हैं। वे (चित्रं भान्ति) विलक्षण तेजसे प्रकाशित हो रही हैं। (ताः ऊर्म्यायाः तमः वि बाधन्ते) वे रात्रिके अन्धकारको दूर करती हैं ॥ २ ॥

[३] (६७८) हे (उषसः) उषाओं! (दाशुषे मर्त्याय) दाता मनुष्यके लिये (श्रवः वाजं इषं ऊर्जं वहन्तीः) कीर्ति, बल, अन्न और रसको ले आनेवाली तुम (मघोनीः पत्यमानाः) धनवाली तथा जानेवाली उषाएं (विधते) सेवा करनेवाले मेरे लिये (वीरवत् रत्नं अवः) वीर पुत्रोंसे युक्त रत्न और अन्न (अद्य नि धात) आज ही दे दो ॥ ३ ॥

४ इदा हि वो विधते रत्नमस्ती—दा वीराय दाशुष उषासः ।
इदा विप्राय जरते यदुक्था नि ष्म मावते वहथा पुरा चित् ॥ ९७९ ॥

५ इदा हि त उषो अद्रिसानो गोत्रा गवामङ्गिरसो गृणन्ति ।
व्य१र्केण बिभिदुर्ब्रह्मणा च सत्या नृणामभवद् देवहूतिः ॥ ९८० ॥

६ उच्छा दिवो दुहितः प्रत्नवन्नो भरद्वाजवद् विधते मघोनि ।
सुवीरं रयिं गृणते रिरीह्यु—रुगायमधि धेहि श्रवो नः ॥ ९८१ ॥

[४] (९७९) हे (उषासः) उषाओ! (इदा हि वः विधते) इस समय तुम्हारी सेवा करनेवालेको देनेके लिये तुम्हारे पास (रत्न अस्ति) रत्न है। (इदा वीराय दाशुषे) इस समय वीरको देनेके लिये धन भी है। अतः (यत् उक्था) स्तोत्र गानेवाले (मावते पुरा चित्) मेरे जैसेके लिये जैसे पूर्व समयमें दिये थे वैसे धन इस समय भी (नि वहथ स्म) दे दो ॥ ४ ॥

[५] (९८०) हे (अद्रिसानो उषः) पर्वतपर चमकने वाली उषा! (ते इदा हि) तेरी कृपासे इसी समय (अंगिरसः) अंगिरस गोत्री (गवां गोत्रा) गौओंके झुंडोंको (गृणन्ति) प्राप्त करते हैं, (अर्केण ब्रह्मणा बिभिदुः) पूर्वीकिरणोंके साथ गाये स्तोत्रसे अन्धकारोंका नाश हो रहा है। (नृणां देवहूतिः सत्या अभवत्) मनुष्योंकी देव प्रार्थना अब सत्य हो चुकी है ॥ ५ ॥

[६] (९८१) हे (दिवः दुहितः) आकाशकी कन्ये! (प्रत्नवत् नः उच्छ) पूर्व समयके समान इस समय हमारे लिये अन्धकार दूर कर। हे (मघोनि) धनवाली उषा! (भरद्वाजवत् विधते गृणते) भरद्वाजके समान सेवा करनेवाले और स्तुति करनेवाले मुझे (सुवीरं रयिं रिरीहि) सुपुत्रयुक्त धन दे तथा (नः) हमारे लिये (उरुगायं श्रवः अधि धेहि) बहुतों द्वारा प्रशंसनीय अन्नका दान दे दो ॥ ६ ॥

मरुत् देवता

(मं ६ सू ६६)

१ वपुर्नु तच्चिकितुषे चिदस्तु समानं नाम धेनु पत्यमानम् ।
मर्तेष्वन्यद् दोहसे पीपाय सकृच्छुक्रं दुदुहे पृश्निरूधः ॥ ९८२ ॥

२ ये अग्नयो न शोशुचन्निधाना द्विर्यत् त्रिर्मरुतो वावृधन्त ।
अरेणवो हिरण्ययास एषां साकं नृम्णैः पौंस्येभिश्च भूवन् ॥ ९८३ ॥

[१] (९८२) (तत्) वह (धेनु समानं नाम) धेनु करके एक ही नाम (पत्यमानं वपुः) धारण करनेवाला शरीर (नु चित्) सचमुच (चिकितुषे) ज्ञानी मनुष्यके लिये परिचित (अस्तु) है। (अन्यत्) उनमेंसे एक (मर्तेषु दोहसे पीपाय) मानवोंमें दूधका दोहन करनेके लिये पुष्ट हो रहा है। (शुक्रं अन्यत्) तेजस्वी दूसरा रूप (पृश्निः) अन्तरिक्षमें मेघरूपी (ऊधः दुदुहे) दुग्धाशयसे दुहा जाता है ॥ १ ॥

धेनु नामक दो माताएं हैं। एक धेनु गौमाता मानवोंके पोषणके लिये दूध देती है और दूसरी अन्तरिक्षमें मेघरूपी जलकी वृष्टि करके सबको तृप्त करती है।

[२] (९८३) (ये मरुतः इधानाः) जो मरुत् (इधानाः) प्रदीप्त होकर (अग्नयः न शोशुचन्) अग्निके समान प्रकाशते हैं, (यत् द्विः त्रिः) और जो द्विगुणित या त्रिगुणित बलिष्ठ होकर (वावृधन्त) बढते हैं (एषां अरेणवः हिरण्ययासः) इनके धूलरहित और सुवर्णके चमकनेवाले रथ (नृम्णैः पौंस्यैः च साकं) बुद्धियों और बलोंसे युक्त (भूवन्) होते हैं ॥ २ ॥

८ नास्य वर्ता न तरुता न्वस्ति मरुतो यमवथ वाजसातौ ।
तोके वा गोषु तनये यमप्सु स व्रजं दर्ता पार्ये अध द्योः ॥ ९८९ ॥

९ प्र चित्रमर्कं गृणते तुराय मारुताय स्वतवसे भरध्वम् ।
ये सहांसि सहसा सहन्ते रेजते अग्ने पृथिवी मखेभ्यः ॥ ९९० ॥

१० त्विषीमन्तो अध्वरस्येव दिद्युत् तृषुच्यवसो जुह्वो३ नाग्नेः ।
अर्चत्रयो धुनयो न वीरा भ्राजज्जन्मानो मरुतो अधृष्टाः ॥ ९९१ ॥

११ तं वृधन्तं मारुतं भ्राजदृष्टिं रुद्रस्य सूनुं हवसा विवासे ।
दिवः शर्धाय शुचयो मनीषा गिरयो नाप उग्रा अस्पृध्रन् ॥ ९९२ ॥

अश्वः) उसको घोडे जोते नहीं जाते (अरथीः) रथपर न बैठनेवाला भी (यं अजति) जिसको चलाता है। (अन्-अवसः) जिसपर रक्षाका कोई साधन नहीं है, (अन्-अभीशुः) जिसको लगाम नहीं है (रजस्तूः) धूली उडाता हुआ (साधन् रोदसी) इच्छा पूर्ण करता हुआ आकाश और पृथिवीके मध्यमेंसे (पथ्या तियाति) मार्गसे जाता है ॥ ७ ॥

मरुतोंका रथ दोषरहित है उसको घोडे नहीं जोते जाते रथपर न बैठनेवाला भी उसको चलाता है, लगाम नहीं और सुरक्षित रखनेका कोई साधन भी नहीं है। जब वह रथ चलता है तब धूली उडाता है और वेगसे मार्गपरसे जाता है।

[८] (९८९) हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (वाजसातौ यं अवथ) युद्धमें जिसकी तुम सुरक्षा करते हो (अस्य वर्ता न) उसको घेरनेवाला कोई नहीं रहता। तथा उसका (तरुता नु न अस्ति) विनाशक भी कोई नहीं होता। (अध) और (तोके तनये गोषु अप्सु) बालबच्चोंमें गौवोंमें और जलोंमें (यं) जिसकी तुम सुरक्षा करते हो, (सः पार्ये द्योः) वह युद्धमें गुफामें (व्रजं दर्ता) गोशालाका भी विदारण करता है ॥ ८ ॥

ये वीर जिसका संरक्षण करते हैं उसका नाश कोई नहीं कर सकता। पुत्र-पौत्रों गौवोंमें रहनेवालोंका संरक्षण जब ये वीर करते हैं तब वे सब शत्रुओंका नाश करते हैं अतः वे लोग सदा सुरक्षित रहते हैं।

[९] (९९०) हे अग्ने ! (ये सहसा सहांसि सहन्ते) जो अपने बलसे शत्रुके आक्रमणोंको परास्त करते हैं तब (मखेभ्यः पृथिवी रेजते) इन वीरोंसे इनपरकी भूमि कांपती है ऐसे (गृणते तुराय स्वतवसे) स्तुत्य, त्वराशील और बलवान (मारुताय) वीर मरुतोंके संघके लिये (चित्रं अर्कं प्र भरध्वं) आश्चर्यकारक स्तोत्र गाओ ॥ ९ ॥

इन वीरोंके संघका जिस समय आक्रमण होता है तब सब पृथिवी कंपित होती है। इन वीरोंके संघकी स्तुति करो और उनको स्तुतियोंसे संतुष्ट करो।

[१०] (९९१) वे (मरुतः) मरुत् वीर (अध्वरस्य इव) हिंसारहित कर्म करनेवाले (त्विषि-मन्तः) तेजस्वी (तृषु च्यवसः) वेगसे चलनेवाले (अग्नेः जुह्वः न) अग्निकी ज्वालाओंके समान (दिद्युत् अर्चत्रयः) तेजस्वी और पूजनीय (वीराः न) वीरोंके समान (धुनयः) शत्रुको हिलानेवाले (भ्राजत्-जन्मानः) तेजस्वी जीवनवाले (अ धृष्टाः) पराभूत न होनेवाले हैं ॥ १० ॥

वे वीर तेजस्वी शत्रुपर वेगसे धावा करनेवाले शत्रुदलको हरानेवाले हैं अतः इनका कभी पराभव नहीं होता है।

[११] (९९२) (तं वृधन्तं) बढ़ानेवाले तथा (भ्राजत्-ऋष्टि) तेजस्वी भाले धारण करनेवाले (रुद्रस्य सूनुं मारुतं) रुद्रके पुत्र मरुतोंके संघकी (आ विवासे) मैं प्रशंसा करता हूं। वैसी तरह (दिवः शर्धाय) दिव्य शक्तिकी प्राप्तिके लिये (उग्राः शुचयः मनीषाः) उग्र पवित्र इच्छायें (गिरयः आपः न) पर्वतसे बहनेवाली जल धाराओंके समान (अस्पृध्रन्) स्पर्धा करती हैं ॥ ११ ॥

मैं इन शस्त्रास्त्र धारण करनेवाले वीरोंके संघका स्तवन करता हूं। हम अपनी आकांक्षाओंको इनके समीप सदा रखते हैं। ताकि हमें दिव्य बल प्राप्त हो जाय और अधिकाधिक बल हमारा बढता जाय।

मित्रा-वरुणौ देवते

(मं ६ सू. ६७)

१ विश्वेषां वः सतां ज्येष्ठतमा गीर्भिर्मित्रावरुणा वावृधध्यै ।
सं या रश्मेव यमतुर्यमिष्ठा द्वा जनाँ असमा बाहुभिः स्वैः ॥ ६९३ ॥

२ इयं मद् वां प्र स्तृणीते मनीषोप प्रिया नमसा बर्हिरच्छ ।
यन्तं नो मित्रावरुणावधृष्टं छर्दिर्यद् वां वरूथ्यं सुदानू ॥ ६९४ ॥

३ आ यातं मित्रावरुणा सुशस्त्युप प्रिया नमसा हूयमाना ।
सं यावप्नःस्थो अपसेव जनाञ्छ्रुधीयतश्चिद् यतथो महित्वा ॥ ६९५ ॥

४ अश्वा न या वाजिना पूतबन्धू ऋता यद् गर्भमदितिर्भरध्यै ।
प्र या महि महान्ता जायमाना घोरा मर्ताय रिपवे नि दीधः ॥ ६९६ ॥

---

[१] (६९३) (विश्वेषां वः सतां) आपके सब श्रेष्ठोंमें (ज्येष्ठतमा मित्रावरुणा) अतिश्रेष्ठ मित्र और वरुण हैं, (गीर्भिः वावृधध्यै) उनको स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं। (या यमिष्ठा द्वा) जो नियमन करनेवाले ये दो देव (रश्मा इव) रस्सियोंसे घोडे रखनेके समान (स्वैः बाहुभिः) अपने बाहुओंसे (असमा) अद्वितीय रीतिसे (जनान् सं यमतुः) लोगोंको अपने नियममें रखते हैं ॥ १ ॥

१ विश्वेषां सतां श्रेष्ठतमा मित्रावरुणा— सब श्रेष्ठोंमें अतिश्रेष्ठ मित्र और वरुण हैं।

२ या यमिष्ठा द्वा स्वैः बाहुभिः असमा जनान् संयमतुः— जो सबको नियममें रखनेवाले दो देव अपने बाहुओंसे अद्वितीय रीतिसे सब लोगोंको अपने अधीन रखते हैं।

[२] (६९४) हे मित्र और वरुण ! (इयं मनीषा) यह स्तुति (मद् वां प्र स्तृणीते) मुझसे चलकर आपके पास पहुंचती है। (बर्हिः) तुम्हारे लिये आसन फैलाकर (नमसा उप प्रिया) नमस्कार करके आप जो प्रिय हैं उनके पास यह (अच्छ) सीधी जाती है। (नः धृष्टं छर्दिः आ यन्तं) हमें सुरक्षित कर दो। हे (सुदानू) उत्तम दान देनेवालो ! (यद् वां वरूथ्यं) जो आपका आश्रयस्थान है ॥ २ ॥

१ मनःपूर्वक तुम्हारी भक्ति करता हूं उसको तुम सुनो। तुम्हारे लिये यह आसन फैलाया है आपको हम प्रणाम करते हैं। आप हमें उत्तम सुरक्षित घर दें जो आपका आश्रय हो।

•

[३] (६९५) हे मित्र और वरुणो ! (आ यात) आओ। (नमसा उप हूयमाना) प्रणाम करके आपको हम समीप बुलाते हैं। (सुशस्ति प्रिया) आप प्रिय हैं इसलिये आपकी हम स्तुति करते हैं। (यौ अप्नःस्थः) आप दोनों सत्कर्ममें प्रवृत्त हैं। (अपसा श्रुधीयतः जनान् इव) कर्मसे समृद्धिकी इच्छा करनेवाले लोगोंको जिस तरह कर्ममें प्रवृत्त करते हैं उस तरह (महित्वा चित् सं यततः) अपने महत्त्वसे आप लोगोंको प्रयत्नशील करते हैं ॥ ३ ॥

१ नमसा हूयमाना— नमस्कार करके आपको हम बुलाते हैं। किसीको बुलाना हो तो प्रणाम करके ही बुलाना चाहिये।

२ सुशस्ति प्रिया— प्रशंसित और प्रिय हैं। जो प्रशंसित होते हैं उनपर ही प्रेम करना चाहिये।

३ अप्नःस्था— सत्कर्ममें प्रवृत्त रहना चाहिये।

४ अपसा श्रुधीयतः जनान् महित्वा चित् संयततः— कर्म करके जो वैभव प्राप्त करनेके इच्छुक हैं उनको महत्त्वसे प्रयत्नमें प्रवृत्त करते हैं। स्वयं सत्कर्म करके महत्त्व प्राप्त करना हरएकको योग्य है। ऐसे प्रयत्नशील पुरुष सदा सत्कर्ममें प्रवृत्त रहें।

[४] (६९६) (या अश्वा न वाजिना) जो घोडोंके समान बलवान् हैं (पूत-बन्धू) पवित्र भाईके समान हैं तथा (ऋता) सत्यस्वरूप हैं (यद् अदितिः गर्भं भरध्यै)

८ ता जिह्वया सदमेदं सुमेधा आ यद् वां सत्यो अरतिर्ऋते भूत् ।
तद् वां महित्वं घृतान्नावस्तु युवं दाशुषे वि चयिष्टमंहः ॥ ७०० ॥
९ प्र यद् वां मित्रावरुणा स्पूर्धन् प्रिया धाम युवधिता मिनन्ति ।
न ये देवास ओहसा न मर्ता अयज्ञसाचो अप्यो न पुत्राः ॥ ७०१ ॥
१० वि यद् वाचं कीस्तासो भरन्ते शंसन्ति के चिन्निविदो मनानाः ।
आद् वां ब्रवाम सत्यान्युक्था नकिर्देवेभिर्यतथो महित्वा ॥ ७०२ ॥
११ अवोरित्था वां छर्दिषो अभिष्टौ युवोर्मित्रावरुणावस्कृधोयु ।
अनु यद् गावः स्फुरानृजिप्यं धृष्णुं यद् रणे वृषणं युनजन् ॥ ७०३ ॥

---

[८](७००)(ता जिह्वया सदं इदं) वे दोनों जिह्वासे-स्तोत्रसे-सदा ही (सुमेधाः आ) भक्तोंको उत्तम बुद्धिमान् करते हैं। (यद् वां सत्यः अरतिः ऋते आ भूत्) जब वह उपासक सच्चा भक्त यज्ञमें तत्पर होता है। हे (घृत-अन्नौ) घृतमिश्रित अन्न देनेवालो! (तद् वां महित्वं अस्तु) वह आपका महत्व है (युवं दाशुषे अंहः वि चयिष्टं) जो आप दाताके लिये पापको हटाते हैं ॥ ८ ॥

१ जिह्वया सदं इदं सुमेधा आ— जिह्वासे ऐसा स्तोत्र करना चाहिये जिससे सुननेवाले उत्तम बुद्धिमान् बनें।

२ यद् वां सत्यः अरतिः ऋते आभूत्— जब भक्त सत्यमय सदाचारवान् होता है (तब उसकी बुद्धि बढती है।)

३ घृतान्नः— घीसे मिश्रित अन्न खाना चाहिये। घीसे शरीर स्वस्थ रहता है और बुद्धि बढती है।

४ तद् वां महित्वं अस्तु यद् युवं दाशुषे अंहः विचयिष्टं— यह आपका ही महत्व है जो आप दाताको निष्पाप बनाते हैं।

[९](७०१) हे मित्र और वरुणो! (यद् वां प्रिया धाम) जो आपके प्रिय स्थान हैं उनको (प्र स्पूर्धन्) स्पर्धा करके (युव-धिता मिनन्ति) तथा आपके धारण किये नियमोंको जो तोडते हैं वे (न ये देवास) देव नहीं (ओहसा न मर्ता) स्तुतिसे मानव भी नहीं (अ-यज्ञ-साचः) यज्ञ न करनेवाले वे (अप्या न पुत्राः) कर्मनिष्ठ पुत्र भी नहीं हैं ॥ ९ ॥

१ वां प्रिया धाम प्र स्पूर्धन् युवधिता मिनन्ति— जो आपके प्रिय स्थान हैं उनसे स्पर्धा करते हैं और आपके धारण किये नियम जो तोडते हैं।

२ न देवासः ओहसा न मर्ताः न अप्याः पुत्राः— जिनसे वे देव नहीं, मनुष्य नहीं और कर्मनिष्ठ पुत्र भी नहीं हैं।

[१०](७०२)(कीस्तासः यद् वाचं वि भरन्ते) कोई स्तुति करनेवाले आपकी स्तुति करते हैं, (के चित् मनानाः निविदः शंसन्ति) कोई मननशील स्तोत्र गाते हैं, (आद् वां सत्यानि उक्था ब्रवाम) हम आपकी सत्य स्तुतियोंको गाते हैं कि तुम्हारा (न किः महित्वा देवेभिः यतथः) महत्व बडा है इस कारण कोई भी उस विषयमें देवोंके साथ तुलना नहीं करते ॥ १० ॥

[११](७०३) हे (मित्रावरुणौ) मित्र और वरुणो! (वां अवोः इत्था) आप दोनोंके रक्षणके अन्दर रहनेवाले भक्त (युवोः छर्दिषः अभिष्टौ) आपके घर प्राप्त करनेकी इच्छा करनेके कार्यमें (अस्कृधोयु) कुछकाय होते हैं। (यद्) जिसके चारों ओर (गावः अनुस्फुरान्) गौवें घूमती रहें और जो घर (ऋजिप्यं धृष्णुं) सरल व्यवहार करनेवालोंको रहने योग्य शत्रुका धर्षण करनेमें समर्थ (यद् रणे वृषणं युनजन्) और जो रणमें बलवान् तरुणको भेज सकता है ॥ ११ ॥

१ छर्दिषः अभिष्टिः— घरकी इच्छा रहती है।

२ यद् गावः अनुस्फुरान्— जिस घरके चारों ओर गौवें घूमती हों ऐसा घर चाहिये।

३ ऋजिप्यं धृष्णुं— सरल व्यवहार करनेवाले जहां रहते हैं और शत्रुका धर्षण करनेमें जो समर्थ हो ऐसा घर चाहिये।

४ यद् रणे वृषणं युनजन्— जो घर युद्धमें बलवान् तरुणको भेज सकता हो। ऐसा घर चाहिये। अर्थात् प्रत्येक घरमें ऐसे तरुण हों कि जो युद्धमें जा सकते हों। ऐसा घर होने चाहिये।

८ ता जिह्वया सदमेदं सुमेधा आ यद् वां सत्यो अरतिर्ऋते भूत् ।
तद् वां महित्वं घृतान्नावस्तु युवं दाशुषे वि चयिष्टमंहः ॥ ७०० ॥

९ प्र यद् वां मित्रावरुणा स्पूर्धन् प्रिया धाम युवधिता मिनन्ति ।
न ये देवास ओहसा न मर्ता अयज्ञसाचो अप्यो न पुत्राः ॥ ७०१ ॥

१० वि यद् वाचं कीस्तासो भरन्ते शंसन्ति के चिन्निविदो मनानाः ।
आद् वां ब्रवाम सत्यान्युक्था नकिर्देवेभिर्यतथो महित्वा ॥ ७०२ ॥

११ अवोरित्था वां छर्दिषो अभिष्टौ युवोर्मित्रावरुणावस्कृधोयु ।
अनु यद् गावः स्फुरानृजिप्यं धृष्णुं यद् रणे वृषणं युनजन् ॥ ७०३ ॥

[८](७००)(ता जिह्वया सदं इदं) वे दोनों जिह्वासे-स्तोत्रसे-सदा ही (सुमेधाः आ) भक्तोंको उत्तम बुद्धिमान् बनाते हैं। (यद् वां सत्यः अरतिः ऋते आ भूत) जब यह सत्य तथा भक्त यज्ञमें तत्पर होता है। हे (घृत-अन्नौ) घृतमिश्रित अन्न देनेवालो ! (तद् वां महित्वं अस्तु) यह आपका महत्त्व है (युवं दाशुषे अंहः वि चयिष्टं) जो आप दानी दाताके लिये पापको हटाते हैं ॥ ८ ॥

१ जिह्वया सदं इदं सुमेधा आ— जिह्वासे ऐसा स्तोत्र करना चाहिये जिससे सुननेवाले उत्तम बुद्धिमान् बनें।

२ यद् वां सत्यः अरतिः ऋते आभूत्— जब सत्य उपासक यज्ञाचारवान् होता है (तब उसकी बुद्धि बढती है।)

३ घृतान्नः— घीसे मिश्रित अन्न खाना चाहिये। घीसे और अन्नसे बल है और बुद्धि बढती है।

४ तद् वां महित्वं अस्तु यद् युवं दाशुषे अंहः विचयिष्टं— यह आपका ही महत्त्व है जो आप दाताके निष्पाप बनाते हैं।

[९](७०१)हे मित्र और वरुणो ! (यद् वां प्रिया धाम) जो आपको प्रिय स्थान हैं उनको (प्र स्पूर्धन्) स्पर्धा करे (युव धिता मिनन्ति) तथा आपने धारण किये नियमोंको जो तोडते हैं वे (न ये देवासः) देव नहीं (ओहसा न मर्ताः) स्तुतिसे मानव भी नहीं (अ-यज्ञ-साचः) यज्ञ न करनेवाले वे (अप्यः न पुत्राः) कर्मनिष्ठ पुत्र भी नहीं हैं ॥ ९ ॥

१ वां प्रिया धाम प्र स्पूर्धन् युवधिता मिनन्ति— जो आपके प्रिय स्थान हैं उनसे स्पर्धा करते हैं और आपके धारण किये नियम जो तोडते हैं।

२ न देवासः ओहसा न मर्ताः न अप्यः पुत्राः— स्तुतिसे वे देव नहीं मनुष्य नहीं और कर्मनिष्ठ पुत्र भी नहीं हैं।

[१०](७०२) (कीस्तासः यद् वाचं वि भरन्ते) कोई स्तुति करनेवाले आपकी स्तुति करते हैं (के चित् मनानाः निविदः शंसन्ति) कोई मननशील स्तोत्र गाते हैं (आद् वां सत्यानि उक्था ब्रवाम) हम आपकी सत्य स्तुतियोंको गाते हैं कि तुम्हारा (न किः महित्वा देवेभिः यतथः) महत्त्व बडा है इस कारण कोई भी इस विषयमें देवोंके साथ तुलना नहीं करते ॥ १० ॥

[११](७०३) हे (मित्रावरुणौ) मित्र और वरुणो ! (वां अवोः इत्था) आप दोनोंके रक्षणके अन्दर रहनेवाले मनुष्य (युवोः छर्दिषः अभिष्टौ) आपसे घर प्राप्त करनेकी इच्छा करनेके कार्यमें (अस्कृधोयु) कृतकार्य होते हैं। (यद्) जिसके चारों ओर (गावः अनुस्फुरान) गौवें घूमती रहें और जो घर (ऋजिप्यं धृष्णुं) सरल व्यवहार करनेवालोंको रहने योग्य शत्रुका धर्षण करनेमें समर्थ (यद् रणे वृषणं युनजन्) और जो रणमें बलवान् तरुणको भेज सकता है ॥ ११ ॥

१ छर्दिषः अभिष्टिः— घरकी इच्छा रहती है।

२ यद् गावः अनुस्फुरान्— जिस घरके चारों ओर गौवें घूमती हों ऐसा घर चाहिये।

३ ऋजिप्यं धृष्णुं— सरल व्यवहार करनेवाले जहां रहते हैं और शत्रुका धर्षण करनेमें जो समर्थ हो ऐसा घर चाहिये।

४ यद् रणे वृषणं युनजन्— जो घर युद्धमें बलवान् तरुणको भेज सकता हो ऐसा घर चाहिये। अर्थात् प्रत्येक घरमें ऐसे तरुण हों कि जो युद्धमें जा सकते हों। ऐसा घर हमें चाहिये।

८ ता जिह्वया सदमेदं सुमेधा आ यद् वां सत्यो अरतिर्ऋते भूत् ।
तद् वां महित्वं घृतान्नावस्तु युवं दाशुषे वि चयिष्टमंहः ॥ ७०० ॥
९ प्र यद् वां मित्रावरुणा स्पूर्धन् प्रिया धाम युवधिता मिनन्ति ।
न ये देवास ओहसा न मर्ता अयज्ञसाचो अप्यो न पुत्राः ॥ ७०१ ॥
१० वि यद् वाचं कीस्तासो भरन्ते शंसन्ति के चिन्निविदो मनानाः ।
आद् वां ब्रवाम सत्यान्युक्था नकिर्देवेभिर्यतथो महित्वा ॥ ७०२ ॥
११ अवोरित्था वां छर्दिषो अभिष्टौ युवोर्मित्रावरुणावस्कृधोयु ।
अनु यद् गावः स्फुरानृजिप्यं धृष्णुं यद् रणे वृषणं युनजन् ॥ ७०३ ॥

---

[८] (७००) (ता जिह्वया सदं इदं) वे दोनों जिह्वासे-वक्तृत्वसे-सदा ही (सुमेधाः आ) भक्तोंको उत्तम बुद्धिमान् बनाते हैं। (यद् वां सत्यः अरतिः ऋते आ भूत्) जब यह साधक तथा भक्त सत्यमें तत्पर होता है। हे (घृत-अन्नौ) घीमिश्रित अन्न देनेवालो ! (तद् वां महित्वं अस्तु) यह आपका महत्व है (युवं दाशुषे अंहः वि चयिष्टं) जो आप दाताके लिये पापको हटाते हैं ॥ ८ ॥

१ जिह्वया सदं इदं सुमेधा आ— जिह्वासे ऐसा भाषण करना चाहिये जिससे सुननेवाले उत्तम बुद्धिमान् बनें।

२ यद् वां सत्यः अरतिः ऋते आभूत्— जब साधक सत्यमय सदाचारवान् होता है (तब उसकी बुद्धि बढ़ती है।)

३ घृतान्नः— घीसे मिश्रित अन्न खाना चाहिये। घीसे बल प्राप्त रहता है और बुद्धि बढ़ती है।

४ तद् वां महित्वं अस्तु यद् युवं दाशुषे अंहः विचयिष्टं— यह आपका ही महत्व है जो आप दाताके निष्पाप बनाते हैं।

[९] (७०१) हे मित्र और वरुणो ! (यद् वां प्रिया धाम) जो आपके प्रिय स्थान हैं उनको (प्र स्पूर्धन्) स्पर्धा करें (युव-धिता मिनन्ति) तथा आपने धारण किये नियमोंको जो तोड़ते हैं वे (न ये देवासः) देव नहीं (ओहसा न मर्ताः) मनुष्य वे मानव भी नहीं (अ-यज्ञ-साचः) यज्ञ न करनेवाले वे (अप्याः न पुत्राः) कर्मनिष्ठ पुत्र भी नहीं हैं ॥ ९ ॥

१ वां प्रिया धाम प्र स्पूर्धन् युवधिता मिनन्ति— जो आपके प्रिय स्थान हैं उनसे स्पर्धा करते हैं और आपके धारण किये नियम जो तोड़ते हैं।

२ न देवासः ओहसा न मर्ताः न अप्याः पुत्राः— निश्चयसे वे देव नहीं, मनुष्य नहीं और कर्मनिष्ठ पुत्र भी नहीं हैं।

[१०] (७०२) (कीस्तासः यद् वाचं वि भरन्ते) कोई स्तुति करनेवाले आपकी स्तुति करते हैं (के चित् मनानाः निविदः शंसन्ति) कोई मननशील स्तोत्र पाठ करते हैं, (आत् वां सत्यानि उक्था ब्रवामः) हम आपकी सत्य स्तुतियोंको गाते हैं कि तुम्हारा (न किः महित्वा देवेभिः यतथः) महत्व बड़ा है इस कारण कोई भी इस विषयमें देवोंके साथ तुम्हारा नहीं करते ॥ १० ॥

[११] (७०३) हे (मित्रावरुणौ) मित्र और वरुणो ! (वां अवः इत्था) आप दोनोंके रक्षणके अन्दर रहनेवाले भक्त (युवोः छर्दिषः अभिष्टौ) आपसे घर प्राप्त करनेकी इच्छा करनेके कर्ममें (अस्कृधोयु) कृतकर्म होते हैं। (यद्) जिसके चारों ओर (गावः अनुस्फुरान्) गौवें घूमती रहें और जो घर (ऋजिप्यं धृष्णुं) सरल व्यवहार करनेवालोंको रहने योग्य शत्रुका धर्षण करनेमें समर्थ (यद् रणे वृषणं युनजन्) और जो रणमें बलवान् तरुणको भेज सकता है ॥ ११ ॥

१ छर्दिषः अभिष्टिः— घरकी इच्छा रहती है।

२ यद् गावः अनुस्फुरान्— जिस घरके चारों ओर गौवें घूमती हों ऐसा घर चाहिये।

३ ऋजिप्यं धृष्णुं— सरल व्यवहार करनेवाले जहां रहते हैं और शत्रुका धर्षण करनेमें जो समर्थ हो ऐसा घर चाहिये।

४ यद् रणे वृषणं युनजन्— जो घर युद्धमें बलवान् तरुणको भेज सकता है। ऐसा घर चाहिये। अर्थात् प्रत्येक घरमें ऐसे तरुण हों कि जो युद्धमें जा सकते हैं। ऐसा घर हमें चाहिये।

५ विश्वे यद् वां मंहना मन्दमाना: क्षत्रं देवासो अदधुः सजोषाः ।
परि यद् भूथो रोदसी चिदुर्वी सन्ति स्पशो अदब्धासो अमूराः ॥ ६९७ ॥

६ ता हि क्षत्रं धारयेथे अनु द्यून् दृंहेथे सानुमुपमादिव द्योः ।
दृळ्हो नक्षत्र उत विश्वदेवो भूमिमातान् द्यां धासिनायोः ॥ ६९८ ॥

७ ता विग्रं धैथे जठरं पृणध्या आ यत् सद्म सभृतयः पृणन्ति ।
न मृष्यन्ते युवतयोऽवाता वि यत् पयो विश्वजिन्वा भरन्ते ॥ ६९९ ॥

इसलिये तुम्हें अदितिने गर्भमें धारण किया था। (या महि महाम्ता प्रजायमाना) जो आप श्रेष्ठसे श्रेष्ठ जन्मे हैं (मर्ताय रिपवे) मानवी शत्रुके लिये (घोरा) भयंकर तुम्हें (नि धीय) बना दिया है ॥ ४ ॥

१ अश्वा न वाजिना— घोडोंके समान बलवान् ।

२ पूत दक्षू— पवित्र और भाईके समान सहायक ।

३ ऋतावा— सत्य कर्म करनेवाले ।

४ महि महाम्ता प्रजायमाना— अपने महत्त्वसे श्रेष्ठ होनेवाले ।

५ मर्ताय रिपवे घोरा निधीयः— मानवी शत्रुके लिये अत्यंत घोर पुत्र बनाये हैं। माताने पुत्रोंको ऐसी शिक्षा दी कि जिससे पुत्र अत्यंत घोर निकले। माता अपने पुत्रोंको ऐसे घोर बनावे।

[५] (६९७) (यत्) जब (वां मंहना मन्दमानाः) आपके महत्त्वसे प्रसन्न आनन्दित हुए (विश्वे देवासः) सब देवोंने (सजोषाः भूत्वा) मिलकर प्रीतिपूर्वक क्षात्र बल धारण किया (उर्वी चित् रोदसी) इतनी बडी यह द्यावा-पृथिवी है पर उनको भी तुम (यत् परि भूथ) घेरते हैं और तुम्हारे (स्पशः अदब्धासः अमूराः) दूत भी किसीके सामने न दबनेवाले और समझदार हैं ॥ ५ ॥

१ वां मंहना मन्दमानाः विश्वेदेवाः सजोषाः क्षत्रं अदधुः— आपके महत्त्वको देखकर आनन्दित हुए उत्साही सब देवोंने क्षात्र सामर्थ्य धारण किया। आपका सामर्थ्य देखकर सब देव भी क्षात्र कर्म करने लगे।

२ स्पशः अदब्धासः अमूराः— दूत किसीसे न दबनेवाले हों और चतुर हों।

[६] (६९८) (ता हि सर्वं क्षत्रं अनुद्यून् धारयथे) वे दोनों सब प्रकारका क्षात्रबल दिन-प्रतिदिन धारण करते हैं, (द्योः सानु) द्युलोकके शिखरको (उपमात् इव दृंहेथे) समीप रहनेके समान दृढता लाते हैं। (नक्षत्रः दृळ्हः) नक्षत्र लोकका स्थान सुदृढ किया है (उत विश्वदेवः) और विश्वके प्रकाशक सूर्यको भी स्थिर किया। (आयोः धासिना) मानवोंको अन्न मिले इसलिये (द्यां भूमिं आ अतान) द्यु और भूमिको पृथक् करके फैलाकर रखा है ॥ ६ ॥

१ ता सर्वं क्षत्रं अनुद्यून् धारयेथे— वे सब क्षात्रतेज प्रतिदिन धारण करते हैं। सदा अपना बल बढाते रहते हैं।

२ द्योः सानुं उपमात् इव दृंहेथे— द्युलोकके शिखरको सुदृढ करते हैं।

३ आयोः धासिना द्यां भूमिं आतान— मनुष्योंको अन्न मिले इस हेतुसे द्युलोक और भूलोकको फैलाकर रखा है।

[७] (६९९) (स-भृतयः सद्म यत् आ पृणन्ति) जब याजक लोग यज्ञशालामें भरते हैं तब (जठरं पृणध्यै) पेट भरनेके लिये (ता विप्रं धैथे) वे आप दोनों आदरपूर्वक अन्न धारण करके रखते हैं। (अवाता युवतयः न मृष्यन्ते) अविवाहित तरुण स्त्रियां अपना जीवनका अकेलापन सहन नहीं करतीं वैसा ही (विश्वजिन्वा यत् पयः विभरन्ते) विश्वको प्रेरणा देनेवाला तुमने जब जल भर दिया तब नदियां भर कर बहने लगीं ॥ ७ ॥

१ यत् स-भृतयः सद्म आ पृणन्ति— जब लोग यज्ञमें भरते हैं

२ जठरं पृणध्यै विप्रं धैथे— तब पेट भरनेके लिये तुम अन्न भरकर रखते हो।

३ अवाताः युवतयः न मृष्यन्ते यत् विश्वजिन्वा पयः विभरन्ते— अविवाहित तरुणियां (अपना अकेलापन) सहन नहीं करतीं वैसी ही नदियां जलसे भरती हैं। (तब वे प्रफुल्लित होकर पोषक धान्य उत्पन्न करती हैं।)

इन्द्रावरुणौ देवते

(मं ६ सू ६८)

१ श्रुष्टी वां यज्ञ उद्यतः सजोषा मनुष्वद् वृक्तबर्हिषो यजध्यै।
आ य इन्द्रावरुणाविषे अद्य महे सुम्नाय मह आववर्तत् ॥ ७०४ ॥

२ ता हि श्रेष्ठा देवताता तुजा शूराणां शविष्ठा ता हि भूतम्।
मघोनां मंहिष्ठा तुविशुष्म ऋतेन वृत्रतुरा सर्वसेना ॥ ७०५ ॥

३ ता गृणीहि नमस्येभिः शूषैः सुम्नेभिरिन्द्रावरुणा चकाना।
वज्रेणान्यः शवसा हन्ति वृत्रं सिषक्त्यन्यो वृजनेषु विप्रः ॥ ७०६ ॥

४ ग्नाश्च यन्नरश्च वावृधन्त विश्वे देवासो नरां स्वगूर्ताः।
प्रैभ्य इन्द्रावरुणा महित्वा द्यौश्च पृथिवि भूतमुर्वी ॥ ७०७ ॥

---

[१] (७०४) (इन्द्रावरुणौ) हे इन्द्र और वरुणो! (यः यज्ञः) जो यज्ञ (अद्य महे इषे) आज बडी इच्छापूर्तिके लिये (महे सुम्नाय) और बडे सुखके लिये (आ आववर्तत्) हो रहा है वह (वां यज्ञः) आपका यज्ञ (श्रुष्टी सजोषाः) शीघ्र उत्साहपूर्वक (उद्यतः) उद्यमशील (मनुष्वत्) मानवोंके तुल्य (वृक्त-बर्हिषः) ऐसे आसनोंसे युक्त (यजध्यै) यजन करनेके लिये हो ॥ १ ॥

१ यज्ञः महे इषे— यह बहुत अन्न प्राप्त करनेके लिये हो इच्छाकी तृप्ति करनेके लिये हो।

२ यज्ञः महे सुम्नाय आववर्तत्— यह बडा सुख प्राप्त होनेके लिये हो।

३ वां यज्ञः श्रुष्टी सजोषाः उद्यतः मनुष्वत् वृक्त बर्हिषः यजध्यै— आपका यज्ञ शीघ्र ही प्रीतिपूर्वक उद्यम युक्त मानवों द्वारा आसन सुशोभित हुए हैं ऐसा हो। बहुत मनुष्य यहां आसनोंपर बैठें और उद्यमशीलता बढे और उत्तम यजन हो। यज्ञ ऐसा हो।

[२] (७०५) (ता हि देवताता श्रेष्ठा तुजा) वे दोनों यज्ञमें देवोंमें श्रेष्ठ मारक वीर हैं (ता हि शूराणां शविष्ठा भूतं) वे दोनों शूरोंमें बलवान् हैं। (मघोनां मंहिष्ठा तुविशुष्मा) धनवानोंमें बडे और अनेक बलोंसे युक्त हैं तथा (ऋतेन) सत्य व्यवहारसे (वृत्रतुरा सर्वसेना) शत्रुको मारनेवाले और सब प्रकारकी सेनासे युक्त हैं ॥ २ ॥

१ देवताता श्रेष्ठा— यज्ञ करनेवाले देवोंमें श्रेष्ठ हैं।

२ शूराणां शविष्ठा— शूरोंमें बलवान् हैं।

३ मघोनां मंहिष्ठा— धनिकोंमें श्रेष्ठ उत्तम धन देनेवाले।

४ तुविशुष्मा— उत्तम बलके कार्य करनेवाले हैं, त्वरासे बलके कार्य करनेवाले।

५ सर्वसेना— सब प्रकारकी सेनासे युक्त।

६ ऋतेन वृत्रतुरा— सत्य मार्गसे शत्रुको पराजित करनेवाले ऐसे शूरवीर ये देव हैं। राष्ट्रमें ऐसे वीर होने चाहिये।

[३] (७०६) (नमस्येभिः शूषैः सुम्नैः) नमस्कार पूर्वक उत्तम बलवाले स्तोत्रोंसे (ता चकाना इन्द्रावरुणा) उन तेजस्वी इन्द्र और वरुणोंकी (गृणीहि) स्तुति करो, (अन्यः वज्रेण शवसा) एक इन्द्र वज्र बलसे फेंक कर (वृत्रं हन्ति) वृत्रको मारता है और (अन्यः वृजनेषु सिषक्ति) दूसरा उत्तम कर्मोंमें सहाय्य करता है ॥ ३ ॥

१ अन्यः शवसा वज्रेण वृत्रं हन्ति— एक अपने बलसे वज्रके द्वारा वृत्रको मारता है।

२ अन्यः वृजनेषु सिषक्ति— दूसरा कर्मोंमें सहायता करता है।

[४] (७०७) (ग्नाः च नरः च वावृधन्त) स्त्रियां और पुरुष जितने भी बढ गये (विश्वे देवासः) सब विद्व (नरां स्वगूर्ताः) नेताओंमें स्वाधीन उद्यमसे जितने भी बढ गये (द्यौः च पृथिवी च उर्वी) द्यु और पृथिवी जितनी बड

८ नू न इन्द्रावरुणा गृणाना पृङ्क्तं रयिं सौश्रवसाय देवा।
इत्था गृणन्तो महिनस्य शर्धोऽपो न नावा दुरिता तरेम ॥ ७११ ॥
९ प्र सम्राजे बृहते मन्म नु प्रियमर्च देवाय वरुणाय सप्रथः।
अयं य उर्वी महिना महिव्रतः क्रत्वा विभात्यजरो न शोचिषा ॥ ७१२ ॥
१० इन्द्रावरुणा सुतपाविमं सुतं सोमं पिबतं मद्यं धृतव्रता।
युवो रथो अध्वरं देववीतये प्रति स्वसरमुप याति पीतये ॥ ७१३ ॥
११ इन्द्रावरुणा मधुमत्तमस्य वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम्।
इदं वामन्धः परिषिक्तमस्मे आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयेथाम् ॥ ७१४ ॥

[ ] (७११) हे (देवा इन्द्रावरुणा) देव इन्द्र और वरुणों! (गृणाना) स्तुति किये गये तुम दोनों (सौश्रवसाय नः रयिं पृङ्क्तं) यशके लिये हमें धन दे दो। (इत्था महिनस्य शर्धः गृणन्तः) इस तरह आपके महान् सामर्थ्यकी स्तुति करते हुए हम जैसे (अपः नावा न) जलप्रवाहोंको नौकासे जैसे पार करते हैं वैसे ही (दुरिता तरेम) हम पापोंको दूर करेंगे ॥ ८ ॥

१ सौश्रवसाय रयिं न पृङ्क्तं— उत्तम कीर्ति प्राप्त करनेके लिये धन हमें दे दो। धन यश बढानेवाला हो।

२ महिनस्य शर्धः गृणन्तः— महान् बलकी स्तुति हो।

३ दुरिता तरेम— पापसे हम तैर कर परे जायेंगे।

४ अपः नावा न— जिस तरह जलोंको नौकासे पार करते हैं (वैसे हम पापोंसे पार होंगे।)

[९] (७१२) (बृहते संराजे) बडे सम्राट् (देवाय वरुणाय) वरुण देवको (स-प्रथः प्रियं मन्म) यशस्वी प्रिय ऐसे मननीय स्तोत्रसे (नु प्र अर्च) स्तुति कर। (यः अयं महिव्रतः) जो यह बडा कर्तृत्ववान् (अजरः) जरारहित (महिना उर्वी) अपने महिमासे बडी पृथिवीको (क्रत्वा शोचिषा न विभाति) कर्तृत्वसे और अपने प्रकाशसे प्रकाशनेके समान प्रकाशित करता है ॥ ९ ॥

१ बृहते संराजे वरुणाय देवाय सप्रथः प्रियं मन्म प्र अर्च— बडे सम्राट् वरुण देवके लिये प्रिय स्तोत्र यशस्वितासे गाओ।

१ अयं महिव्रतः अजरः महिना क्रत्वा शोचिषा उर्वी विभाति— यह बडे कर्म करनेवाला जरारहित अपने महान् सामर्थ्यसे इस पृथ्वीको अपने तेजसे प्रकाशित करता है।

[१] (७१३) हे (सुत-पौ इन्द्रावरुणा) सोम पीनेवाले इन्द्र और वरुणों! हे (धृतव्रता) व्रतके पालकर्त्ताओं! (इमं) इस (सुतं) निचोडे (मद्यं सोमं पिबतं) आनंद कारक सोमरसको पीओ। (युवोः रथः) तुम्हारा रथ (सोम-पीतये) सोमपानके लिये और (देववीतये) देवोंकी भक्तिके लिये (अध्वरं प्रति) अहिंसक यज्ञस्थानके पास (पीतये) रसपान करनेके लिये (प्रति स्वसरं उपयाति) प्रत्येक घर स्थानके पास जाता है ॥ १० ॥

१ धृतव्रताः— नियमोंका पालन करनेवाला। नियमोंका पालन करना उत्तम है।

२ देववीति — देवोंका संतोष जिससे हो वह कर्म करना योग्य है।

३ अध्वरः— जिसमें (ध्वर) हिंसा या कुटिलता नहीं है ऐसा कर्म।

[११] (७१४) हे इन्द्र और वरुणों! (मधुमत्तमस्य वृष्णः सोमस्य) अति मधुर बलवर्धक सोमके रसका प्राशन करे (वृषणा) बलवान् वीरों! (वृषेथां) बलके साथ करो। (इदं अन्धः) यह रस (वां परिषिक्तं) आपके लिये ही तैयार करके रखा है। (अस्मिन् बर्हिषि आसद्य) इस आसनपर बैठकर (अस्मे मादयेथां) इससे आनन्दित हो जाओ ॥ ११ ॥

इन्द्राविष्णू देवते

(मं ६ सू ६९)

१ सं वां कर्मणा समिषा हिनोमी—न्द्राविष्णू अपसस्पारे अस्य ।
जुषेथां यज्ञं द्रविणं च धत्त—मरिष्टैर्नः पथिभिः पारयन्ता ॥ ७१५ ॥

२ या विश्वासां जनितारा मतीना—मिन्द्राविष्णू कलशा सोमधाना ।
प्र वां गिरः शस्यमाना अवन्तु प्र स्तोमासो गीयमानासो अर्कैः ॥ ७१६ ॥

३ इन्द्राविष्णू मदपती मदाना—मा सोमं यातं द्रविणो दधाना ।
सं वामञ्जन्त्वक्तुभिर्मतीनां सं स्तोमासः शस्यमानास उक्थैः ॥ ७१७ ॥

४ आ वामश्वासो अभिमातिषाह इन्द्राविष्णू सधमादो वहन्तु ।
जुषेथां विश्वा हवना मतीना—मुप ब्रह्माणि शृणुत गिरो मे ॥ ७१८ ॥

---

[१] (७१५) हे (इन्द्रा-विष्णू) इन्द्र और विष्णु ! (अस्य अपसः पारे) इस कर्मके अन्तमें (वां कर्मणा सं हिनोमि) आप दोनोंको मैं कमसे प्रेरित करता हूं और (इषा च) अन्नसे उत्साहित करता हूं। (यज्ञं जुषेथां) हमारे यज्ञमें तुम आओ और (द्रविणं च धत्तं) हमें धन दो तथा (अरिष्टैः पथिभिः पारयन्ता) अहिंसित मार्गोंसे हमें दुःखोंसे पार करो ॥ १ ॥

१ अस्य अपसः पारे कर्मणा वां सं हिनोमि— इस कर्मके अन्तमें कर्मसे मैं तुम्हें प्रेरित करता हूं। (कर्म ऐसे किये जांय कि जो लोगोंको उत्साहित करनेवाले हों।)

२ इषा सं हिनोमि— अन्नसे मैं प्रेरित करता हूं। (अन्न ऐसा होना चाहिये जो उत्साहको बढावे।)

३ यज्ञं जुषेथां— यज्ञमें आओ (जहां यज्ञ हो वहां जाना योग्य है।)

४ द्रविणं धत्तं— धनका दान कर।

५ अरिष्टैः पथिभिः पारयन्ता— निष्कंटक मार्गोंसे जाकर दुःखोंसे पार होना चाहिये।

[२] (७१६) (या विश्वासां मतीनां जनितारा) जो सब स्तुतियोंकी प्रेरणा देनेवाले हैं। हे (इन्द्रा विष्णू) हे इन्द्र और विष्णु ! आपके लिये (सोमधाना कलशा) सोमसे भरे ये दो पात्र रखे हैं। (वां शस्यमाना गिरः) आपकी स्तुतिसे युक्त (प्र अवन्तु) हमारी रक्षा करें। और (अर्कैः गीयमानासः स्तोमासः प्र) गायन किये जानेवाले स्तोत्र हमारी रक्षा करें ॥ २ ॥

ईश्वरकी स्तुति और उसके स्तोत्रगान मानवोंका रक्षण करते हैं।

[३] (७१७) हे इन्द्र और विष्णु ! (मदानां मदपती) आप दोनों आनन्दके अधिपति हैं (द्रविणः दधाना) धन लेकर (सोमं आ यातं) सोम यज्ञके समीप आओ। (मतीनां अक्तुभिः) स्तोत्रोंके साथ गाये तथा (उक्थैः शस्यमानासः स्तोमासः) गायनोंसे गाये हुए स्तोत्र (वां सं अञ्जन्तु) आपको सुभूषित करें ॥ ३ ॥

१ मदानां मदपतिः— आनंदसे आनन्दित रहे। सदा प्रसन्न रहें।

२ द्रविणः दधाना— दानके लिये धन अपने पास रखा रहे।

[४] (७१८) हे इन्द्र और विष्णु ! (अभिमाति-षाहः) शत्रुका पराभव करनेवाले (सध-मादः) साथ रहनेसे आनन्दित होनेवाले (अश्वासः) घोडे (वां आ वहन्तु) आपको इधर ले आवें। (मतीनां विश्वा हवना जुषेथां) मतिमानोंके सब स्तोत्र सुनो (ब्रह्माणि उपशृणुतं) ज्ञानके स्तोत्र सुनो और (मे गिरः) मेरी प्रार्थना सुनो ॥ ४ ॥

१ अभिमाति-षाहः सधमादः अश्वासः वां आ वहन्तु— शत्रुका नाश करनेवाले और साथ रहनेमें आनन्द माननेवाले घोडे आपको ले आवें। घोडे ऐसे रहने चाहिये।

२ ब्रह्माणि शृणुतं— ज्ञानके स्तोत्र सुनो।

५ इन्द्राविष्णू तत् पनयाय्यं वां सोमस्य मद उरु चक्रमाथे ।
अकृणुतमन्तरिक्षं वरीयो ऽप्रथतं जीवसे नो रजांसि ॥ ७१९ ॥

६ इन्द्राविष्णू हविषा वावृधाना ऽग्राद्वाना नमसा रातहव्या ।
घृतासुती द्रविणं धत्तमस्मे समुद्रः स्थः कलशः सोमधानः ॥ ७२० ॥

७ इन्द्राविष्णू पिबतं मध्वो अस्य सोमस्य दस्रा जठरं पृणेथाम् ।
आ वामन्धांसि मदिराण्यग्मन्नुप ब्रह्माणि शृणुतं हवं मे ॥ ७२१ ॥

८ उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे न परा जिग्ये कतरश्चनैनोः ।
इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथाम् ॥ ७२२ ॥

---

[५] (७१९) हे इन्द्र और विष्णु ! (वां तत् पनाय्यं) आपका यह वर्णनीय पराक्रम है (सोमस्य मदे उरु चक्रमाथे) सोमके आनन्दमें इस विस्तीर्ण विश्वमें आपने आक्रमण किया है (अन्तरिक्षं वरीयः अकृणुतं) अन्तरिक्षको विशाल बनाया और (नः जीवसे रजांसि अप्रथतं) हमारे जीवनके लिये ये लोकलोक फैलाये हैं ॥ ५ ॥

यह सब महान् विश्व इस प्रभुने अपनी शक्तिसे निर्माण किया है।

[६] (७२०) हे इन्द्र और विष्णु ! आप (हविषा वावृधाना) हविष्यान्नसे हृष्टपुष्ट होते हो (अग्र आद्वाना) तुम सबका प्रथम स्वीकार करते हो। (नमसा रातहव्या) नमस्कारसे तुम संतुष्ट होते हो। तुम (घृतासुती) घीकी आहुतियां प्रेमसे स्वीकारते हो (अस्मे द्रविणं धत्त) हमारे लिये धन देओ। (समुद्रः स्थः) समुद्र जैसे तुम गंभीर हो और (कलशः सोमधानः) यह कलश सोमसे भरा है वैसे तुम भी परिपूर्ण हो ॥ ६ ॥

[७] (७२१) हे इन्द्र और विष्णु ! (अस्य मध्वः सोमस्य पिबतं) इस मधुर सोमरसको पीओ। हे (दस्रा) दर्शनीय देवो ! (जठरं पृणेथां) पेट भरकर पीओ। (अन्धांसि वां आ अग्मन्) ये सोमरस आपके पास पहुंचे। (मे हवं ब्रह्माणि उप शृणुतं) मेरी प्रार्थना और मेरे स्तोत्र सुनो ॥ ७ ॥

[८] (७२२) (उभा जिग्यथुः) तुम दोनों विजय करते हो। (न परा जयेथे) कभी पराजित होते नहीं। (एनोः कतरः च) इनमेंसे एक भी (न पराजिग्ये। पराजित नहीं होता है। हे इन्द्र और विष्णु ! (यत् अपस्पृधेथां) जब तुम स्पर्धासे कार्य करते हो तब (एतत् सहस्रं) इस सहस्र गौंओंको तुम (त्रेधा वि ऐरयेथां) तीन प्रकारसे विभजते हो ॥ ८ ॥

१ उभा जिग्यथुः— तुम दोनों विजय प्राप्त करते हो।

२ न पराजयेथे— तुम दोनों कभी पराजित नहीं हो। इसी तरह मनुष्य अपने विजयके लिये यत्न करें कभी पराजित न होवें।

३ एनोः कतरः चन न पराजिग्ये— इन दोनोंमें कोई एक भी पराजित नहीं होता। कोई भी पराजित न हो।

द्यावापृथिवी देवते

(मं ६, सू ७०)

१ घृतवती भुवनानामभिश्रियो॒र्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा।
द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कमिते अजरे भूरिरेतसा ॥ ७२३ ॥

२ असश्चन्ती भूरिधारे पयस्वती घृतं दुहाते सुकृते शुचिव्रते।
राजन्ती अस्य भुवनस्य रोदसी अस्मे रेतः सिञ्चतं यन्मनुर्हितम् ॥ ७२४ ॥

३ यो वामृजवे क्रमणाय रोदसी मर्तो ददाश धिषणे स साधति।
प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि युवोः सिक्ता विषुरूपाणि सव्रता ॥ ७२५ ॥

४ घृतेन द्यावापृथिवी अभीवृते घृतश्रिया घृतपृचा घृतावृधा।
उर्वी पृथ्वी होतृवूर्ये पुरोहिते ते इद् विप्रा ईळते सुम्नमिष्टये ॥ ७२६ ॥

---

[१] (७२३) (घृतवती) जलसे युक्त (भुवनानामभिश्रिया) सब भुवनोंको आश्रय देनेवाली (उर्वी) विशाल (पृथ्वी) फैली हुई (मधु दुघे सुपेशसा) मधुर जलरस देनेवाली सुन्दर (द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथिवी (अजरे) जराहीन (भूरि-रेतसा) बहुत शक्तिसे युक्त हैं (वरुणस्य धर्मणा विष्कमिते) ये वरुणके नियमसे धारण किये गये हैं ॥ १ ॥

[२] (७२४) (असश्चन्ती) परस्पर पृथक् रहनेवाली (भूरिधारे पयस्वती) बहुत जलप्रवाहोंसे युक्त रूपसे भरपूर (सुकृते शुचिव्रते) सत्कर्मकर्ता और पवित्र व्रतपालनेके लिये (घृतं दुहाते) घी दे देती है (अस्य भुवनस्य राजन्ती) इस विश्व प्रकाशित करती है ऐसी (रोदसी) ये द्यावापृथिवी (मनुर्हितं यत् रेतः) मनुष्यके लिये जो हितकर है वह जल (अस्मे सिञ्चतं) हमारे लिये प्रदान करो ॥ २ ॥

१ सुकृते शुचिव्रते घृतं दुहाते— उत्तम शुभ कर्म करनेवाले और शुद्ध आचारवालेको घी देती है।

२ मनुर्हितं रेतः सिञ्चतं— मनुष्योंका हित करनेवाला जल सिंचन करो।

[३] (७२५) हे (रोदसी धिषणे) द्यावापृथिवी हे धारण करनेवाली ! (यः मर्तः) जो मनुष्य (ऋजवे क्रमणाय) सरल आचरणके लिये (वां ददाश) आपको अर्पण करता है (सः साधति) वह सब कमाता है। (धर्मणः परि) धर्मके ऊपर रहनेवाला ही (प्रजाभिः प्र जायते) पुत्रपौत्रोंसे सम्पन्न होता है क्योंकि (युवोः सिक्ता) आपसे सिक्त (सव्रता विषुरूपाणि) उत्तम नियम अनेक हैं परन्तु वे सब उत्तम प्रकारके हैं ॥ ३ ॥

१ ऋजवे क्रमणाय ददाश सः साधति— सरल आचरणके लिये जो दान करता है वह सफल होता है।

२ धर्मणः परि प्रजाभिः जायते— जो धर्मपर रहता है वह संतानोंसे युक्त होता है।

३ युवोः सिक्ता सव्रता विषुरूपाणि— आपके नियम अनेक हैं और विविध प्रकारके हैं।

[४] (७२६) (द्यावापृथिवी घृतेन अभीवृते) द्युलोक और पृथिवी जलसे युक्त हैं। वे (घृतश्रिया) जलकी शोभासे युक्त (घृतपृचा) जलसे स्नेहसंबंध रखनेवाले और (घृतावृधा) जलका वर्धन करनेवाले हैं। (उर्वी पृथ्वी) बहुत विस्तृत और अत्यधिक हैं। (होतृवूर्ये) होताके वरण करनेके समय (पुरोहिते) आगे रहे हैं। (सुम्नं इष्टये) सुखप्राप्तिके लिये (विप्राः ईळते) ज्ञानी लोग उनकी स्तुति करते हैं ॥ ४ ॥

१ सुम्नं इष्टये विप्राः द्यावापृथिवी ईळते— सुख प्राप्तिके लिये ज्ञानी लोग द्युलोक और पृथिवी की स्तुति करते हैं। इससे ये दोनों सुख देनेवाले हैं।

५ मधु नो द्यावापृथिवी मिमिक्षतां मधुश्चुता मधुदुघे मधुव्रते ।
दधाने यज्ञं द्रविणं च देवता महि श्रवो वाजमस्मे सुवीर्यम् ॥ ७२७ ॥
६ ऊर्जं नो द्यौश्च पृथिवी च पिन्वतां पिता माता विश्वविदा सुदंससा ।
संरराणे रोदसी विश्वशम्भुवा सनिं वाजं रयिमस्मे समिन्वताम् ॥ ७२८ ॥

---

[५] (७२७) हे द्यु और पृथिवी ! (नः मधु मिमिक्षतां) हमें तुम दोनों मधुररससे सिंचाओ। तुम दोनों (मधुश्चुता) मधुर रसका स्राव करनेवाली (मधु दुघे) मधुर रसका वर्षाव करनेवाली हैं और (मधु-व्रते) मधुर रस देना तुम्हारा स्वभाव ही है। (यज्ञं द्रविणं देवता च दधाने) यज्ञ धन और देवत्वको धारण करनेवाले तुम (अस्मे) हमें (सुवीर्यं वाजं महि श्रवः) उत्तम वीर्य, अन्न और महान् यश दे दो ॥ ५ ॥

१ नः मधु मिमिक्षतां— हमें माधुर्य प्राप्त कराओ।

२ मधुव्रते मधुदुघे मधुश्चुते— मधुर व्रत धारण करनेवाले मधुरताका वर्षाव करनेवाले और मधुरताका स्राव करनेवाले हों। मनुष्यका व्रत मधुरताकी वृद्धि करे।

३ अस्मे सुवीर्यं वाजं महि श्रवः— हमें उत्तम वीर्य, अन्न और बडा यश मिले।

मनुष्य अपना आचरण मीठा रखे और अन्न तथा वीर्य बढाकर यशस्वी हो।

[६] (७२८) (नः द्यौः च पृथिवी च) हमारा द्यु और पृथिवी (ऊर्जं पिन्वतां) बल बढावें। ये हमारे (पिता माता) मातापिता हैं तथा ये (विश्वविदा सुदंससा) सब जाननेवाले और उत्तम कार्य करनेवाले हैं। (सं रराणे रोदसी) उत्तम देनेवाली द्यु और पृथिवी! तुम (विश्व-शं-भुवा) सबका कल्याण करनेवाली हो (अस्मे) हमारे लिये (सनिं वाजं रयिं) भाग, अन्न और धन (सं इन्वतां) मिले ऐसा करो ॥ ६ ॥

१ अस्मे सनिं वाजं रयिं सं इन्वतां— हमें शुभ योग्यतानुसार भाग, अन्न और धन दे दो।

२ रोदसी सं रराणे विश्वशंभुवा— द्यावापृथिवी देनेवाली है और सबका कल्याण करनेवाली है।

३ माता पिता विश्वविदा सुदंससा— माता-पिता सब जाननेवाले और उत्तम कर्म करनेवाले हैं। माता-पिता उत्तम ज्ञानी और सत्कर्म करनेवाले हों।

४ ऊर्जं पिन्वतां— हमारा बल बढाओ। (माता-पिता अपनी संतानोंका बल बढावें।)

सविता देवता

(मं ६ सू. ७१)

१ उदु ष्य देवः सविता हिरण्यया बाहू अयंस्त सवनाय सुक्रतुः ।
घृतेन पाणी अभि प्रुष्णुते मखो युवा सुदक्षो रजसो विधर्मणि ॥ ७२९ ॥

---

[१] (७२९) (सविता सुक्रतुः स्यः देवः) सबको प्रसव करनेवाले उत्तम कर्म करनेवाले वह सूर्य देवने (उ) निःसंदेह (सवनाय) दान देनेके लिये (हिरण्यया बाहू) अपने सुवर्णमय बाहू (उत् अयंस्त) ऊपर उठाये हैं। (सुदक्षः युवा) उत्तम दक्ष तरुण तथा (मखः) पवित्र यज्ञस्वरूप यह देव (रजसः विधर्मणि) लोकोंलोकके विविध कर्मोंमें (घृतेन पाणी अभि प्रुष्णुते) घृतसे युक्त अपने दोनों हाथ ऊपर उठाता है ॥ १ ॥

१ सुक्रतुः सविता देवः सवनाय हिरण्यया बाहू उदयंस्त— उत्तम कर्म करनेवाला सबका प्रसव करनेवाला देव अपने सुवर्णके समान बाहू दान देनेके लिये ऊपर उठाता है। (दान देनेकी इच्छासे अपने बाहू ऊपर उठावे।)

२ सुदक्षः युवा मखः— उत्तम दक्ष तरुण और यज्ञरूप मनुष्य हो।

२ देवस्य वय सवितु' सवीमनि श्रेष्ठे स्याम वसुनश्च दावने ।
यो विश्वस्य द्विपदो यश्चतुष्पदो निवेशने प्रसवे चासि भूमन' ॥ ७३० ॥
३ अदब्धेभि' सवितः पायुभिष्ट्वं शिवेभिरद्य परि पाहि नो गयम् ।
हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत ॥ ७३१ ॥
४ उदु ष्य देव' सविता दमूना हिरण्यपाणिः प्रतिदोषमस्थात् ।
अयोहनुर्यजतो मन्द्रजिह्वः आ दाशुषे सुवति भूरि वामम् ॥ ७३२ ॥
५ उदू अयाँ उपवक्तेव बाहू हिरण्यया सविता सुप्रतीका ।
दिवो रोहांस्यरुहत् पृथिव्या अरीरमत् पतयत् कच्चिदभ्वम् ॥ ७३३ ॥

---

[२] (७३०) (वयं) हम (सवितुः देवस्य) जगदुत्पादक सविता देवकी (श्रेष्ठे सवीमनि) श्रेष्ठ प्रेरणामें (वसुनः च दावने स्याम) और धनके दानके समय हम उपस्थित हों। (यः) जो तू (विश्वस्य द्विपदः चतुष्पदः) सब द्विपाद और चतुष्पादके (भूमन निवेशने प्रसवे च) विश्वके विश्राम और उत्पादनमें कारण (असि) तू है ॥ २ ॥

१ यः विश्वस्य द्विपदः चतुष्पदः भूमनः निवेशने प्रसवे च असि— वह प्रभु सब द्विपाद चतुष्पादोंके निवास विश्राम और उत्पत्तिके लिये कारण है।

२ सवितुः देवस्य श्रेष्ठे सवीमनि वसुनः दावने च स्याम— जगत् उत्पन्न करनेवाले देवकी श्रेष्ठ प्रेरणामें तथा धन दानके समय हम उपस्थित हों।

[३] (७३१) (अद्य अदब्धेभिः शिवेभिः पायुभिः) आज और न दबनेवाले कल्याणकारी रक्षणोंसे हे (सवितः) जगदुत्पादक देव ! (नः गयं परि पाहि) हमारे घरकी रक्षा कर। (हिरण्यजिह्वः) सुवर्ण जिह्वावाले तू (नव्यसे सुविताय) नवीन सुखके लिये (रक्ष) हमारी रक्षा कर। (अघशंसः नः माकिः ईशत) पापी हमपर कभी शासन न करे ॥ ३ ॥

१ अदब्धेभिः शिवेभिः पायुभिः नः गयं परि पाहि— न दब जानेवाले कल्याणकारी रक्षणोंसे हमारे घरकी रक्षा कर। रक्षक न दब जानेवाले हों कल्याणकारी हों। वे रक्षक हमारे घरकी रक्षा करें। हमारे घर सुरक्षित हों।

२ नव्यसे सुविताय रक्ष— उत्तम सुख हो इसलिये रक्षण कर।

३ अघशंसः नः माकिः ईशत— पापी हमपर शासन कभी न करे। पापीके आधीन हम कभी न हों।

[४] (७३२) (उ) निश्चयसे (सः दमूना सविता देवः) वह मन शान्त रखनेवाला जगत् उत्पन्न करनेवाला सूर्य देव (दमूनाः हिरण्यपाणिः) मनको अपने आधीन रखनेवाला सुवर्णके हाथवाला (प्रतिदोषं अस्थात्) प्रत्येक रात्रिके समाप्तिपर उदयको प्राप्त होता है। (अयः हनु) लोहे जैसी हनुवाला (यजतः मन्द्रजिह्वः) पूज्य और आनंददायक शब्द बोलनेवाला वह देव (दाशुषे भूरि वामं आसुवति) दाताको उत्तम धन देता है ॥ ४ ॥

१ दाशुषे भूरि वामं आसुवति— दाताको उत्तम धन देता है।

२ अयोहनुः यजतः मन्द्रजिह्वः— लोहेके समान हनुवाला पूज्य देव उत्तम शब्द बोलता है। अपने मुखसे उत्तम भाषण करना चाहिये।

[५] (७३३) (उपवक्ता इव बाहू उत् अयान् उ) वक्ता जैसे अपने बाहू ऊपर करता है वैसा यह (सुप्रतीका सविता हिरण्यया) उत्तम दर्शनीय सुवर्णके समान भुजाएं फैलाकर सविता उदयको प्राप्त हो रहा है। (दिवः रोहांसि अरुहत्) द्युलोकके उच्च भागोंपर चढा है। (पृथिव्याः कच्चित् अभ्वं पतयत्) पृथ्वीपर किसी तरहके उत्पातको बंद करता है (अरीरमत्) सबको रममाण करता है ॥ ५ ॥

१ उपवक्ता बाहू इव— वक्ता जैसे अपने बाहुओंको ऊपर उठाकर बोलता है।

२ सुप्रतीका सविता हिरण्यया बाहू उदयान्—

५ इन्द्रासोमा युवमङ्ग तरुत्रमपत्यसाचं श्रुत्यं रराथे ।
युवं शुष्मं नर्यं चर्षणिभ्यः सं विव्यथुः पृतनाषाहमुग्रा ॥ ७३९ ॥

(आसु चित्रासु अपरीषु) इन चित्रविचित्र चमकीली गौओं (अन्तः) के अन्दर (अमिनात् स्रवत्) बंद न रहा ऐसा तेजस्वी दूध (जगृभथुः) धारण करते हो ॥ ४ ॥

[५] (७३९) हे इन्द्र और सोम ! हे (अंग) प्रिय ! (युवं) तुम दोनों (तरुत्रं) शीघ्र रक्षण करनेवाला (अपत्यसाचं) पुत्रोंके साथ रहनेवाला (श्रुत्यं) यशस्वी धन (रराथे) देते हो । आप (उग्रा) शूरवीर हैं (युवं) आप (चर्षणिभ्यः) लोगोंके लिये (पृतनाषाहं) शत्रुसैन्यका पराभव करनेवाला (नर्यं शुष्मं) मानवोंका हित करनेवाला बल (सं विव्यथुः) देते हो ॥ ५ ॥

१ युवं तरुत्रं अपत्य-साचं श्रुत्यं रराथे— तुम शत्रुसे शीघ्र संरक्षण करनेवाला बालबच्चोंके साथ रहनेवाला कीर्ति फैलानेवाला धन देते हो । धन इन गुणोंसे युक्त रहना चाहिये ।

२ युवं चर्षणिभ्यः पृतनाषाहं नर्यं शुष्मं सं विव्यथुः— तुम दोनों लोगोंके शत्रुसैन्यका पराभव करनेवाला मानवोंका हित करनेवाला बल देते हो । मनुष्योंमें ऐसा सामर्थ्य चाहिये ।

बृहस्पतिः देवता

(मं १ सू ७१)

१ यो अद्रिभित् प्रथमजा ऋतावा बृहस्पतिराङ्गिरसो हविष्मान् ।
द्विबर्हज्मा प्राघर्मसत् पिता न आ रोदसी वृषभो रोरवीति ॥ ७४० ॥
२ जनाय चिद् य ईवत उ लोकं बृहस्पतिर्देवहूतौ चकार ।
घ्नन् वृत्राणि वि पुरो दर्दरीति जयञ्छत्रूँरमित्रान् पृत्सु साहन् ॥ ७४१ ॥

[१] (७४०) (यः अद्रिभित्) जो शत्रुके किलोंको तोडता है (प्रथमजाः ऋतावा) जो सबसे प्रथम प्रकट हुआ जो सत्यधर्म पालन करता है, (आङ्गिरसः हविष्मान्) जो आंगिरसोंमें तेजस्वी वीरोंमें-हविष्मानसे युक्त है ऐसा बृहस्पति है। वह (द्वि बर्ह-ज्मा) दो उत्तम गुणोंसे भूमिका रक्षण करनेवाला (प्राघर्मसत्) जो अपने तेजसे तेजस्वी होता है। (वृषभः) बलवान् (नः पिता) वह हमारा पिता (रोदसी) द्युलोक और भूलोकमें (आ रोरवीति) गर्जना करता है ॥ १ ॥

१ यः अद्रिभित्— जो शत्रुके पहाडी किलोंको तोडता है।

२ प्रथमजाः ऋतावा— जो प्रथम स्थानमें रहता है जो सत्यपालक है सत्यवान् है। प्रथम स्थानमें विराजनेकी जिसकी योग्यता है। क्योंकि वह सत्य नियमोंका योग्य रीतिसे पालन करता है।

३ हविष्मान्— हविष्य अन्नोंसे जो सदा युक्त है।

४ द्विबर्हज्मा— दो उच्चश्रेष्ठोंके गुणोंसे ज्ञान और कर्मसे- जो मातृभूमिकी सेवा करता है। द्वि-बर्हाः— दो विभागोंसे युक्त। दो उत्तम गुणोंसे युक्त।

५ प्राघर्मसत्— विशेष उत्साहसे युक्त, विशेष बडे यज्ञमें बैठनेवाला विशेष तेजसे युक्त।

६ वृषभः नः पिता रोदसी आ रोरवीति— बलवान् हमारा पिता द्यावापृथिवीमें घोषणा करता है (कि इन गुणोंका तेज जगत्में सतत रहता है।)

मनुष्य इन गुणोंसे युक्त होना चाहिये।

[२] (७४१) (यः) जो (ईवते जनाय चित्) प्रगतिशील लोगोंके हितके लिये (लोकं उ) स्थान देता है उस (बृहस्पतिः देवहूतौ चकार) बृहस्पतिने देवयज्ञमें ऐसा ही किया था। (वृत्राणि घ्नन्) शत्रुओंको मारा, (पुरः वि दर्द

२ बृहस्पतिः समजयद् वसूनि महो व्रजान् गोमतो देव एषः ।
अपः सिषासन् त्स्व१रप्रतीतो बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमर्कैः ॥ ७४२ ॥

रीति) शत्रुके नगरोंको तोड दिया (जयन् अजयत्) शत्रुपर जय प्राप्त किया और (पृत्सु अभिमातीः साहन्) युद्धोंमें शत्रुओंको पराजित किया है ॥ १ ॥

१ ईयते अज्ञाय लोकं— प्रगतिशील मार्गोंके लिये रहनेके लिये भरपूर कार्यक्षेत्र देता है।

२ बृहस्पतिः देवहूती चकार— बृहस्पतिने देवयज्ञमें ऐसा किया था।

३ वृत्राणि घ्नन्— शत्रुओंको मारता है, वृत्र— घेरने वाला शत्रु।

४ पुरः वि दर्दरीति— शत्रुके नगरोंको तोडता है।

५ शत्रून् जयन्— शत्रुपर जय प्राप्त करता है।

६ पृत्सु अभिमातीः साहन्— युद्धोंमें शत्रुओंको परा भूत करता है। अपने वीर इन गुणोंसे युक्त रहने चाहिये।

[२] (७४२) (बृहस्पतिः वसूनि सं अजयत्) बृहस्पति धनोंको जीतता है। (एषः देवः) यह देव (गोमतः महः व्रजान्) गौओंसे युक्त गोशालाओंको जीतता है। (स्वः अपः सिषासन्) स्वर्गसे जलोंको लाता है। (अप्रतीतः बृहस्पतिः) अपराजित बृहस्पति (अर्कैः अमित्रं हन्ति) अपने तेजोंसे शत्रुका नाश करता है ॥ २ ॥

१ बृहस्पतिः वसूनि सं अजयत्— बृहस्पति धनोंको जयसे प्राप्त करता है। शत्रुके पास जो धन होते हैं वह शत्रुका पराभव करके प्राप्त करता है।

२ एषः देवः गोमतः महः व्रजान्— यह देव गौओंसे युक्त बाडोंको जीतता है। शत्रुको पराभूत करके उसके पासकी गौवें प्राप्त करता है।

३ अपः स्वः सिषासन्— उच्च स्थानसे जलोंको लाता है।

४ अर्कैः अमित्रं हन्ति— अपने तेजोंसे शत्रुको मारता है। ये बृहस्पतिके गुण अपने वीरोंको अपनाने चाहिये।

सोमारुद्रौ देवते

(मं ६ सू. ७४)

१ सोमारुद्रा धारयेथामसुर्य१ं प्र वामिष्टयोऽरमश्नुवन्तु ।
दमेदमे सप्त रत्ना दधाना शं नो भूतं द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ ७४३ ॥

[१] (७४३) हे (सोमा-रुद्रा) सोम और रुद्र! तुम दोनों (असुर्यं धारयेथां) सामर्थ्य धारण करते हैं। (इष्टयः वां अरं प्र अश्नुवन्तु) हमारे यज्ञ आपके पास निःसंदेह पहुंचते हैं। (दमे दमे सप्त रत्ना दधाना) घर घरमें सात रत्न तुम रखने हो। (नः शं भूतं) हमारे लिये कल्याण करनेवाले हो जाओ तथा (द्विपदे चतुष्पदे शं) हमारे द्विपाद और चतुष्पादोंके लिये कल्याण करनेवाले हो जाओ ॥ १ ॥

१ असुर्यं धारयथां— तुम दोनों सामर्थ्य धारण करते हो। असुर्य- बल सामर्थ्य प्राणोंका वीर्य।

२ इष्टयः वां अरं प्र अश्नुवन्तु— हमारे यज्ञ पूर्ण तासे तुम्हारे पास पहुंचे। क्योंकि ये हम तुम्हारे संतोषके लिये कर रहे हैं।

३ दमे दमे सप्त रत्ना दधाना— प्रत्येक घरमें सात रत्न धारण करते हो। हीरा माणिक पाचू आदि सात रत्न घर घरमें रहें। ऐसा धन सबको मिले। दो आंख दो कान दो नाक, एक मुख ये सात रत्न हैं प्रत्येक मानवके शरीररूपी घरमें ये रत्न हैं।

४ नः शं द्विपदे चतुष्पदे च शं भूतं— हमारे और द्विपादों तथा चतुष्पादोंका कल्याण हो।

२ सोमारुद्रा वि वृहतं विषूची—ममीवा या नो गयमाविवेश।
आरे बाधेथां निर्ऋतिं पराचै—रस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु ॥ ७४४ ॥

३ सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मे विश्वा तनूषु भेषजानि धत्तम्।
अव स्यतं मुञ्चतं यन्नो अस्ति तनूषु बद्धं कृतमेनो अस्मत् ॥ ७४५ ॥

४ तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृळतं नः।
प्र नो मुञ्चतं वरुणस्य पाशाद् गोपायतं नः सुमनस्यमाना ॥ ७४६ ॥

---

[२] (७४४) हे सोम और रुद्र! (विषूची विवृहतं) विविध प्रकारके सब अन्तर्गोंको दूर करो (अमीवा या नः गयं आविवेश) जो रोग हमारे घरमें प्रविष्ट हुए हैं (निर्ऋतिं पराचैः आरे बाधेथां) दुरवस्थाको दूर हटा दो। (अस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु) हमें कल्याणकारी मंगल प्राप्त हों ॥ २ ॥

१ या नः गयं आ विवेश अमीवा विषूची विवृहतं— जो हमारे घरमें प्रविष्ट हुए हैं वे रोग सबके सब सब प्रकारसे दूर हों। अमीव (आम- वात)— पेटमें अपचित अन्नसे उत्पन्न होनेवाले रोग सब प्रकारके रोग दूर हों। विषूची— चारों प्रकारोंसे चारुशुद्धि, मलशुद्धि, शोधशुद्धि आदि उपायोंसे रोग दूर हों।

२ निर्ऋतिं पराचैः आरे बाधेथां— दुरवस्थाको दूर करो। दुरवस्था हमारे पास न रहे।

३ अस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु— हमें सब कल्याण मंगल प्राप्त हों। हमारा उत्तम यश बढे।

[३] (७४५) हे सोम और रुद्रो! (युवं) तुम दोनों (अस्मे तनूषु) हमारे शरीरोंमें (एतानि विश्वा भेषजानि) ये सब औषध (धत्तं) धारण करो। (यत् नः तनूषु बद्धं अस्ति) जो हमारे शरीरोंमें बंधा है (एनः कृतं) पाप किया है वह (अस्मत् अवस्यतं) हमसे छुडा करो और (मुञ्चतं) मुक्त करो ॥ ३ ॥

१ युवं अस्मे तनूषु एतानि विश्वा भेषजा धत्त— तुम दोनों ये हमारे शरीरोंमें सब औषध रखो। औषधोंको सेवन करो जिससे हम रोगमुक्त हो जांय।

२ नः तनूषु यत् बद्धं अस्ति— हमारे शरीरोंमें जो दृढमूल दोष हुआ हो।

३ यत् एनः कृतं— जो हमने पाप किया हो जिससे दोष हमारे शरीरमें रहा हो।

४ अस्मत् अवस्यतं मुञ्चत— हमसे वह दोष दूर करो और उस दोषसे हमें मुक्त करो। जिससे हमें कोई रोग न हो ऐसा करो।

[४] (७४६) हे (तिग्मायुधौ तिग्महेती) तीक्ष्ण आयुधवाले तीक्ष्ण शस्त्रवाले (सुशेवौ) उत्तम सेवा करने योग्य सोम और रुद्रो! (इह नः सु मृळतं) यहां हमें उत्तम रीतिसे सुखी करो। (नः वरुणस्य पाशात् प्र मुञ्चतं) हमें वरुणके पाशसे मुक्त करो। (सुमनस्यमाना) उत्तम विचार करनेवालो (नः गोपायतं) हमारा संरक्षण करो ॥ ४ ॥

१ इह नः मृळतं— यहां हमें सुखी करो।

२ नः वरुणस्य पाशात् प्र मुञ्चतं— वरुणके पाशसे-रोगसे हमें मुक्त करो। हमारे पास रोग न आवें ऐसा करो।

३ सुमनस्यमाना नः गोपायतं— उत्तम मनवालो हमारी सुरक्षा करो। उत्तम मनसे रोगमुक्त होकर सुरक्षा होती है। मनकी भावना शुद्ध रही तो रोग दूर होते हैं और अशुद्ध मन हुआ तो रोग उत्पन्न होते हैं। यह नीरोगिता प्राप्तिका सिद्धान्त सदा मनमें सुस्थिर रखने योग्य है।

सोम और रुद्रके सद्गुणोंका जो वर्णन यहां आया है, तथा अन्यान्य देवता वर्णनोंमें जो देवताओंके शुभगुणोंका वर्णन आया है वह वर्णन पाठकोंको अपनानेके लिये है। देवत्वको मानव प्राप्त करे स्वयं देव बने देवत्वके गुण अपनेमें बढावे और अपनी उन्नति इस तरह साधन करे। इस नियमको मनमें रख कर साधक इन सूक्तोंका मनन करे और अपने अभ्युदयका मार्ग ढूंढ निकाले।

संग्रामाशिषः

(मं ६ सू. ७५)

१ जीमूतस्येव भवति प्रतीकं यद् वर्मी याति समदामुपस्थे ।
अनाविद्धया तन्वा जय त्वं स त्वा वर्मणो महिमा पिपर्तु ॥ ७४७ ॥

२ धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम ।
धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥ ७४८ ॥

३ वक्ष्यन्तीवेदा गनीगन्ति कर्णं प्रियं सखायं परिषस्वजाना ।
योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वञ् ज्या इयं समने पारयन्ती ॥ ७४९ ॥

४ ते आचरन्ती समनेव योषा मातेव पुत्रं बिभृतामुपस्थे ।
अप शत्रून् विध्यतां संविदाने आर्त्नी इमे विष्फुरन्ती अमित्रान् ॥ ७५० ॥

५ बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रश्चिश्चा कृणोति समनावगत्य ।
इषुधिः सङ्काः पृतनाश्च सर्वाः पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः ॥ ७५१ ॥

---

[१] (७४७) १ वर्म देवता— (यद् वर्मी) जब कवच धारण करके वीर (समदां उपस्थे याति) संग्रामोंमें जाता है तब (जीमूतस्य इव प्रतीकं भवति) मेघका प्रतीक सा होता है। (त्वं अनाविद्धया तन्वा जय) तू घायल न होते हुए शरीरसे जय प्राप्त कर। (वर्मणः सः महिमा) कवचकी वह महिमा (त्वा पिपर्तु) तेरा बचाव करे ॥ १ ॥

कवच पहन कर जो वीर संग्राममें जाता है वह घायल न होते हुए विजय प्राप्त करता है। यह कवचकी महिमा है। इस लिये वीर कवच धारण करके ही संग्राममें जाय।

[२] (७४८) २ धनुः देवता— (धन्वना गाः) धनुषसे गौओंको प्राप्त करेंगे और (धन्वना आजिं जयेम) धनुषसे संग्राममें जय प्राप्त करेंगे। (धन्वना तीव्राः समदः जयेम) धनुष्यसे तीव्र युद्धमें विजयी होंगे। (धनुः शत्रोः अपकामं कृणोति) धनुष्य शत्रुके इष्ट फलका नाश करता है शत्रुका पराभव करता है। (धन्वना सर्वाः प्रदिशः जयेम) धनुषसे सब दिशाओंमें विजय करेंगे ॥ २ ॥

[३] (७४९) ३ ज्या देवता— (प्रियं सखायं परिषस्वजाना) प्रिय मित्र वर्षको आलिंगन देनेके समान (वक्ष्यन्ती इव इत्) कुछ कहनेकी इच्छा करती हुई (कर्णं आगनीगन्ति) कानतक आती है। (धन्वन् अधि वितता) धनुष्यपर चढाई हुई (ज्या) धनुष्यकी डोरी (योषा इव शिङ्क्ते) स्त्रीके समान मधुर शब्द करती है। (इयं समने पारयन्ती) यह डोरी युद्धमें संकटसे पार करती है ॥ ३ ॥

धनुष्यकी डोरी धनुष्य भिन्नभिन्न वीरका कान है, उसको आलिंगन देकर कुछ कहनेकी इच्छासे उसके पास जाती है। धनुष्यपर चढाई डोरी स्त्रीके समान गीतके स्वरमें कुछ कहती है और वह डोरी युद्धके संकटसे वीरका बचाव करती है।

कितना उत्तम काव्यमय यह वर्णन है देखिये।

[४] (७५०) ४ आर्त्नी देवता— (ते) वे दो धनुष्यके कोने (समना इव योषा) एक मनसे रहनेवाली दो स्त्रियोंके समान (आचरन्ती) आचरण करनेवाली (माता इव पुत्रं उपस्थे बिभृतां) माता जैसी गोदमें पुत्रको लेती है वैसी वे बाणको अपनी गोदमें धरती हैं। (संविदाने आर्त्नी) वे मिलकर रहनेवाले दोनों कोने (शत्रून् अप विध्यतां) शत्रुका वेध करती हैं और (इमे अमित्रान् विष्फुरन्ती) ये शत्रुओंका नाश करती हैं ॥ ४ ॥

धनुष्यकी दोनों कोटि शत्रुका इस तरह पराभव करती है।

[५] (७५१) ५ इषुधिः देवता— (बह्वीनां पिता) बहुतोंका यह तर्कस पिता है (अस्य पुत्राः बहु) इसके पुत्र भी बहुत हैं (समना अवगत्य) युद्धमें अन्दर

६ रथे तिष्ठन् नयति वाजिनः पुरो यत्रयत्र कामयते सुषारथिः ।
अभीशूनां महिमानं पनायत मनः पश्चादनु यच्छन्ति रश्मयः ॥ ७५२ ॥
७ तीव्रान् घोषान् कृण्वते वृषपाणयोऽश्वा रथेभिः सह वाजयन्तः ।
अवक्रामन्तः प्रपदैरमित्रान् क्षिणन्ति शत्रूँरनपव्ययन्तः ॥ ७५३ ॥
८ रथवाहनं हविरस्य नाम यत्रायुधं निहितमस्य वर्म ।
तत्रा रथमुप शग्मं सदेम विश्वाहा वयं सुमनस्यमानाः ॥ ७५४ ॥
९ स्वादुषंसदः पितरो वयोधाः कृच्छ्रेश्रितः शक्तीवन्तो गभीराः ।
चित्रसेना इषुबला अमृध्राः सतोवीरा उरवो व्रातसाहाः ॥ ७५५ ॥
१० ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः शिवे नो द्यावापृथिवी अनेहसा ।
पूषा नः पातु दुरितादृतावृधो रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत ॥ ७५६ ॥
११ सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तो गोभिः संनद्धा पतति प्रसूता ।
यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म यंसन् ॥ ७५७ ॥

(क्षिया कृणोति) हिंसा करता है। (पृष्ठे निनद्ध इषुधिः) पीठपर बंधा हुआ यह बाणोंका तर्कस (प्रसूतः) अपनेसे निकले बाणोंसे (समाः संकाः पृतनाः) सब संगठित शत्रु सेनाको (जयति) जीतता है ॥ ५ ॥

[६] (७५२) ६ सारथिः (पूर्वार्धः) रश्मयः (उत्तरार्धः)— (सु-सारथिः) उत्तम सारथि (रथे तिष्ठन्) रथमें बैठा हुआ (यत्र यत्र कामयते) जहां जानेकी इच्छा करता है (वाजिनः पुरः नयति) घोडोंको आगे चलाता है। (अभीशूनां महिमानं पनायत) लगामोंका महिमा कहो (मनः पश्चात्) मनके पीछे पीछे (रश्मयः अनुयच्छन्ति) रश्मियां दौडती हैं ॥ ६ ॥

[७] (७५३) ७ अश्वा देवता— (रथेभिः सह वाजयन्तः) रथके साथ बलसे दौडनेवाले (वृषपाणयः अश्वाः) जिनके खुर बलवान् हैं ऐसे घोडे (तीव्रान् घोषान् कृण्वते) बडे शब्द करते हैं। (अमित्रान् प्रपदैः अवक्रामन्तः) शत्रुओंको अपने पावोंसे आक्रमण करते हुए (अनपव्ययन्तः शत्रून् क्षिणन्ति) व्यय न करते हुए भी शत्रुओंका नाश करते हैं ॥ ७ ॥

[८] (७५४) ८ रथः देवता— (अस्य रथवाहनं हविः) यहां इस रथको चलानेवाला हव्य रखा है (यत्र अस्य आयुधं) जहां इसका शत्रुको भगानेवाला आयुध है जहां (अस्य वर्म निहितं) इसका कवच रखा है (वयं सुमनस्यमानाः) हम उत्तम मनवाले (विश्वाहा) सर्वदा (तत्र शग्मं रथं उपसदेम) वहां उस सुखदायी रथपर चढ कर बैठेंगे ॥ ८ ॥

[९] (७५५) ९ रथगोपा देवता— (स्वादु-संसदः) सुखदायी सहायता करनेवाले (वयोधाः) बलवान् (कृच्छ्रेश्रितः) संकट समयमें आश्रय लेने योग्य (शक्तिमन्तः) शक्तिमान् (गभीराः) गंभीर स्वभाववाले (चित्रसेनाः) विचित्र उत्तम सेनावाले (इषु-बलाः) बाणोंका बल जिनके साथ है ऐसे (अमृध्राः) शत्रुसे अहिंसित (सतो-वीराः) सत्यतामें रहनेवाले वीर (उरवः) बहुत (व्रातसाहाः पितरः) शत्रुसैनिकोंका पराभव करनेवाले संरक्षक होते हैं ॥ ९ ॥

ऐसे हम शूरवीरोंसे युक्त रक्षक वीर हों।

[१०] (७५६) १० ब्राह्मण-पितृ-सोम द्यावा-पृथिवी पूषाख्या देवता — (ब्राह्मणासः) ब्राह्मण ज्ञानी पुरुष (पितरः) रक्षक (सोम्यासः) सौम्य (शिवे अनेहसा द्यावापृथिवी) कल्याणकारी निष्पाप सुखद आकाश पृथिवी और (पूषा) पोषक देव (दुरितात् नः पातु) पापसे हमारा बचाव करें। (ऋतावृधः रक्ष) सत्य मार्गका संवर्धन करनेवाले हमारी सुरक्षा करें (माकिः अघशंसः नः ईशत) कोई भी पापी हमारे ऊपर स्वामित्व न करें ॥ १० ॥

१२ ऋजीते परि वृङ्धि नोऽश्मा भवतु नस्तनूः ।
सोमो अधि ब्रवीतु नोऽदितिः शर्म यच्छतु ॥ ७५८ ॥

१३ आ जङ्घन्ति सान्वेषां जघनाँ उप जिघ्नते ।
अश्वाजनि प्रचेतसोऽश्वान् त्समत्सु चोदय ॥ ७५९ ॥

१४ अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः ।
हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान् पुमांसं परि पातु विश्वतः ॥ ७६० ॥

१५ आलाक्ता या रुरुशीर्ष्ण्यथो यस्या अयो मुखम् ।
इदं पर्जन्यरेतस इष्वै देव्यै बृहन्नमः ॥ ७६१ ॥

१६ अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।

---

[११] (७५७) ११—१२ इषवः देवताः— (सुपर्णं वस्ते) बाण उत्तम पंख धारण करता है, (अस्या दन्तः) इस बाणका दांत तीक्ष्ण है। (गोभिः संनद्धा पतति प्रसूता) गोचर्मकी डोरीसे मिलकर फेंका बाण शत्रुपर गिरता है। (यत्र नरः सं द्रवन्ति वि द्रवन्ति च) जिस युद्धमें वीर मिलकर या अलग होकर दौडते हैं (तत्र) वहां उस युद्धमें (अस्मभ्यं इषवः शर्म यंसन्) हमारे लिये बाण सुख देवें ॥ ११ ॥

[१२] (७५८) हे (ऋजीते) सरल जानेवाले बाण! (नः परि वृङ्धि) हमारा चारों ओरसे रक्षण कर। (नः तनूः अश्मा भवतु) हमारा शरीर पत्थर जैसा बलवान् बने। (सोमः नः अधि ब्रवीतु) सोम हमारा उत्साह बढावे और (अदितिः शर्म यच्छतु) अदिति हम सुख देवे ॥ १२ ॥

[१३] (७५९) १३ प्रतोदः देवता— हे (अश्वाजनि) घोडोंको चलानेवाली चाबुक! तू (समत्सु प्रचेतसः अश्वान् चोदय) संग्रामोंमें समझदार घोडोंको प्रेरित कर। (एषां सानु) इनके ऊंचे भागपर (आ जङ्घन्ति) प्रहार करते हैं और (जघनान् उप जिघ्नते) नीचेके भागपर समीपसे ताडन करते हैं ॥ १३ ॥

[१४] (७६०) १४ हस्तघ्न देवता— (अहिः इव भोगैः बाहुं पर्येति) सांपके समान बाहुपर लिपटता है और (ज्यायाः हेतिं परिबाधमानः) धनुष्यकी डोरीके आघातोंसे बचाता है ऐसा यह (हस्तघ्नः) हस्तघ्न (विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान्) सब कर्मोंको जाननेवाले विद्वान् पुरुषकी तरह (पुमांसं विश्वतः परि पातु) पुरुषका चारों ओरसे रक्षण करे ॥ १४ ॥

[१५] (७६१) १५ १६ इषवो देवता— (या आलाक्ता) जो विषसे लिपटी (रुरु-शीर्ष्णी) मृगके समान सिरवाली (अथो यस्या अयो मुखं) जिसके मुखमें लोहेका फल लगा है (पर्जन्य रेतसे देव्यै इष्वै) पर्जन्यके जलसे जिसका वीर्य बढाया है उस बाण देवताके लिये (इदं बृहत् नमः) यह मेरा बडा प्रणाम है ॥ १५ ॥

१ आलाक्ता— बाण विषमें बुझाते हैं। बाण तपा कर विषमें बुझाते हैं जिससे यह बाण जिसको लगे वह मनुष्य या प्राणी विषसे मर जाता है।

२ रुरु शीर्ष्णी— रुरुमृगके सिरके समान—सींगके समान नोकदार बाण होता है।

३ अयो-मुख— लोहेका फल जिसके मुखस्थानमें लगा है।

४ पर्जन्य रेताः— पर्जन्यके जलसे जिसका वीर्य बढा है। पर्जन्यके पानीमें ही फल तपाकर बुझाना है।

५ देव्यै इष्वै नमः— बाणरूप देवताको मेरा प्रणाम हो। अर्थात् ऐसा विषमय बाण दूर रहे मुझपर न आवे, शत्रुपर जा गिरे।

[१६] (७६२) हे (ब्रह्म संशिते शरव्ये) ज्ञान द्वारा तीक्ष्ण बनाये बाण! (अवसृष्टा परा पत) छोडा जानेपर दूर जा (गच्छ) जा और (अमित्रान् प्र पद्यस्व) शत्रुओंपर जाकर गिर। (अमीषां कंचन मा उच्छिषः) इन शत्रुओंमेंसे किसीको भी न बचा रहने दे ॥ १६ ॥

गच्छामित्रान् प्र पद्यस्व मामीषां कं चनोच्छिषः ॥ ७६२ ॥
१७ यत्र बाणाः संपतन्ति कुमारा विशिखा इव ।
तत्रा नो ब्रह्मणस्पति—रदितिः शर्म यच्छतु विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥ ७६३ ॥
१८ मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम् ।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥ ७६४ ॥
१९ यो नः स्वो अरणो यश्च निष्ट्यो जिघांसति ।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरम् ॥ ७६५ ॥

---

[१७] (७६३) १७ युद्धभूमि-कवच-ब्रह्मणस्पत्यादयः देवताः— (विशिखाः कुमारा इव) शिखा रहित कुमारोंके समान (यत्र बाणाः संपतन्ति) जहां बाण गिरते हैं (तत्र) वहां उस युद्धभूमिमें (ब्रह्मणस्पतिः अदितिः) ब्रह्मणस्पति और अदिति (नः शर्म यच्छतु) हमें सुख देवे। (विश्वाहा शर्म यच्छतु) हमें सदा सुख देवे ॥ १७ ॥

[१८] (७६४) वर्म-सोम-वरुणाः देवताः— (वर्मणा ते मर्माणि छादयामि) कवचसे तेरे सब मर्मस्थानोंको आच्छादित करता हूं। (राजा सोमः त्वा अमृतेन अनु वस्तां) सोम राजा तेरे पास अपने अमरत्वके गुणसे बसता रहे। (वरुणः ते उरोः वरीयः कृणोतु) वरुण तेरे लिये श्रेष्ठसे श्रेष्ठतम देवे अथवा भद्र धन देवे। (जयन्तं त्वा देवाः अनु मदन्तु) जय होनेपर देव तेरा आनन्द माने अर्थात् तेरे जयसे सब देव आनंदित हों ॥ १८ ॥

सोम वनस्पतिसे अमरत्व या दीर्घायुत्व अथवा जन्म व्याधिके भय शीघ्र ठीक होते हैं ऐसा (राजा सोमः त्वा अमृतेन अनु वस्तां) राजा सोम सोमवल्ली अपने अमरत्वके साथ तेरे साथ रहे इस वचनसे प्रतीत होता है।

[१९] (७६५) १९ देवब्रह्माणि देवता— (यः नः स्वः) जो हमारा अपना हो (अरणः) अथवा दूरका हो (यः च निष्ट्यः) जो नीच हो (जिघांसति) जो हमें मारता हो (तं) उसको (सर्वे देवाः धूर्वन्तु) सब देव विनाश करें। (मम अन्तरं) मेरे अन्दर (ब्रह्म वर्म) ज्ञान रूपी कवच है ॥ १९ ॥

॥ षष्ठ मण्डल समाप्त ॥

मनका बल बढाना।

(अथर्व काण्ड २ सूक्त १२)

(ऋषिः-भरद्वाजः। देवता-द्यावापृथिव्यादिनानादैवतम्)

द्यावापृथिवी उर्व१न्तरिक्षं क्षेत्रस्य पत्न्युरुगायोऽद्भुतः ।
उतान्तरिक्षमुरु वातगोपं त इह तप्यन्तां मयि तप्यमाने ॥ १ ॥

---

[१] (द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथिवी लोक (उरु अन्तरिक्षं) विस्तीर्ण आकाश (क्षेत्रस्य पत्नी) क्षेत्रका पालन करनेवाली शक्ति (अद्भुतः उरुगायः) अद्भुत और बहुत प्रशंसनीय सूर्य (उत) और (वातगोपं उरु अन्तरिक्षं) वायुसे रक्षण होनेवाला अन्तरिक्ष आदि सब (मयि तप्यमाने) मैं तप्त होने पर (इह ते तप्यन्तां) यहां वे सब तप्त होवें ॥ १ ॥

द्युलोक पृथ्वीलोक अंतरिक्ष लोक तथा इस ब्रह्माण्डमें रहनेवाले सब लोक लोकान्तर मेरे अनुकूल हों अर्थात् मेरे तप्त होनेसे व संतप्त हों और मेरे शांत होने पर वे भी शांत हों।

इद् देवा शृणुत ये यज्ञिया स्थ भरद्वाजो मह्यमुक्थानि शंसति ।
पाशे स बद्धो दुरिते नि युज्यतां यो अस्माकं मन इदं हिनस्ति ॥ २ ॥
इदमिन्द्र शृणुहि सोमप यत्त्वा हृदा शोचता जोहवीमि ।
वृश्चामि तं कुलिशेनेव वृक्षं यो अस्माकं मन इदं हिनस्ति ॥ ३ ॥
अशीतिभिस्तिसृभिः सामगेभिरादित्येभिर्वसुभिरङ्गिरोभिः ।
इष्टापूर्तमवतु नः पितॄणामामुं ददे हरसा दैव्येन ॥ ४ ॥
द्यावापृथिवी अनु मा दीधीथां विश्वे देवासो अनु मा रभध्वम् ।
अङ्गिरसः पितरः सोम्यासः पापमार्छत्वपकामस्य कर्ता ॥ ५ ॥
अतीव यो मरुतो मन्यते नो ब्रह्म वा यो निन्दिषत्क्रियमाणम् ।
तपूंषि तस्मै वृजिनानि सन्तु ब्रह्मद्विषं द्यौरभिसंतपाति ॥ ६ ॥

---

[२] हे (देवाः) देवो ! (ये यज्ञियाः स्थ) जो तुम सत्कार करने योग्य हो वे सब (इदं शृणुत) यह सुनो कि (भरद्वाजः मह्यं उक्थानि शंसति) यह भरद्वाज मुझको उत्तम उपदेश देता है। परन्तु (यः अस्माकं इदं मनः हिनस्ति) जो हमारे इस मनको बिगाडता है, (स दुरिते पाशे बद्धः नियुज्यताम्) वह पापके पाशमें बंधा जाकर नियममें रखा जावे ॥ २ ॥

हे सत्कार करने योग्य देवो ! सुनो । नियम यह है कि अन्न बढानेवाला ही पुरुषोंको उत्तम उपदेश करता है परंतु अन्न घटानेवाला बुरे विचारोंकी प्रेरणासे मनको दूषित करता है, उन पापियोंको पकड कर बंधनमें रखना उचित है ।

[३] हे (सोम-प इन्द्र) सोमपान करनेवाले इन्द्र ! (शृणुहि) तुम सुनो कि (यत् शोचता हृदा जोहवीमि) जो शोकपूर्ण हृदयसे मैं पुकारता हूं। (यः अस्माकं इदं मनः हिनस्ति) जो हमारा यह मन बिगाडता है (तं) उसको (वृक्षं कुलिशेन इव) वृक्षको कुल्हाडीसे काटनेके समान (वृश्चामि) काट डालूं ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! सुन कि जो मनको बिगाडता है उसका नाश करना योग्य है यह बात मैं हृदयके आवेगसे कहता हूं ।

[४] (तिसृभिः अशीतिभिः सामगेभिः) तीन छंदोंके अस्सी मंत्रों द्वारा सामगान करनेवालोंके साथ तथा (आदित्येभिः वसुभिः अङ्गिरोभिः) आदित्य वसु और अंगिरोंके साथ (पितॄणां इष्टापूर्तं नः अवतु) पितरों द्वारा किया हुआ यज्ञादिकर्म हम सब हमारी रक्षा करे। मैं (दैव्येन हरसा अमुं ददे) दिव्य तेजसे उसको पकडता हूं ॥ ४ ॥

जिसमें तीन छन्दोंके अस्सी मंत्रों द्वारा सामगान करते हैं, उस यज्ञमें वसु रुद्र आदित्योंके साथ पितरों द्वारा किया हुआ यज्ञयागादि शुभ कर्म हमारा रक्षक होवे । उन सत्कर्मोंसे हमारा मन शुद्ध रहे । जो पापी हमारा मन निर्बल करनेका यत्न करता है उसको मैं दिव्य बलसे पकडता हूं ।

[५] (द्यावापृथिवी मा अनुदीधीथां) द्युलोक और पृथ्वीलोक मेरे अनुकूल होकर प्रकाशित हों। हे (विश्वेदेवाः) सब देवो ! (मा अनु आ रभध्वं) मेरे अनुकूल होकर कार्य आरंभ करो । हे (अङ्गिरसः सोम्यासः पितरः) अंगिरस सौम्य पितरो ! (अपकामस्य कर्ता पापं आ ऋच्छतु) अनिष्ट कार्यका करनेवाला पापको प्राप्त हो ॥ ५ ॥

द्युलोक और भूलोकके अंतर्गत सब वस्तुमात्र मेरे अनुकूल हों । सब अग्न्यादि देव मेरे अनुकूल कार्य करें । हे पितरो ! अनिष्ट काम करनेवाला पापी बनकर पतित होवे ।

[६] हे (मरुतः) मरुतो ! (यः अतीव मन्यते) जो अपने आपको ही बहुत भारी समझता रहे (यः वा नः क्रियमाणं ब्रह्म निनित्सात्) अथवा जो हमारे किये जानेवाले ज्ञानकी निंदा करे । [तस्मै तपूंषि वृजिनानि सन्तु] उस कार्य उसके लिये तापदायक हों । तथा (द्यौः ब्रह्मद्विषं संतपाति) ज्ञानविरोधियोंको बहुत ताप देवे ॥ ६ ॥

हे मरुतो ! जो घमंडी मनुष्य अपने आपको ही सबसे बडा समझता है इतना ही नहीं परंतु हम जो ज्ञान प्राप्त करते हैं उसकी भी जो निंदा करता है उसको सब कर्म बाधक हों, क्योंकि जो ज्ञानप्रसारका विरोध करता है उसको दुःखदायक ताप देना ।

सप्त प्राण

१ प्राणा इंद्रियाणि ।

(ताण्ड्य ब्रा २।१४।२; २२।४।३)

२ सप्त शिरसि प्राणाः ।

(ताण्ड्य ब्रा २।१४।२; २२।४।३)

३ सप्त शीर्षन् प्राणाः । (शत ब्रा ९।५।२।८)

४ सप्त वै शीर्षन् प्राणाः ।

(ऐ ब्रा १।१७; ऐ ब्रा १। ।३।३)

(१) प्राण व इन्द्रियाँ ही हैं । (२-४) सिरमें सात प्राण अर्थात् इंद्रियाँ हैं । इस प्रकार यह स्पष्टीकरण सप्त प्राणोंका वैदिक वाङ्मयमें किया गया है । इससे सप्त प्राण ये सात इंद्रिय हैं इस विषयमें किसीको संदेह नहीं हो सकता । मंत्रोंके मतसे ये इंद्रिय दो आंख दो कान दो नाक और एक मुख मिलकर सात हैं और कईयोंके मतसे कान त्वचा नेत्र, जिह्वा नाक, शिश्न और मुख है इन सातोंके क्रमशः शब्द स्पर्श रूप रस गंध काम और भाषण ये सात भोग हैं । इनके कारण उत्तम मध्यम अथवा निकृष्ट गति इस मनुष्यकी होती है । दोनों मतोंका तात्पर्य इतना ही है कि जिन इन्द्रियोंके कारणसे यह मनुष्य वासनाओंके जालमें फंसता है और भोग भोगनेकी इच्छासे रोकने मनमें मग्न होता है वे सात इंद्रियोंकी कार्याएं मनके वशसे चलना चाहिये । जिस प्रकार माली अपने उद्यानके वृक्षोंको टेढा मेढा बढने नहीं देता उसी प्रकार इस शरीरके क्षेत्रमें कार्य करनेवाला यह जीवात्मा रूपी माली है उसको अपने उद्यानके इन सप्त वृक्षोंको टेढे मेढे बढने देना उचित नहीं है, वैसे बढने लगे तो ज्ञानकी कैंचीसे मर्यादासे बाहर बढनेवाली शाखाओंको काटकर उनको अपनी मर्यादामें ही रखना उचित है ।

इसका स्पष्ट आशय यह है कि ये ही इन्द्रिय यदि दुर व्यव हार करने लगे तो उनको अंकुशके नियमसे नियमबद्ध करके संयमपूर्वकशक्तिसे दमन करना चाहिये । इन्द्रिय दमनसे ही आध्यात्मिक शक्ति विकसित हो सकती है । उनका छेदनका तात्पर्य नहीं है ।

आठ ग्रंथी— इस आप मन्त्रमें (अष्टौ मन्याः) आठ ग्रंथि या धमनियां हैं उनको भी छेदन करनेका विधान किया है । ये आठ मज्जा ग्रंथियां हैं जनसे विलक्षण जीवन रस शरी रमें प्रसारित होते हैं । गुदा नाभि पेट, हृदय कण्ठ, तालु भ्रूमध्य, मस्तिष्क इन स्थानोंमें ये प्रमाण आठ मज्जा ग्रंथियां हैं और इनसे जो जीवन रस आता है उससे उक्त स्थानमें जीवन प्राप्त होता है । इनसे प्राप्त होनेवाला जीवन रस तो आवश्यक ही है परंतु यदि इसीसे हीन प्रवृत्ति होने लगी तो उस हीन वासनाका नाश करना चाहिये । देखिये गुदाके पासकी मज्जा ग्रंथीसे वीर्यके साथ जीवन रस प्राप्त होता है । इसीसे स्त्रीपुरुष विषयक काम होता है और इसके अतिरेकसे मनुष्य गिरता भी है, तथापि धर्ममर्यादाके अन्दर काम रहा और शेष ब्रह्मचर्य पालन हुआ तो यहांसे ही दिव्य शक्ति इच्छाशक्तिमें परिणत होती है । इसी प्रकार अन्यान्य ग्रंथियोंके विषयमें समझना चाहिये । इससे पाठक समझ गये होंगे कि जिस प्रकार बाहर दिखनेवाला इंद्रियोंका संयम आवश्यक है; उसी तरह इन ग्रंथि योंकी स्वाधीनता भी अत्यंत आवश्यक ही है । योगमें इसको ग्रंथिभेद, चक्रभेद आदि संज्ञाएं हैं । इसका अर्थ इतना ही है कि जिस प्रकार अपनी मनकी प्रेरणासे हाथ पांवका हिलना होता है; उसी प्रकार इन अष्ट ग्रंथियोंका कार्य भी अपनी इच्छानुसार हो । इंद्रियोंको और इन केन्द्रोंको पूर्णतया अपने आधीन रखनेका नाम यहां उनका छेदन है । यह श्रेष्ठ संयम है । और यही शाखाछेदन (शाखा वृश्चामि) ज्ञान रूपी शस्त्रसे होना संभव है । अब यहां मंत्रोंकी संगति देखिये—

संयमका मार्ग— १ समिद्धे जातवेदसि पद = जिसने प्रदीप्त जातवेद अर्थात् ज्ञान अग्निमें अपना स्थान स्थिर किया है (मं ८) । २ अग्निः शरीरं वेवष्टु = जिसके शरीरके रोमरोममें यह ज्ञानाग्नि व्यक्त हुआ है (मं ८) । ३ वाग् अपि अस्तु गच्छतु = जिसकी वाणी भी प्राणमय रूपको अर्थात् जीवित दशाको प्राप्त हुई है । (मं ८) । ४ सप्त प्राणान् वृश्चामि = सप्त प्राणोंका अर्थात् सप्त इंद्रियोंका शाखा छेदन जिसने किया है अर्थात् इन्द्रियोंको वशमें किया है (मं ७) । ५ अष्टौ मन्यान्वृश्चामि = आठ मज्जा केन्द्रोंका भी छेदन किया है अर्थात् अष्ट चक्रभेद द्वारा उनको वशमें किया है ।

मरनेकी विद्या— यही आत्मिक बलसे बलवान् होना और यही मृत्युका भय दूर करेगा अथवा निडर होकर यमके घर जायगा । सब प्राणी मरते ही हैं, परंतु निडर होकर मरना और बात है और डर डरके मरना और बात है । सब लोग मृत्युसे डरते रहते हैं मृत्युका डर हटानेकी विद्या इस सूक्तने कही है । देखिये मंत्रके शब्द—

मर्चकृतः मासिकृतः यमस्य सादनं अयाः (मं ४)

(अर्चकृत) अर्चकृत (मधि-) ज्ञानप्रिय (कृतः) सेवक बनकर यमके घर आ। क्योंकि अब तुम्हें यमका भय कर नहीं है जो अज्ञानावस्थामें था। वह मृत्युका डर इससे दिया है। मानो यह मरनेकी विद्या है। जीवित दशामें यह विद्या प्राप्त करना चाहिये। जिसने इंद्रियोंका संयम किया है, जिसने अपनी जीवन शक्तियोंको अपने आधीन किया है जिसका जीवन ज्ञानसे परिशुद्ध प्रशस्ततम कर्ममय हुआ है और जो सत्यज्ञानके प्रचारके लिये अपने आपको समर्पित करता हुआ अपना जीवन ही ज्ञानप्रभुमें समर्पण करता है क्या कभी यह मृत्युसे डर सकता है ! यह तो निडर होकर ही मृत्युके पास पहुँचेगा। इसी प्रकार देखिये—

निर्भय ऋषिकुमार— कठोपनिषदमें कहा है कि, नचिकेता ऋषिकुमार यमके पास गया था। वह तीन रात्रि यमके घर रहा उसको देखकर यमको भी भय मालूम हुआ। उसको प्रसन्न करनेके लिये यमने तीन वर दिये। वे तीन वर मानो तीन प्रकार शक्तियां थीं परन्तु इस ऋषिकुमारने इन तीन शक्तियोंसे अपने भोग नहीं बढाये, परन्तु ज्ञान प्राप्तिमें ही इन शक्तियोंका व्यय उसने किया। यमने नाना भोग उसके सम्मुख रखे परन्तु ऋषिकुमारने अपने ज्ञानसाधनसे भावना रूपी शस्त्र-ओंका छेदन किया था इसलिये भोगोंको स्वीकारनेकी रुची नहीं थी भोगोंको छोडकर ज्ञान प्राप्तिकी ही उसने इच्छा की और इस ज्ञानशक्तिसे अन्तमें उसने ज्ञान प्राप्त किया। यमके पास बराबरीके नातेसे वह ऋषिकुमार रहा बराबरीके नातेसे बोला और बराबरीके साथ वहांसे वापस आया। ऐसा क्यों हुआ ? पाठक ! विचार तो कीजिये। नचिकेता ऋषिकुमार अभिका दूत बनकर ज्ञानका सेवक बनकर मोक्षप्राप्तिका ज्ञान करके यमके पास गया था, इसलिये वह निडर था। जो लोग भोगप्राप्तिके बदले पाप करते न डरते हुए जाते हैं इसलिये पकडे जाते हैं। यही भय है साधारण मनुष्य और ज्ञानीकी मृत्युमें। यही वेदको अनुमित है।

आत्मवद्भाव। एकके दुःखसे दूसरा दुःखी।

यहां तक जो आत्माकी शक्तिका वर्णन किया है उसपर विचार करनेसे ज्ञानीकी उच्चावस्थाकी कल्पना पाठकोंको हो सकती है। तब ज्ञानीके मनमें आत्मवद्भाव इस समय जागृत और जागत होता है तब मनोंमें वह आत्मसमान भावना देखने लगता है। जो जैसा सुख दुःख इसको होता है वैसा ही सुख दुःख दूसरोंको होता है ऐसा इसका भाव इस समय बन जाता है। वह अपनेमें और दूसरोंमें भेद नहीं देखता, दूसरोंके दुःखसे अपनेको दुःखी और दूसरोंके सुखसे अपनेको सुखी मानने तक उसकी उच्च मनोवस्था इस समय बन चुकी होती है। इसलिए जिस समय यह सचमुच सन्तप्त होता है उस समय सब अन्य प्राणीमात्र सन्तप्त हो जाते हैं। जब दूसरोंका दुःख ज्ञानी मनुष्य अपनेपर लेने लगता है, और सब जगत्के दुःखका भार उठानेसे जीवनरता है उस समय इसके दुःखमें भी सब जगत् हिस्सेदार होता है। यह नियम ही है। यह परस्पर संवेदनाका स्वाभाविक नियम है। जिस प्रकार तारमें मिलती हुई तम्बुरेकी तार एक बजाई जानेपर अन्य सब तारें बजने लगती हैं इसी प्रकार यह ज्ञानीके सर्वात्मभावसे जीवन के सब जगत्के साथ समान संवेदना उत्पन्न होती है। यह आत्मवद्भाव की परम उच्च अवस्था है। यही इस सूक्तके प्रथम मंत्रमें बताई है—

मयि तप्यमाने त इह तप्यन्तां। (मं १)

मेरे सन्तप्त हो जानेपर वे यहां संतप्त हों। इसी अन्तरिक्ष द्युलोक भीतका भूभाग मेघमंडल पूर्व आदि जितना भी कुछ स्थान है और उस संपूर्ण स्थानमें जो भी भूत मात्र हैं उनके हितोंको मैं अपने ऊपर लेता हूं जगत्को सुखी करनेके लिये मैं अपने आपको समर्पित करता हूं, मैं जगत्को दुःखी नहीं देख सकता जगत् सुखी हो और उसका दुःख मुझपर आजाय इस प्रकारकी भावना जिसके रोम रोममें भरी है जिसके दैनिक जीवनमें उतरी गई है, वह अपने आपको जगत्के साथ एकरूप देखता है, जगत्को अपने आत्माके समान समझता है या यों कहो कि वह जगत्के दुःखसे दुःखी होता है। ऐसा महात्मा जिस समय संतप्त होता है उस समय सब भूत भी सन्तप्त हो जाते हैं। यह अवस्था प्रथम मंत्रद्वारा बताती है।

यह मनुष्यकी उन्नतिकी परम उच्च अवस्था है, इस अवस्थामें पहुंचा हुआ ज्ञानी दूसरोंके दुःखोंसे दुःखी होता है और इसके दुःखसे भी सब दूसरे दुःखी होते हैं। इस पूर्ण अवस्थामें जगत्के साथ इसकी समान संवेदना होती है। मनका बल बढते बढते और आत्माकी शक्ति बढते बढते मनुष्य यहांतक ऊंचा हो सकता है। अब जो लोग इस ज्ञानमार्गके विरोधी

होते हैं उनकी भी क्या अवस्था होती है यह देखना है—

ज्ञानके विरोधी। जो ज्ञानके विरोधी होते हैं जो अपने मनसे गिराने योग्य कार्य करते हैं जो दूसरोंके मनोंको निर्बल करनेके उद्योगमें रहते हैं उनकी दशा क्या होती है यह इस सूक्तके मंत्रोंके शब्दोंसे ही देखिये–

१ यः मतीव मन्यते = जो अपने आपको ही बलसे ऐसा समझता है अपनेसे और अधिक श्रेष्ठ कोई नहीं है ऐसा जो समझता है, (मं १)

२ क्रियमाणं नः ब्रह्म यः निनित्सात् = किया जाने वाला हमारा ज्ञानसंग्रह जो निंदता है हमारे ज्ञानसंपादन प्रयत्न और ज्ञानवर्धनके प्रयत्नोंकी जो निंदा करता है (मं १)

३ वृजिनानि तस्मै तपूंषि सन्तु = सब कर्म उसके लिए तापदायक हों उसको हरएक कर्मसे बडे कष्ट होंगे किसी भी कर्मसे उसको कभी शांति नहीं मिलेगी (मं ७)

४ द्यौः ब्रह्मद्विषं अभि सं तपाति = प्रकाशमान द्युलोक ज्ञानके विरोधीको चारों ओरसे संतप्त करता है ज्ञानके विरोधीको किसी ओरसे भी शांति नहीं मिल सकती (मं ७)।

ज्ञानके विरोधी (ब्रह्मद्विष्) का उत्तम वर्णन इस मंत्रमें हुआ है यह इतना स्पष्ट है कि इसका अधिक स्पष्टीकरण करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। अल्पाधिक घमंड करना भी अज्ञान या मिथ्या ज्ञानका ही द्योतक है और यह अत्यंत घातक है। यदि स्वयं ज्ञानवर्धनका प्रयत्न कर नहीं सकते तो न सही परंतु दूसरे कर रहे हैं उनका तो विरोध करना नहीं चाहिये। परंतु यदि स्वयं मिथ्याज्ञानसे मलीन हुआ मनुष्य दूसरे ज्ञानियोंको सताने लगे तो वह अधिक ही गिर जाता है। इस प्रकार गिरनेवाले अज्ञानी मनुष्यका हरएक प्रयत्न कष्टवर्धक ही होता है उसके कर्मसे जैसे उसके कष्ट बढते हैं वैसे अन्य लोगोंके भी कष्ट बढते हैं क्योंकि उसके अज्ञान और मिथ्याज्ञानके कारण वह जो करता है वह भ्रांत चित्तसे ही करता है इस कारण जैसा उसका नाश होता है वैसा उसके साथ संबंध रखनेवालोंका भी नाश हो जाता है। यह बात इस छठे मंत्रने बताई है। अब इस बुरे कर्मके कर्ताकी अवस्था आगेके चार मंत्रोंने बताई है, वह देखिए—

१ अपकामस्य कर्ता पापं मा ऋच्छतु। (मं ५)
२ यः अस्माकं इदं मनः हिनस्ति स दुरित पाशैः बद्धः निपुष्यताम्। (मं २)
३ मधुं दैव्येन हरसा माद्र्ये (मं ४)
४ यः अस्माकं इदं मनः हिनस्ति तं कुलिशेन वृश्चामि। (मं ३)

(१) इस कुकर्मके करनेवालेको पाप लगे। (२) जो हमारा मन बिगाडता है उसको पापके पाशमें बांधकर नियममें रखा जावे। (३) उसको दिव्य क्रोध या बलसे पकड रखता हूं। (४) जो हमारे इस मनको बिगाडता है उसको शस्त्रसे काटता हूं।

ये चार मंत्रोंके चार अंतिम वाक्य हैं ये एकसे एक अधिक दण्ड बता रहे हैं। पहिले वाक्यमें कहा है कि उसको पाप लगे। दूसरे वाक्यमें कहा है कि उसको बांधकर नियममें रखा जावे यहां नियममें रखनेका आशय कारागृहमें रखनेका है। तीसरे वाक्यमें देवताओंका कोप उसपर हो ऐसा कहा है और चतुर्थ वाक्यमें शस्त्रसे उसका सिर काटनेकी बात कही है। यह एकसे एक बडी सजा किसको दी जाय इस विषयका योग्यायोग्य विचार यहां करना चाहिए। मनको बिगाडनेका पाप बडा भारी है परंतु जो एक बार ही इस पापको करता है और एक मनुष्यके संबंधमें करता है उसका अपराध न्यून है और जो मनुष्य अपने विशेष संघद्वारा दूसरी जातिका मन बिगाडनेका प्रयत्न करता है, या जातिकी ज्ञान प्राप्तिमें बाधा डालता है उसका पाप बड कर होता है। इस प्रकार तुलनासे पापकी न्यूनाधिकता समझनी योग्य है और अपराधके अनुकूल दण्ड देना उचित है। यह दण्ड भी व्यक्तिने देना नहीं होता प्रत्युत राजसभा द्वारा देना होता है।

दूसरेकी ज्ञानवृद्धिमें बाधा डालना बडा भारी पाप है इससे जैसी दूसरेकी वैसी स्वयं अपनी भी अवनति होती है। इसलिये कोई मनुष्य इस प्रकारका पापकर्म न करे।

आनुवंशिक संस्कार— इसके पहिली बात आनुवंशिक संस्कारकी है। जिसका वंश शुद्ध होता है जिसके वंशमें सत्पुरुष हुए हैं जिसके मातापिता शुद्ध अंतःकरणके होते हैं अर्थात् जब जनसे जिसके घरमें शुद्ध धार्मिक वायुमंडल होता है वह अज्ञान में पड जानेका संभव कम है इस विषयमें मंत्र कहता है—

तिसृभिः अशीतिभिः सामगेभिः वसुभिः आङ्गिरसेभिः आदित्येभिः पितॄणां इष्टापूर्त नः अवतु ॥ (मं ४)

वसु, रुद्र, आदित्य देवोंका सम्मानपूर्वक हमारे द्वारा किया हुआ यह याग आदि शुभ कर्म हमें बचावे। परिवारमें जो भी प्रशस्ततम कर्म होता है वह निःसंदेह पारिवारिक जनोंको बुरे संस्कारोंसे बचाता है। मातापिताओंका किया हुआ शुभ कर्म इसी प्रकार बालकोंको शुभ धर्मपथपर सुरक्षित रखता है। येही आनुवंशिक शुभसंस्कार हैं। हम यह नहीं कहते कि जिनके ऐसे शुभ संस्कार नहीं होंगे वे अधम मार्गपर ही जाते रहेंगे परंतु हम यही कहते हैं कि ये शुभ कर्म अवश्य सहायक होते हैं। इसलिये परिवारोंके मुख्य पुरुषोंको उचित है कि वे स्वयं ऐसे कर्म करें कि जिनसे उनके पारिवारिक जनोंपर शुभ संस्कार ही होते रहें यह उनका आवश्यक कर्तव्य है।

शुद्ध प्रार्थना।

आनुवंशिक संस्कार अपने आधीन नहीं होते क्योंकि उन कर्मोंके करनेवाले दूसरे होते हैं। इसलिये यदि वे अच्छे हुए तो अच्छा ही है परंतु यदि वे बुरे संस्कार हुए तो भी कोई डरनेकी बात नहीं है। स्वयं अपनी शुद्धिका प्रयत्न करनेपर निःसंदेह सिद्धि मिलेगी। इस दिशासे आत्मशुद्धिके प्रयत्न करनेके लिये ईशप्रार्थना मुख्य साधन है परन्तु यह प्रार्थना हृदयके अन्तस्से ही होनी चाहिये इस विषयमें इस सूक्तके शब्द यहां मनन करने योग्य हैं—

हे सोमप इन्द्र! शृणुहि। यस्त्वा शोचता
हृदा आदर्धामि ४ (मं १)

हे ज्ञानियोंके रक्षक प्रभु! तुझे जो मैं जलते हुए हृदयसे तुझसे कह रहा हूं। हृदयके अंदरसे आवाज आनी चाहिये अपनी पूर्ण भावनासे प्रार्थना होनी चाहिये, हृदयकी उष्णतासे तपे हुए शब्द होने चाहिये अर्थात् हृदयसे प्रार्थना निकलनी चाहिये। ऐसी प्रार्थना अवश्य सुनी जाती है। यथा—

ये यज्ञियाः इम तं देवा हवं शृणुत। (मं २)

जिनका यजन किया जाता है वे देव मेरी प्रार्थना सुनें! इस प्रकार देवोंके विषयमें भक्तिभावसे साथ किये शब्द निकलें तो वे सुन लेते हैं तथा—

द्यावापृथिवी मा भवतु दीर्घायाम्।
विश्वदेवासो मा अन्याभवतम्॥ (मं ५)

द्यावापृथिवी तुझे अनुकूल होकर उत्साहित करें और सब देव तुझे अनुकूल होकर सम्मोहित करें। अर्थात् देवोंकी कृपासे मेरा मन प्रसादित हो और देवोंकी अनुकूलताके साथ मेरा कर्म चलता रहे। कोई भी ऐसा कर्म मुझसे न होवे कि जो देवताओंके प्रतिकूल या विरोधी हो। मेरे अन्तःकरणमें देवताओंकी कृपासे शुभ स्फूर्ति होती रहे, उस स्फूर्तिके अनुकूल ही मुझसे उत्तम कर्म होते रहें। देवोंके साथ अपने आपको एकरूप करना चाहिये और इस प्रकार अपने आपको देवतामय अनुभव करना चाहिये।

अपने शरीरको देवोंका मन्दिर करना चाहिये तभी यहां अशुभ विचार नहीं आवेंगे और सदा यहां देवी शुभ विचार ही कार्य करेंगे। इस प्रकार देवोंका वास्तव निवास अपने विचारोंके अन्दर भावरूपसे होने लगा तो फिर अपने मानसिक उन्नतिकी सिद्धि होनेमें देरी नहीं लगेगी और जो जो फल मानसिक शांति और आत्मोन्नतिके इस सूक्तके प्रारंभिक विवरणमें कहे हैं वे सब उस उपासकको अवश्य प्राप्त होंगे।

अथर्ववेदमें भरद्वाज ऋषिके मन्त्र

ऋग्वेदमें	अथर्ववेदमें
६।१७।१	१।८।१
६।२५।१-११	२।१६।१-११
६।७३।१-३	१।९।१-३

ये मन्त्र दोनों स्थानोंपर समान हैं इसलिये पुनः विवेचन आवश्यकता नहीं है। भरद्वाज ऋषिके ऋग्वेदीय मंत्रोंमें पाठक देख सकते हैं। इसलिये इन मंत्रोंका अर्थ और स्पष्टीकरण यहां देनेकी पुनः कोई आवश्यकता नहीं है।

ईश्वर

४ देवस्य यज्ञं नमसा उपस्थ— ईश्वरके यज्ञको नमस्कार करके प्राप्त करो।

२१४ त्वा महान्तं अर्चामसि— तुझ महान्की पूजा करते हैं।

२१५ यान् एव विद्म तान् अर्चामि— जिनको जानते हैं उनकी उपासना करते हैं।

२१६ त्वावान् त्वदन्यः नास्ति— तेरे जैसा सामर्थ्यवान् दूसरा कोई नहीं है।

२४१ एकः इन्द्रः इत् आभिः गीर्भिः हव्यः— एक ही प्रभु है जो इन मंत्रोंसे प्रशंसित होने योग्य है।

२४२ तं इन्द्रं अभ्यर्चे— उस प्रभुकी मैं प्रार्थना करता हूं।

१११ यः वृषभः कृष्टीनाम् सत्यः— जो बलवान्, कर्म कर सत्य है।

२४१ सत्रा पुरुमायः सहस्वान् पत्यते— यह प्रभु बलवान्, कुशल समर्थ है इसलिये उसकी स्तुति की जाती है।

१५० दिव्यस्य जनस्य पार्थिवस्य जगतः राजा भुवः— द्युलोक तथा भूलोकमें रहनेवाले जगोंका यह एक राजा हुआ है।

१५१ अस्य कर्णा दूरात् चित् आ शृणुतः— इसके कान दूरसे भी सुनते हैं।

१५५ यज्ञः ब्रह्म गिरः इन्द्रं वर्धात्— यज्ञ ज्ञान और वाणियां प्रभुकी महिमा बढाती है।

१५५ एन यामन् उपसः अक्तो। यावा मासाः शरदा वर्धान्— इस प्रभुकी महिमाको प्रहर, उषा रात्री दिन महिने और वर्ष बढाते हैं।

११९ पथियानां प्रथमः आगाहि— पूजनीयोंमें प्रथम होकर आओ।

४०१ वचपर्शंसिनः कृण्वोषि— भीरोंको प्रशंसक बनाता है।

५१५ वीराय तवसे तुराय प्र भज— वीर और बलसे त्वरासे कर्म करनेवाले (ईश्वरके पास) जा।

ईश्वरका यहां वर्णन है। यह देखने योग्य है। तेरेसे भिन्न तेरे जैसा दूसरा कोई नहीं है। तू ही सबसे बलवान् है। इसके कान दूरसे भी सुनते हैं। यह ईश्वर पूजनीयोंमें पहिला है यह एक है और यह सबसे बलवान् है। '

इस वचनसे पाठक जान सकते हैं कि ईश्वरका स्वरूप कैसा है। ये सूक्तियोंके वाक्य सामुदायिक मनन करनेके लिये बडे उपयोगी हैं।

तारक प्रभु

१ तरणे ! त्वं पारयः त्राता भूः— हे तारक प्रभो ! तू ज्ञान देकर तारण करता है।

११ पूषस्य वृष्णः अरुषस्य जातवेदसः सहः प्रबोर्व— सर्वव्यापक बलवान् तेजस्वी ज्ञानी प्रभुके बलका वर्णन मैं करता हूं।

११ व्रतानि अरक्षत— नियमोंका पालन वह करता है।

११ व्रतपाः सुक्रतुः वैश्वानरः— नियमोंका रक्षण करनेवाला उत्तम कर्म करनेवाला हो सब मानवोंका हित करता है।

१४ वैश्वानरः विश्व कृण्वन् ममत्त— सब मानवोंका हित करनेवाला नेता सब जग अपनेमें धारण करता है।

११९ गृहपतिः जातवेदाः राजा विश्वा जनिमा वेद— घरका ज्ञानी राजा सब प्राणियोंको जानता है। सब जन्मोंको जानता है।

११९ देवानां उत मर्त्यानां यजिष्ठः— देवों और मर्त्योंमें यह पूज्य है।

इन सूक्तियोंमें तारक प्रभुका वर्णन है। ' देवों और मर्त्योंमें यह पूजनीय है। यह सब विश्वको अपनेमें धारण करता है। सबके जन्म यह प्रभु जानता है।

राजा

२४० दाशाय मनु उपर ब्रह्म— अनुभव प्राप्त कर नेके लिये मननशील शासकको ऊपर किया है। राजाके स्थान पर रखा है।

११६ जगतः चर्षणीनां राजा अभवः— तू जगत्का और मानवोंका राजा हुआ है।

११७ त्वं कृष्टीनां एकः अभूः— तू मनुष्योंका एक राजा है।

११७ हस्तयोः कृष्टीः आ अधियाः— तू अपने हाथोंमें प्रजाजनोंको रखता है।

१४५ जनानां असमः पतिः अभूय— तू लोगोंका अनुपम पति हो।

१४५ विश्वस्य भुवनस्य एकः राजा— तू सब भुवनोंका एक राजा हो।

परमेश्वर सब भुवनोंका एक राजा है। लोगोंका सच्चा पति है। जनोंका एक मात्र रक्षक है। स्थावर जंगमका एक स्वामी है। ये वर्णन प्रभु एक है यह निःसंदेह बता रहे हैं।

सबसे पूज्य

५ विक्षु प्रियः सपर्येण्यः— प्रजाजनोंमें पूज्य राजा है वही सम्मानके योग्य होता है।

५ दमे दीप्यमान ऊर्ध्वाः नमसा उप आ सदेम— अपने स्थानपर तेजसे चमकनेवाले नेताको झुकके होकर प्रणाम करते और उसके पास बैठते हैं।

१० विक्षु ईड्यः आसि— प्रजाजनोंमें तू प्रशंसनीय है।

१० पुरि जूर्यः हर्म्यः इव— नगरमें वृद्ध मनुष्य जैसा प्रिय होता है वैसा तू प्रिय है।

९१ सूनुः न ययपावः— पुत्रके समान (पिता तप और धनसे) शुभ स्थिति प्राप्त करनेवाला ।

१५ यस्य महत्वं पनयन्ति— जिसके महत्त्वका वर्णन करते हैं ऐसा धन ।

७२ मर्त्येषु इदं अमृतं ज्योतिः— मनुष्योंमें यह अमर ज्योति है ।

७९ मर्य ध्रुवः अमर्त्यः मा निषत्तः तम्वा वर्ध मानः अजे— यह स्थिर अमर यहां रहा है जो सर्व बढता हुआ प्रकट हुआ है ।

८४ तप स्वां तन्वं पसस्व— अपने शरीरको मत कर । सत्कार्यमें अपने शरीरको लगाओ ।

११० पुताम्र मर्तीरिव स्वध्वर सत्यार्ह विप्रं शुम वचसं मर्तीतं अग्नि भजसे— तेजस्वी पूज्य शुभरूप स्थानको देनेवाले हिंसारहित कर्मके कर्ता ज्ञानी ओजस्वी उपदेश करनेवाले श्रेष्ठ अग्नि-अग्रणीका सत्कार करो ।

१११ शुचिं पावकं ध्रुव विप्रं पुरुयारं अमृत कवि जातवेदसं स्तुतिः ईमहे— शुद्ध पवित्र स्थिर ज्ञानी लोकप्रिय, अर्थात् विद्वान् वेद प्रकाशित करनेवालेकी हम प्रशंसा करते हैं ।

११४ अमृतं पायुं जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा निषेदिरे— अमर, रक्षक जागृत वैभवयुक्त प्रजापालकको नमन करते हैं ।

मर्त्योंमें यह अमरज्योति है । यह शुद्ध है पवित्र है अमृत रूप है जागृत है विभु है प्रजाओंका पालक है । नमनसे जैसा हृद पूज्य होता है वैसा विनय करने हद होनेके अपरन पूज्य है । वंदनीय है ।

वन्दनीय

१६ भूणो ! वन्द्य असि— शुभ कर्मके प्रेरक ! तू वन्दनीय है ।

११ अमसद्धा अनुषा नम अजम यजे— अन्तर्गत अन्नके साथ रहनेवाला नमस्कार नमन करके ही उत्तम अन्न भार पर देता है ।

१०१ भूमिः सुधीर उष्यसे— उत्तम मनुष्य उत्तम हेतु करते हैं ।

५६१ नानार्द मविनार्द धूर्द शार्द सुहर्षं पुरुद्धुतं इन्द्रं जपामि— नाना रक्षक धर, गामप्रवाम मदम दुःखसे योग्य शत्रुओं द्वारा बुलाये जानेवाले इन्द्रवीरको हम बुलाते हैं ।

शासक ज्ञानी

८ विशां विश्पतिः कविः— प्रजाओंका पालक ज्ञानी हो ।

८ द्रयमन् पावकः रयीणां राजन् पजतः— अन्न तथा धन देनेवाला पवित्रता करनेवाला धनोंका प्रकाशक पूजनीय शासक हो ।

८ चर्षणीनां प्रेतीपाविः— प्रजाजनोंके पास जाकर उनकी स्थिति देखनेवाला शासक हो ।

६५ विशः अग्निमर्थं राजानं उपतस्थुः— प्रजाएं प्रशंसा योग्य राजाके पास जाकर उपस्थित होती हैं ।

६६ अजरं राजानम्— राजा जरारहित तरुण उत्साही हो ।

१४९ शुचिमता राजानः— पवित्र नियमसे चलनेवाले राजे हों ।

अग्रगामी नेता

१४१ पथिकृत् विचक्षणः सः सुगेषु उत दुर्गेषु नः पुरएता बोधि— सन्मार्ग बनानेवाला ज्ञानी सुगम तथा दुर्गम मार्गोंमें अग्रगामी होकर मार्गदर्शन करे ।

गति

९१ तायुः न जघनः स्यन्द्रः वि-पितः वरीयान्— चोरके समान दौडनेमें प्रवीण विमुक्त होनेपर अधिक दौडता है ।

दर्शनीयता

१ दृशः— दर्शनीय बन । काम तेरे पास देखें ऐसा तू अपना रूप सुन्दर बना ।

४ ते भद्राणां संदृशो रण्यन्त— वे कल्याणकारक वीरदेखमें रमते हैं ।

७९ दृक्ष्मवर्णा परिज्मा इव असि— दर्शनीय तेजमें युक्त होकर चारों ओर जानेवाले वीरके समान तू रहता है ।

देवत्व प्राप्ति

९ देवयन्तः नरः— देवत्व प्राप्तिके अनुष्ठान करनेवाले नेता या श्रेष्ठ हों ।

९ सुधनः देवयन्तः सुप्रायणः— उत्तम बुद्धिमान् उत्तम प्राप्त करनेवाले सुख प्राप्त करते हैं ।

९५ स देवयुः सह ज्योतिः नशते— वह देवत्व प्राप्त करनेवाला विशेष तेजस्विता प्राप्त करता है।

१०४ देववीतये स्वस्तये ऋतावृधः अमृतान् वक्षि— देवत्वकी प्राप्तिके लिये और कल्याणके लिये सत्यको बढानेवाले अमर विबुधोंको यहां ले आ।

११० मा देववन्तं दृधि— मुझे देवोंसे युक्त कर।

देवत्व प्राप्ति करनेके लिये मनुष्यका जन्म है। देवोंके गुण मनुष्यने मानकर अपने जीवनमें ढालने चाहिये।

नमस्कार

१० महे नमोभिः विधेम— बडेके लिये नमस्कार करते हैं।

७१ तमसि दस्यिवांसं त्वा विश्वेदेवाः नमसस्यन्— अन्धकारमें रहनेवाले तुझे सब देव नमस्कार करते हैं।

८१ रातहव्याः पञ्चजनाः सुमयसासं नमसा सपर्यन्ति— दान देनेवाले पांचों प्रकारके लोग बलशाली वीरको नमस्कारसे पूजते हैं।

१०१ उत्तानहस्तः नमसा आविवासेत्— हाथ ऊपर नमस्कार करके सेवा कर।

ईश्वरको प्रणाम करना चाहिये। प्रणामसे उसका आदर होता है। हाथ उठाकर नमस्कार करना योग्य है।

उत्तम बुद्धि

११ देवान् नः सुमतिं योक्षः— विबुधोंके पास हमारी उत्तम बुद्धिको पहुंचाओ। हमारा शुभसंकल्प ज्ञानी जान जावें।

८९ रवे यदि धिषणा जन्या— तुझ (प्रभुकी) इच्छा करनेवाली बुद्धि जन्म दे।

१०१ प्रचेताः यवस्तमः ऋतिः— ज्ञानी कर्मप्रवीण बना देता है।

११५ धीतिं सुमतिं आवृणीमहे— धारणावती बुद्धि धर्मशाल और उत्तम मतिको धारण करते हैं।

१५१ मर्ताः सुवृक्ति आ अनाश— मनुष्य उत्तम स्तवन करे।

२१३ पर्वीनां पृषुः वर्षिष्ठे मूर्धन् अधि अस्थात्— निवास करनेवालोंमें सुयश श्रेष्ठ स्थानपर विराजता है।

ज्ञान वृद्धि प्राप्त करके मनुष्यको अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करनी चाहिये।

अक्रोध

९६ मधुके अन्तः स्रेधि— क्रूरतारहित अन्तःकरणके साथ रह।

१०९ स मधुका त्वं वक्षस्य वृषः भूः— वह तू क्रोधरहित होकर इस मनुष्यको बढानेवाला होता है।

क्रोध मनुष्यके शरीरके जीवन रसका नाश करता है इस लिये क्रोध दूर करना उचित है।

जागृत रहो

१ जागृवांसः ऋतस्य अभि अनुग्मन्— जागते हुए देवकी सम्मतिका अनुसरण करो।

१७ अक्तोः देवस्यतः शुरुधः न वसतिः यवेभा: कुशविद् रण्वः— रात्रीके समय मनसे नम्र करनेवाले प्राणीके पापको दूर करनेवाला वह वीर जनवसतिमें रहे अथवा वनमें रहे कहां भी रहा तो भी वह रमणीय होता है।

१९५ जात शिशुं न हस्ते आ बिभर्ति— नवजात बालकको जैसे (सावधानीसे) हाथमें पकडते हैं।

ज्ञान

१७ यः पारम निर्तिधि— जो अज्ञान निवारक ज्ञानको फैलाता है।

१०० विद्वायाः नः पथा— विशेष ज्ञानी हमें उपदेश करें।

१०० विश्वाभिः गीर्भिः पूर्तिं अभि अश्याः— सब उत्तम भाषणोंसे हम पूर्णता प्राप्त करें।

१०७ अनुषा शुचिः— अन्नसे शुद्ध रह।

१११ प्रियं अतिथिं गृणीषणि— प्रिय अतिथिकी प्रशंसा कर।

११९ भविष्णांसः विदुष्टरं सुप्रतीक सुदृश स्वञ्चं सपेम— हम अज्ञानी हैं इसलिये हम अत्यंत ज्ञानी उत्तम शरीरवाले सुन्दर और प्रगतिशील नेताकी सेवा करते हैं।

११६ विश्वा वयुनानि विद्वान्— सब कर्मोंको जानो।

११७ कपय धीतिं आनट् त पासि पिपर्षि— ज्ञानीकी सेवाके लिये जो कर्म करता है उसकी तू सुरक्षा करता है और उसकी इच्छा पूर्ण करता है।

११७ निशिति उशिति आनट् तं रायसा रायाः पृणासि— जो तपस्याके लिये कर्म करता है उसको तू अपने बल और धनसे परिपूर्ण करता है।

१४१ तव त्यत् इस वृषसे— तू उत्तरोत्तर अधिक बल धारण करता है।

१४१ सद्यः कृणवसे— अपने लिये तू स्थान करता है।

१७७ अनूर्म महां तवसं विभूतिं मत्सासं जर्हृषाणम्— जिसकी शक्ति कम नहीं होती ऐसे महान् सामर्थ्यवान्, विभूतिमान् शत्रुका नाश करनेवाले वीरको वे आनंदित करते हैं।

१८१ तवस एकं पुरः दधिरे— सामर्थ्यवान् एक वीरको आगे रख दिया। अपना नेता बनाया।

१८१ यत् अदेवः देवान् अभ्यौहिष्ट— जब असुर देवोंपर हमला करते हैं (तब युद्ध होता है।)

२११ विश्वतः वृषभः शुष्मः अर्वाङ् अभि आ समेतु— चारों ओरसे बल बढानेवाला सामर्थ्य हमारे पास आ जावे।

३६० अयं दधानः अच्युतः अदोचयत्— यह वीर तेजस्वी होकर तेजोहीनोंको भी तेजस्वी करता है।

३८७ महा वपुः दधानः वर्चोभिः देभ्यः, रुहाये वि भाया— बडा शरीर धारण करता अपने भाषणोंसे प्रशंसित होकर प्रसन्न होना योग्य है।

३८८ युमत्तमं दक्षं धेहि— तेजस्वी बल स्थापन कर।

४४१ ऋष्टीषु यत् ओजः नृम्णं च यत् पञ्च क्षितीनां द्युम्नं सत्रा विश्वानि पौंस्या तत् आभर— मानवोंमें जो बल और शौर्य है, जो पंचजनोंमें तेज है, जो सामर्थ्य साथ रहते हैं, वह हमें दे दो।

४४४ यत् वृष्ण्यं तत् पुरस्तु अभिमान् तुर्वणे नृषाह्ये असमर्थ्यं दिदीहि— जो बल है वह युद्धमें शत्रुओंका नाश करनेके लिये हमें दे दो।

बुद्धिपूर्वक कर्म

१ धियः होता अप्रवाः— बुद्धि लगाकर कर्म कर।

१० शुचतः धीः भीमा आ पाति— तेजस्वी वीरकी बुद्धि और भाषणके लिये भयानक होती है।

४६ इषितः सः तूयं तत् कृधि— प्रेरित होकर तू उन कर्मोंको शीघ्र प्रेरणा कर।

१०१ मर्त्यः युवा धियं धीतिभिः जुजोष— मनुष्य आशीर्वादके कारण अपनी बुद्धिमें रखे।

११५ उभयान् अनुमता विभूषन्— दोनों प्रकारके प्रमाणोंके अनुकूल आचरण करनेवालोंको सुभूषित करो।

३५४ वाजपेयाः विश्वपेयाः सुक्रतु— वेदज्ञान प्राप्त करे विशेष दृष्टि धारण करे और उत्तम कर्म करे।

४६० अयसः धारां न धियं चोदय— तलवारकी धाराके समान मेरी बुद्धिको सत्कर्ममें प्रेरित कर।

५११ धियं धियं प्र सीषधाति— प्रत्येक बुद्धिपूर्वक किये कर्म सिद्ध होते हैं।

५५४ विश्ववाराणां सुमतयः स्याम— सर्वदा उत्तम मतवाले हम हों।

५६१ परिवादस्यापि वचांसि वः मा वोचं— निंदाके भाषण मैं आपके सामने नहीं कहूंगा।

५६१ यः सुम्नेषु आन्तमा इत् वदेम— तुम्हारे मनोंमें आनंदके भाव रहें ऐसा ही हम बोलेंगे।

५६२ धियं अवतं— बुद्धिका रक्षण करो।

५७० धियः साधन्ता— बुद्धियोंकी सिद्धि प्राप्त करो।

५७२ हृदि प्रियं दधन्— हृदयमें भला करनेकी इच्छा कर।

५८० धीवतः सखा— ईश्वर बुद्धिमान्का मित्र है।

५९८ ते भाटे मयो दधानां अर्विक्षु ईमहे— हीनपन दूर करनेवाली और कल्याण करनेवाली बुद्धि हम चाहते हैं।

६६७ वाजेभिः वाजिनीवती धीनां अविनी सरस्वती नः प्र अवतु— अनेक प्रकारके अन्न देकर बुद्धियोंका रक्षण करनेवाली विद्यादेवी हमारा रक्षण करे।

७०० जिह्वया सदं इदं सुमेधा आ— जिह्वासे उपदेश करो जिसे सुबुद्धि बढे।

बुद्धिपूर्वक विचारकी दृष्टिसे परिपूत जो कर्म हैं वे ही करने चाहिये। वे ही मानवोंका हित करते हैं और मनुष्यको ऊपर उठाते हैं।

मन

१ प्रथमः मनोता— पहिले देवोंका मन आकर्षित करनेवाला ज्ञानी पुरुष बने। सज्जनोंके मन अपनी ओर आकर्षित करे।

१० भद्रायां सुमतौ आयतेमहि— कल्याणकारक उत्तम बुद्धिमें हम प्रयत्न करते रहेंगे।

११ भद्रा सौश्रवसानि अस्मे सन्तु— कल्याणकारी यश हमें मिलें।

भयेयाला वुद्धिमानोंमें बलवान् शत्रुके कीलोंको तोडनेवाला वज्रधारी वीरोंमें रहनेवाला वीर है।

१७२ शत्रून् जहि— शत्रुओंका पराभव कर।

१७८ दृळ्हानि अप वृर्तन्— शत्रुके कीलोंको तोड दिया।

१७८ स्थात् सद्रसः महां अच्युतं सन्त मद्रि सुत्या।— अपने स्थानसे कभी न हिलनेवाले पर्वत (शत्रुके किले) को तोड दिया।

१७९ अंगिरस्तमस् इन्द्रः पुरः वि और्णोत्— अंगिरस वीरने चौकेके सुरक्ष द्वार खोल दिये।

१८१ इन्द्रः अभ्योहमानं अहिं शवसे निजघन्थ— इन्द्रने आक्रमण करनेवाले शत्रुको सोमेकी अवस्थामें मारा।

१८१ वज्रात भियसा अपमन्— वीरके वज्रके भयसे शत्रु नम्र होते हैं।

१८१ त्वष्टा ते सहस्रभृष्टिं शतास्रि वज्रं ववृतत्— त्वष्टाने तेरे लिये सहस्र धारावाला सौ पर्वोवाला वज्र बनाया।

१८१ येन निकाम अरमनसं नवंत अहिं सं पिणक्— जिस वज्रसे हीन इच्छावाले पुरुषको इच्छा करने वाले युद्धकरनेवाले अहिको पीस दिया।

१८१ महां उग्रं अजुर्यं सहोदां सुवीरं स्वायुधं सुपर्णं इन्द्रं त्या अयसे ब्रह्म वधूत्यां— बडे उग्र जरा रहित बलवान्, उत्तम वीर उत्तम आयुधोंसे युक्त उत्तम वज्रधारी इन्द्रको अपनी सुरक्षाके लिये स्तोत्र गाते हैं।

१८९ यः अभिभूत्योजाः वनवम् अषाढः पुरुहूतः। तं स्तुहि अषाळ्हं उग्रं सहमानं चर्षणीनां वृषभं गीर्भिः वर्ध— जो शत्रुओंका पराभव करनेवाला शत्रुका वध करनेवाला सर्व अपराजित बहुतों द्वारा प्रशंसित विजयी सब सामर्थ्यवान् प्रजाजनोंमें बलिष्ठ वीर है उसकी हम इन वचनोंसे स्तुति करते हैं।

१९१ त्वं दस्यून् अदमयः— तू दुष्टोंका दमन करता है।

१९१ त्वं एकः आर्याय ज्योतिः अयमो— तू अकेला आर्यके अधीन सारी प्रजाको दिया है।

१९१ तुविद्युम्नस्य युजरा तुरस्य ते सहः सत् इत्— अनेकोंमें सुप्रसिद्ध तथा शत्रुका नाश करनेवाले तुझ जैसे वीरका ही ऐसा बल होता है।

१९१ उग्रस्य नवसः राधसुः उग्र तविषः अभूत्— उग्र सामर्थ्यवान् और शत्रुका नाश करनेवाले वीरका विशेष प्रभाव होता है।

१९१ इषयन्तं वज्रं हन्— बलोंसे सतानेवाले शत्रुका वध कर।

१९१ अस्य पुरः वि दुर्णोः— शत्रुके नगरोंको तोड।

१९१ अस्य विश्वाः दुरः वि दुर्णोः— शत्रुके सब द्वार खोल दो।

१९४ सः महति वृत्रतूर्ये चोदिभिः हव्यः असि— वह बडे बडे युद्धोंमें बुद्धिसे प्रशंसा करने योग्य है।

१९५ स युज्येन शवसा राया वीर्येण नृतमः— वह तेजसे बलसे धनसे और वीरतासे श्रेष्ठ होता है।

१९६ स न मुहे— वह मोहित नहीं होता।

१९७ न मिथुः जनः भूत्— वह मिथ्याचारी नहीं होता।

१९९ सः पुरां वीरस्याय शयथाय नू चित् कृणक्— वह वीर शत्रुओंकी नगरियोंको तोडने और शत्रुका नाश करनेके लिये सदा सिद्ध रहता है।

१९७ अद्वयसा पश्यसा त्वक्षसा वृत्रहत्याय रथं तिष्ठ— अवर्णनीय रक्षकसे युक्त और प्रशंसनीय बलसे युक्त होकर शत्रुनाशके लिये रथपर चढ।

१९७ दक्षिणस्य हस्ते वज्रं आ धिष्व— दक्षिण हाथमें वज्र धारण कर।

१९७ मायाः अभि प्रमन्द— शत्रुके कुटिल प्रयोगोंका नाश कर।

१९८ हेतिः रक्षः नि धक्षि— शस्त्र राक्षसोंका नाश करता है।

१९८ गंभीरया ऋष्वया रुरोज— भयंकर वज्रसे शत्रुको छिन्नभिन्न कर।

१९८ दुरिता दम्भयन्— पापियोंको छिन्नभिन्न कर।

१९९ सहस्रं तुविजातेभिः पथिभिः राया अर्वाक् आयाहि— सहस्रों प्रकारके बलोंसे युक्त मार्गोंसे धनोंके साथ यहां आओ।

१९९ योतोः मर्तः नू चित् ईशे— तुम्हारे मनको कोई असुर भी नहीं सकता।

२०० तुविधुम्नस्य स्थविरस्य घृष्वेः महिमा पृथिव्याः दिवः प्र रिरिचे— तेजस्वी श्रेष्ठ शत्रुनाशक वीरका महिमा पृथिवी और द्युलोकसे बडा है।

९८ त्वां हीन्द्रावसे विवाचो ६ ३३ २
११४ त्वां ह्यग्ने सदमित् समन्यवो ८ १५ ८; साम १५९८
११८ त्वामग्ने पुष्करादधि ६ १६ १३; साम ९; वा य. ११ ३२, १५,२२ तै सं ३ ५ ११ ३; ४ १ ३ ३; ४,४ १
१११ त्वामिद्धि हवामहे ६ ४६ ७
११७ त्वामिद्धि हवामहे साता ६ ४६ १, साम २३४; ८०९, अथर्व. २० ९८ १, वा य २७ ३७ तै सं २,४ १४ ३
१२१ त्वामीळे अध द्विता ६ १६ ४
४३१ त्वामुग्रमवसे चर्षणीसहं ६,४६ ६; अथर्व २०,८० २
९२१ त्विषीमन्तो अध्वरस्येव ६ ६६ १०
४१ त्वे वसूनि पुर्वणीक ६ ५,२, तै सं ४ ३ १३ २
५२६ त्वे ब्रह्माणि न मावते युविष्ठ ६,४८,१५
१९ त्वेषस्ते धूम ऋण्वति ६ २ ६; साम ८३; अथर्व १८,४ ५९
६४३ दक्ष रयाम् प्रतिमतः ६ ४७ २४
८८ दधन्वा नः पुरोविश ह्येवः ६ ११ ६
६०३ दशावानश्व कोशान् ६ ४७ २३
६७७ दिवस्पृथिव्या पर्योज ६ ४७,२७ अथर्व. ६ १२५ २; वा. य २९ ५३, तै सं ४ ६ ६ ५
६०१ दिवे दिवे सदृशीरन्यमर्धं ६ ४७ २१
११८ दिवो न तुभ्यमन्विन्द्र ६ २०,१
११ दिवो न यस्य विधतो ६ ३ ७
६२१ दूणाश सख्यं तव ६ ४५ २६
३५१ दुरोषिता यस्यो ६ १८,२
६९९ दृतेरिव तेऽवृकमस्तु ६,४८,१८
६१० देवस्य वयं सवितुः सवीमनि ६ ७१ २; मि ६ ७
१५ धामो न यस्य पनयन्ति ६ ४ ३
११० धुवानं वो अतिथिं स्वर्णरं ६ १५,४
३८८ धुमत्तमं दक्षं धेह्यस्मे ६ ३४ १
११७ धीभिरर्वद्भिरर्वतो ६ १० १
५९८ धौष्पितः पृथिवि मातर् ६ ५१ ५, तै. ब्रा. २,८ ६ ५
२९७ ध्वस्मा यस्मे रथिनो विधाति ६ २० ८
८५ ध्वस्मा चिद्धि त्वे विवस्वा ६ ११ ३
७४८ धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम ६ ७५,२, वा. य २९ ३९; तै. सं ४ ६,६ १, मि ९,१७
१२ धानोर्मियो वो दुर्मेभिरच्छ ६ ३,८
४११ धिय यज्ञ धमस्यो ६,४५ १८
४१५ धीभिरर्वद्भिरर्वतो ६ ४५,१२
१०८ नकुतो धतवाः सोमपाः ६ १९ ५
४५६ नक्षदिन्द्र अस्मे ६,४७ ६; अथर्व ७ ७६ ६
७६ नूनं ज्योतिर्निहितं ६ ९ ५
४२६ न त्वा वसुभि यमते ६ ४५ २३; साम १६६७, अथर्व २० ७८,२
५५० न द्यौर्वा न पृथिव्या ६,५२ १
३०१ न ता अर्वा रेणुककाटो अश्नुते ६ २८ ४; अथर्व ४ २१,४ तै. ब्रा. २ ४ ६ ९
३०० न ता नशन्ति न दभाति ६ २८ ३, अथर्व ४ २१ ३; तै. ब्रा. २ ४ ६,९
३१० न ते अन्तः शवसो धाय्यस्य ६ २९ ५
५४१ नम इदुग्रं नम आ विवासे ६ ५१,८
६८५ न य हवन्ते अनुजोऽया ६ ६६,४
३३४ न यं हिंसन्ति धीतयो ६ ३४ ३
२६९ न ये अरन्ति सरतो ६ २४ ७
४०९ नवधीरिति हिषः ६ ४५ ९
९७० न वीळवे नमते न स्थिराय ६,२४ ८
१४३ नहि ते पूर्तमक्षिपद् ६,१६ १८; साम ७०७
९७७ नहि त्वा शूरो न तुरो ६ २५,५
२९१ नहि नु ते महिमनः समस्य ६ २७ ३
१०३ माना मानमस्ति ६ १४ ३
५६ नाभि यज्ञानां सदनं ६ ७ २; साम ११४२
६८९ नास्य वर्ता न तरुता ६ ६६,८
७० नाहं तन्तुं न विजानाम्योतुं ६ ९,२
१७ नितिक्ति यो वारणमन्नं ६,४ ५
३६१ नू गृणानो गृणते प्रत्न राजन् ६ ३९,५
७११ नू न इन्द्रावरुणा गृणाना ६,६८,८
३३१ नूनं न इन्द्रापराय च ६ ३३ ५
८० नू नश्चित्रं पुरुवाजाभिरूती ६ १० ५
४० नू नो अग्नेऽवृकेभिः स्वस्ति ६,४ ८
५१८ नू नो रयिं रथ्यं चर्षणिप्रां ६ ४९ १५
२४० नू म आ वाचमुप याहि ६ २१ ११
५४५ नू मयोभव निर्म्यं ६ ५२ ११
२२३ नूनमन्य इन्द्र नुम्नाभिरूती ६ १९ १०; मि ६ ६
२१ नूनमग्ने धरमिदेव्रास्मे ६ १ ११ ते ब्रा. ३ ६ १० ५